



UNIVERSITY OF TORONTO

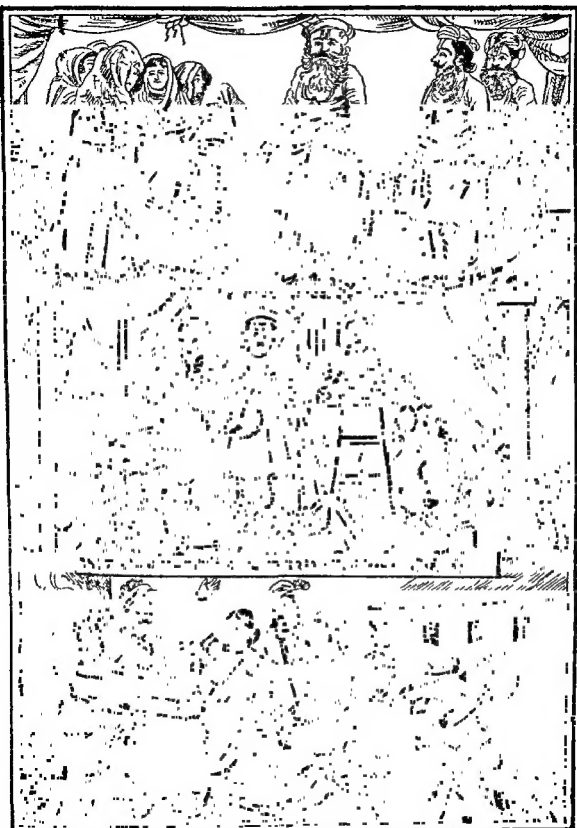


1954

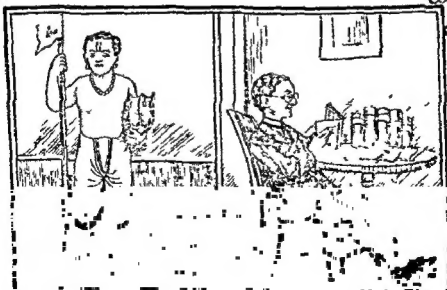
(७) प्राचीन कालका ब्राह्मण आश्रममें बेटा राजाजी उपदेश दे रहा है







(१०) वर्तमान समयके अधिपति शानप्रस्थी तथा संग्रहालय प्रदर्शकों के चेतने उदरते हैं



(११) प्रकीर्ण कालका सुख-विदायी । वर्तमान समयका दुर्लभ-व्यवसायी विदायी ।

श्रीमद्भगवद्गीता

गीतामाहात्म्य भाषाटीका दोहा सहित

॥ धरोवाच ॥

भगवन्परमेशानभक्तिरव्यभिचारणी ॥

प्रारब्धंभुज्यमानस्यकथंभवतिहेप्रभो ॥ १ ॥

दो०-धरती पूछीविष्णुपै, सुनियेमाधवराव ॥

कर्मभोगजीवनको, कैसेभक्तिप्रभाव ॥

हे भगवन् ! हे परमपुरुषोत्तम ! इस संसारसागरमें अनन्त जीव अपने अपने कियेहुये कर्मोंका फल निरंतर भोगते हैं, ऐसे जीवोंको आपकी अनन्य भक्ति कैसे मिल सकती है, वह उपाय कृपापूर्वक सुझे बतलाइये ॥ १ ॥

॥ विष्णुस्वाच ॥

प्रारब्धंभुज्यमानोहिगीताभ्यासरतः सदा

समुक्तःससुखीलोकेकर्मणानोपालिप्यते ॥

दो०-प्रारब्धीकर्मनको, भोगैजीवअनंत ॥

श्रीगीताकेपाठते, पावैभक्तिनिरंत ॥ २ ॥

वह सुन विष्णु भगवान् बोले-हे धरणी ! प्रारब्ध कर्मोंको भोगते हुये जीव जो सदा गीताके अभ्यासमें तत्पर रहते हैं; वेही मोक्षरूपहैं वेही सुखी हैं और इस लोक में प्रारब्धकर्मभी उनका कुछ नहीं करसकते हैं ॥ २ ॥

महापापादिपापानिगीताध्यानं करोति चेत्
कचित्स्पर्शनकुर्वन्ति नलिनीदलमम्भसा । ३ ।

दोहा - महापातकी जो करै, गीताको अभ्यास ॥

ताको पात कनाछुवै, कमलपात जलबास ॥ ३ ॥

जो कोई पुरुष बड़ेसे बड़ा पाप करके भी प्रतिदिन गीताका ध्यान करता रहता है उसको वे पाप ऐसे स्पर्श नहीं कर सकते हैं जैसे कमलके पत्तेपर जल नहीं ठहर सकता है ॥ ३ ॥

गीतायाः पुस्तकं यत्र यत्र पाठः प्रवर्तते ॥

तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि तत्र वै । ४ ।

दोहा - जाके घर गीता बसै, पुस्तक पाठ करंत ॥

सर्व तीर्थ वाठौरहैं, प्रयाग आदि अनंत ॥ ४ ॥

जहाँ गीताका पुस्तक होता है अथवा जहाँ कहीं गीताका पाठ होता है वहीं प्रयागराजसे आदि लेकर सब तीर्थ निवास करते हैं ॥ ४ ॥

सर्वदेवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये ॥

गोपाला गोपिकावापि नारदोद्धवपार्षदाः ५

दोहा - सर्वदेव ऋषियोगिजन, पन्नग गोपिगवाल ॥

नारद उद्धव पारषद, बसैं तहाँ नंदलाल ॥ २ ॥

जहाँ गीताका पाठ होता है वहाँ संपूर्ण देवता ऋषि, मुनि, योगीजन पन्नग, गोपाल, गोपी, नारद, उद्धव, आदि भगवान् के पार्षद निवास करते हैं ॥ ५ ॥

सहायोजायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्तते ॥
यत्र गीता विचारश्च पठनं पाठनं श्रुतम् ॥
तत्राहं निश्चितं पृथ्विनिवसामि सदैव हि ॥ ६ ॥

दोहा-सहाय करों सब पार पद, जहँ गीता सुखवास ॥
जो बांचै सीखै सुनै, जिन के रक्षक दास ॥ ६ ॥

जहाँ गीता का पठन पाठन होता है वहाँ किसी प्रकार की विपत्ति पड़ने पर भगवान् तत्काल सहायता करते हैं, जहाँ गीता का विचार होता है पठन पाठन होता है, श्रवण होता है, वहाँ हे पृथ्वी ! मैं सदा ही निश्चय निवास करता हूँ ॥ ६ ॥

गीता श्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्
गीता ज्ञानमुपाश्रित्य त्रीँलोकान्पालयाम्यहम् ॥ ७ ॥

दोहा-मैं गीता के आसरे, सुखवासी सतिपाल ॥
श्री गीता के डृष्टों, त्रैलोक्यी प्रतिपाल ॥ ७ ॥

हे पृथ्वी ! मैं श्री गीता जी के आश्रय पर रहता हूँ गीता ही मेरा पर-
मोत्तम घर है और मैं गीता ही के ज्ञान का आश्रय लेकर त्रिलोकी का
भरण पोषण करता हूँ ॥ ७ ॥

गीता मे परमाविद्या ब्रह्म रूपानसंशयः ॥
अर्धमात्राक्षरानित्यास्वानिर्वाच्यपदात्मिका ८
दोहा-मेरी विद्या परम है, गीता ब्रह्म स्वरूप ॥
अक्षर मात्रा नित पढ़ै, पढ़ै न भव के कूप ॥ ८ ॥

यह गीता मेरी सबसे उत्तम विद्या है, यह ब्रह्मरूपा है इसमें कोई संशय नहीं है, जो कोई इसका पद, पदार्थ मात्रा वा अक्षरभी नित्य पढ़ते हैं वे अनिर्वचनीय पदको प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

चिदानंदेन कृष्णेन प्रोक्ता स्वमुखतोऽर्जुनम्
वेदत्रयीपरा नंदा तत्त्वार्थज्ञानसंयुता ॥ ९ ॥

दोहा-चिदानंदधन कृष्णके, मुखते अर्जुनधार ॥

वेदत्रयी आनंदमय, तत्त्वज्ञानकोसार ॥ ९ ॥

यह गीता चिदानन्द स्वरूप, आनन्दधन श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने मुखसे अर्जुनको सुनाई है इससे यह वेदत्रयीरूप कर्मकांडमय परमोत्कृष्ट, आनन्ददात्री और तत्त्वज्ञानके देनेवाली है ॥ ९ ॥

योऽष्टादश जपेन्नित्यं नरो निश्चलमानसः ॥
ज्ञानसिद्धिं सलभते ततो याति परंपदम् १०

दोहा-जो अष्टादश अध्यायको, नित्यकरै पढ़ जाप ॥

ज्ञानसिद्धि मोक्षहि मिलै, छूट जात सब पाप ॥ १० ॥

जो मनुष्य चित्तको स्थिरकर अठारह अध्यायका पाठ करता है उसको ज्ञानकी सिद्धि मिल जाती है और अन्तमें परमपदको प्राप्त होता है ॥ १० ॥

पाठेऽसमर्थः संपूर्णैतद्वै पाठमाचरेत् ॥

तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ११ ॥

दोहा-जो अशक्त सब पाठमें, आधोकरै निदान ॥

गोदानके पुण्यसम, पावै पदनिर्वाण ॥ ११ ॥

जो कोई पूरा पाठ करनेमें असमर्थ होनेके कारण आधाही पाठ करता है उसे गोदानका फल मिलता है, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ११ ॥

त्रिभागंपठमानस्तुगंगास्नानफलंलभेत् ॥

षडंशंपठमानस्तुसोमयागफलंलभेत् १२

दोहा-तीजेहिस्सेपाठते, स्नानगंगसमजान ॥

छठेभागकेपाठते, सोमयज्ञपरमान ॥ १२ ॥

जो कोई तृतीयांश अर्थात् छः अध्यायकाही पाठ कर लेता है उसे गंगास्नानका फल मिलता है और जो छठे भाग अर्थात् तीन अध्यायकाही पाठ कर लेता है उसे सोमयज्ञका फल मिलता है ॥ १२ ॥

एकाध्यायंतुयोनित्यंपठतेभक्तिसंयुतः ॥

रुद्रलोकमवाप्नोतिगणोभूत्वावसेच्चिरम् ॥ १३ ॥

दोहा-एकाध्यायजो पढतहैं, नित्यभक्तिसंयुक्त ॥

गणस्वरूपहैंकैवसै, रुद्रलोकमेंमुक्त ॥ १३ ॥

जो भक्तिपूर्वक एकही अध्यायका नित्य पाठ करलेताहै वह रुद्रलोकमें जाकर महादेवजीका गण बन वहाँ बहुत दिनतक निवास करताहै १६

अध्यायंश्लोकपादंवानित्यं यः पठतेनरः ॥

सयाति नरतां यावन्मन्वंतरंवसुंधरे ॥ १४ ॥

दोहा-एकश्लोकअध्यायपद, नित्यपढतनरकोय ॥

एकमनूके राजतक, नरतनधारीहोय ॥ १४ ॥

हे वसुंधरे ! जो कोई एक अध्याय, एक श्लोक वा एक पादका नित्य पाठ करता है वह एक मन्वन्तरतक मनुष्य देह पाताहै ॥ १४ ॥

गीतायाःश्लोकदशकंसप्तपंचचतुष्टयम् ॥

द्वौत्रीनेकंतदर्थंवाश्लोकानांयःपठेन्नरः१५

दोहा—या गीताके श्लोक दश, सात पांच जो चार ॥

तीन दोन एक दुअरध, जो नित पढत सुधार ॥ १५ ॥

जो कोई गीताके दस, वा सात, वा पांच, वा चार वा दो, वा तीन
वा एक, वा आधा श्लोक प्रतिदिन पाठ करता है ॥ १५ ॥

चंद्रलोकमवाप्नोतिवर्षाणामयुतंश्रुवम् ॥

गीतापाठसमायुक्तोमृतोमानुषतांविजेत् १६

दोहा—चंद्रलोकमें वसत है, संमत दश जुहजार ॥

गीतापठनसमेत वहै, पुनि मानुष अवतार ॥ १६ ॥

वह मनुष्य दशसहस्र वर्ष तक चन्द्रलोकमें निवास करता है और
जो मनुष्य गीताका पाठ करते करते देह त्याग देता है वह मरकर
फिर मनुष्य देह पाता है ॥ १६ ॥

गीताभ्यासंपुनःकृत्वालभतेमुक्तिमुत्तमां ॥

गीतैत्युच्चारसंयुक्तोप्रियमाणोगतिंलभेत् १७

दोहा—गीताके अभ्यासते, उत्तम मुक्ति लहंत ॥

गीताके उच्चारसंग, मरे सुमुक्त कहंत ॥ १७ ॥

और फिर गीताका अभ्यास करनेसे मोक्ष पालेता है, और जो गीता
गीता करते ही प्राण त्याग देते हैं वे उत्तम गति पाते हैं ॥ १७ ॥

गीतार्थश्रवणासक्तो महापापयुतोऽपि वा ॥

वैकुण्ठसमवाप्नोति विष्णुना सह मोदते । १८ ।

दोहा—जो गीताके अर्थ बिन, केवल करै जु पाठ ॥

विष्णु सहित वैकुण्ठमें, दूटै कर्म कपाट ॥ १८ ॥

यदि कोई मनुष्य महापापी भी हो और वह गीताके अर्थके सुननेमें आसक्त होता है वह वैकुण्ठधाम पाता है और विष्णु भगवान् के समीप रहकर आनन्दमें रहता है ॥ १८ ॥

गीतार्थध्यायते नित्यं कृत्वा कर्माणि भूरिशः ॥

जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहांते परमं पदम् । १९ ॥

दोहा—बडे बडे कर्म जु करै, हिय गीताको ध्यान ॥

जीवन्मुक्त सुजानिये, मरे परम पद मान ॥ १९ ॥

जो अनेक प्रकारके कर्मोंको करता हुआ भी गीताके अर्थका नित्य प्रति ध्यान करता है वह जीवन्मुक्त होता है और मरने पर परमपद पाता है ॥ १९ ॥

गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजा जनकादयः ॥

निर्वृत कल्मषा याता गीता गीताः परं पदम् । २० ॥

दोहा—गीता आश्रित होयके, जनकादिक बहु भूप ॥

गये परम पद पाप तज, भये पारषद रूप ॥ २० ॥

गीताका आश्रय लेकर बहुतसे जनकादि राजा पापों से छूट गये हैं और गीता गीता करते हुए मोक्षपद पागये हैं ॥ २० ॥

गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ।
वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम एव ह्युदाहृतः ॥ २१ ॥

दोहा-जो माहात्मके पाठ बिना, करै सुगीता पाठ ॥

प्रेम पंथ पावे नही, चाले ऊजड़ वाट ॥ २१ ॥

जो गीताको पाठ करके माहात्म्यका पाठ नहीं करता है उसका गीतापाठ वृथाही है, केवल परिश्रम मात्र है ॥ २१ ॥

एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीताभ्यासं करोति यः
स तत्फलमवाप्नोति दुर्लभां गतिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥

दोहा-यह माहात्म्य संयुक्त कर, कर गीता को पाठ ॥

दुर्लभ फल जो हरिकह्यो, मिलै रती नहिं घाट ॥ २२ ॥

जो माहात्म्य सहित गीताका पाठ करता है वही गीताके पाठका फल पाता है और उसको दुर्लभ गति मिलती है ॥ २२ ॥

॥ सूत उवाच ॥

माहात्म्यमेतद्गीतायामया प्रोक्तं सनातनम् ।
गीतांते च पठेद्यस्तु यदुक्तं तत्फलं लभेत् ॥ २३ ॥

दोहा-सूत पुराणिक कहत हैं, शौनका साँस मुझाय ॥

आदि अंत कर पाठ के, गीता माहात्म्य ध्याय ॥ २३ ॥

सूत जो कहते हैं-हे शौनकादि ऋषियो ! जो गीताका माहात्म्य मने तुमको सुनाया है यह सनातन है जो कोई गीताका पाठ करके इसका पाठ करता है वह गीताके पाठका फल पाता है ॥ २३ ॥

इति श्रीवाराहपुराणे श्रीगीतामाहात्म्ये श्रीधरकृतव्रजभाषान्तरं समाप्तम् ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अस्य श्रीभगवद्गीतांमालामंत्रस्य ॥ श्रीभगवान्वेदव्यासंक्रुषिः ॥ अनुष्टु-
 पछंदः ॥ श्रीकृष्णः परमात्मा देवता ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादां-
 श्रभाषस इति बीजम् ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजेति शक्तिः ॥
 अहंत्वासर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच इति कीलकम् ॥ नैनं छिंदंति-
 शस्त्राणि नैनं दहति पावक इत्यंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ न चैनं क्लेशं त्यपो न शोष-
 यति मास्तु इति तर्जनीभ्यां नमः ॥ अच्छेद्यो यमदाहो यमक्लेद्यो शोष्य एव-
 चेति मध्यमाभ्यां नमः ॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो यं सनातन इत्यना-
 मिकाभ्यां नमः ॥ पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशो थसहस्रश इति कनिष्ठिका-
 भ्यां नमः ॥ नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि चेति करतलकरपृष्ठा-
 भ्यां नमः ॥ अथ हृदयादिन्यासः ॥ नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक-
 इति हृदयाय नमः ॥ न चैनं क्लेशं त्यपो न शोषयति मास्तु इति शिखिसे स्वाहा
 ॥ अच्छेद्यो यमदाहो यमक्लेद्यो शोष्य एव चेति शिखायै वषट् ॥ नित्यः सर्व-
 गतः स्थाणुरचलो यं सनातन इति कवचाय हुम् ॥ पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशो-
 थसहस्रश इति नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृ-
 तीनि चेति अस्त्राय फट् ॥ अथ ध्यानम् ॥ पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता
 नारायणेन स्वयं व्यासेन अथितां पुराणमुनिना मध्ये महाभारतम् ॥
 अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टादशाध्यायिनीं भवत्वामनुसंधामि भगव-
 द्गीते भवेद्वेषिणीम् ॥ १ ॥ नमोस्तु ते व्यासविशालबुद्धे फुल्लारविंदा-
 यतपत्रनेत्र ॥ येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः
 ॥ २ ॥ प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये ॥ ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गी-
 तामृतद्रुहे नमः ॥ ३ ॥ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः ॥
 पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥ ४ ॥ वसुदेवसुतं देवं
 कंसचाणूरमर्दनम् ॥ देवकीपरमानन्दं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥ भीष्म-
 द्रोणतटा जयद्रथजला गांधारनीलोत्पला शल्यग्राहवती कृपेण वहनी
 कर्णेन बेलाकुला ॥ अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनावर्तिनी
 सोत्तीर्णा खलु पांडवै रणनदी कैवर्तकः केशवः ॥ ६ ॥

पराशर्यवचःसुरोजममलं गीतार्थगंधोत्कटं नानाख्यानककेसरं हरिकथा
 संबोधनावोधितम् ॥ लोके सज्जनपटुपदैरहरहः पेपीयमानं मुदा भूया-
 द्भ्रातृपंकजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥ ७ ॥ मूकं करोति वाचालं
 पशुं लंघयते गिरीन् ॥ यत्कृपातमहं वंदे परमानंदमाधवम् ॥ ८ ॥ यं
 ब्रह्मावरुणेंद्रद्रुमस्तः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वंदैः सांगपदकमोपनिषदै-
 र्गायन्ति यं सामगाः ॥ ध्यानावास्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगि-
 नो यस्यांतं न विदुःसुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ ९ ॥ इति ध्यानम् ॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

अथ श्रीमद्भगवद्गीताभाषाटीका.

दोहासहिता प्रारम्भे.

दोहा-हरिगौरीशगणेशगुरु, प्रनमौ शीस नमाय
 गीताभावारथकरूं, दोहासहितवनाय ॥ १ ॥
 सुथिरराजविक्रमनगर, नृपमणिनृपतिअनूप ॥
 थिरथाप्योपरधानयह, राजसभाकोरूप ॥ २ ॥
 नाजिरआनंदरामके, यहउपज्योचितचाउ ॥
 गीताकीटीकाकरी, सुनिश्रीधरकेभाउ ॥ ३ ॥
 गीताज्ञानगंभीरलखि, रचीजुआनंदराम ॥
 कृष्णचरणचितलगिरह्यो, मनमैंअतिअभिराम ॥
 आनंदमनउत्सवभयो, हरिगीताअवरेप ॥
 दोहारथभाषाकरी, बानीमहाविशेष ॥ ४ ॥
 भक्तिवश्यश्रीकृष्णजू, निगमकहैनिरधार ॥
 भक्तिकरोबहुभांतिसों, यहैवैदकौसार ॥ ५ ॥

॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥

मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय । १ ॥

दोहा-धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्रमें, मिलेयुद्धकेसाज ॥

संजयमोसुतपांडवनि, कीन्हैकैसेकाज ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र संजयसे पूछते हैं कि-हे संजय ! धर्मके क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें युद्ध करनेकी इच्छासे इकट्ठे हुए दुर्योधनादिक मेरे पुत्र और पांडुके पुत्र क्या करतेभए ? ॥ १ ॥

॥ संजय उवाच ॥

दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ॥

आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् २ ॥

दोहा-पांडवसेनाव्यूहलख, दुर्योधनढिगआय ॥

जिन आचारजद्रोणसों, बोल्योऐसेभाय ॥ २ ॥

यह सुन संजयने कहा हे धृतराष्ट्र ! राजा दुर्योधन और पांडवोंकी व्यूहरचना देखकर अपने आचार्य द्रोणाचार्यके पास जाकर बोले ॥ २ ॥

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्यमहतीं चमूम् ॥

व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

दोहा-पांडवसेना अतिबड़ी. आचारजतू देखि ॥

धृष्टद्युम्नतवशिष्यने, व्यूहरच्योजुविशेषि ॥ ३ ॥

हे आचार्य ! आपके बुद्धिमान् शिष्य राजा द्रुपदके पुत्रने जिसकी व्यूहरचना की है ऐसी पांडवोंकी बड़ी सेनाको तो देखिये ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

दोहा-शूरधनुषधारीबडे, अर्जुनभीमसमान ॥

द्रुपदमहारथऔरपुनि, हैं विराटयुयुधान ॥४॥

हे आचार्य! इस सेनामें भीम और अर्जुनके समान बड़े २ धनुर्धारी शूर वीर इकट्ठे हुए हैं जिनमें युयुधान, विराट और महारथी द्रुपद हैं ॥ ४ ॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशीराजश्च वीर्यवान्।
पुरुजित्कुंतिभोजश्च शैव्यश्च नरपुंगवः ॥५॥

दोहा-धृष्टकेतुअरुकाशिपति, चेकितानबलवंत ॥

कुंतिभोजअरुशैव्यपुनि, पुरुजितशत्रुनिकृंत ५

धृष्टकेतु, चेकितान और महाबली काशीका राजा है, तथा पुरुजित, कुंतिभोज और मनुष्योंमें श्रेष्ठ शैव्यभी है ॥ ५ ॥

युधामन्युश्च विक्रांत उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्वे एव महारथाः ॥६॥

दोहा-युधामन्युअतिविक्रमी, उत्तमौजरणधीर ॥

द्रौपदिसुत अभिमन्युए, महारथीबलवीर ॥६॥

पराक्रमी युधामन्यु, बलवान् उत्तमौज, सुभद्राका पुत्र अभिमन्यु और प्रतिविन्ध्यादिक द्रौपदीके पांच पुत्र ये सबही महारथी हैं ॥ ६ ॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोधद्विजोत्तम।
नायकामसैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥

दोहा-मोसेनामेंजेवढे, तेसवसुनिद्विजराज ॥

नाकेजानतुमैतिन्हें, खडेयुद्धकेकाज ॥ ७ ॥

हे द्विजोत्तम ! अब हमारी सेनामें जो बड़े बड़े शूर वीर सेनापति हैं उनके नाम मैं आपके सम्मुख कहता हूँ उन्हें सुनिये ॥ ७ ॥

भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः
अश्वस्थामाविकर्णश्चसौमदत्तिस्तथैवच ८ ॥

दोहा-तुमअरुभीषमकर्णकृप, जिनजीतेसंग्राम ॥

भूरिश्रवाविकर्णअरु, अश्वत्थामानाम ॥ ८ ॥

हमारी सेनाके सुखियाओंमें एक आपहो, भीष्मजी हैं, कर्ण हैं, कृपाचार्य हैं, अश्वत्थामा हैं, विकर्ण हैं और सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा है, ये सबही युद्धमें जीतनेवाले हैं ॥ ८ ॥

अन्ये च बहवःशूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाःसर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

दोहा-औरौबहुतेशूरहैं, मो हित तजैजुप्रान ॥

भांतिभांतिआयुधलिये, सबैयुद्धबलवान ॥ ९ ॥

औरभी बहुतसे शूर वीर हैं जो मेरेलिये अपने प्राणोंका मोह छोड़कर आये हैं, ये अनेकप्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हैं और सबही युद्धमें बड़े चतुर हैं ॥ ९ ॥

अपर्याप्तं तदस्माकंबलं भीष्माभिरक्षितम्
पर्याप्तं त्विदमेतेषांबलं भीमाभिरक्षितम् १० ॥

दोहा-मोसेना असमर्थसी, भीष्म राखत ताहि॥

समर्थसेना जाहिकी, ताको भीमसहाहि ॥१०॥

हमारी सेनाके रक्षक भीष्मजी हैं इससे हमारी सेना सब तरहसे युद्ध करनेमें समर्थ है (कारण यह है कि-भीष्मजी, युद्धमें विशारद, योग्य और परिणामदर्शी हैं) तथा पांडवोंकी सेनाका रक्षक भीमसेन है इससे वह समर्थ नहीं है (क्योंकि भीमसेन निरा गवॉर है और हमारी अपेक्षा सेनाभी थोड़ी है) दूसरा अर्थ यह है कि भीष्म वृद्ध और उभयपक्षपाती हैं इससे हमारी सेना (असमर्थ दीखपड़ती है) और पांडवोंका सेनापति भीमसेन है इससे वह सेना समर्थ दिखाई देती है ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥

भीष्ममेवाभिरक्षंतु भवन्तः सर्व एव हि ११ ॥

दोहा-आसपास मो व्यूहके, तुम सब ठाढ़े होइ ॥

भीष्मकी रक्षा करो, धरके मनमें मोइ ॥ ११ ॥

इसलिये आय सब लोगभी युद्धके सब मोर्चोंपर अपनी अपनी सेना लेकर भीष्मजीकी रक्षा करते रहो ॥ (ऐसा करनेमें दो हेतु हैं कि-कहीं भीष्मजी शत्रुसे न जा मिलें अथवा कहीं ऐसा न हो जो कोई शत्रुदल पीछेसे आकर इनको धर दवावै) ॥ ११ ॥

तस्य संजनयन्हर्षकुरुवृद्धः पितामहः ॥

सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् १२ ॥

दोहा-दुर्योधनके हर्षकों, भीष्मजूचित लाइ ॥

सिंहनाद उंचा किया, दुःसह शंख बजाइ ॥ १२ ॥

इतनेहीमें दुर्योधनके उत्साहको बढातेहुए प्रतापी कौरवोंमें वृद्ध
भीष्मपितामहने सिंहनादकरके उच्चस्वरसे शंख बजाया ॥ १२ ॥

ततःशंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ॥

सहसैवाभ्यहन्यंतसशब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

दोहा—तवाहिशंखभेरीपणव, आनकगोमुखभेरि ॥

ताहीछिनवाजतभए, शब्दरह्यो भरपूरि ॥ १३ ॥

तब तौ शंख भेरी, पणव, आनक, गोमुख आदि अनेक प्रकारके
समरोत्साही बाजे एकसाथ चारोंओर बजनेलगे, जिससे बड़ा भारी
शब्द हुआ ॥ १३ ॥

ततःश्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने स्थितौ ॥

माधवःपांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः १४ ॥

दोहा—श्वेतवर्णघोडालये, दीरघरथहिवनाय ॥

हरिअर्जुनतापरचढे, हरषेशंखबजाय ॥ १४ ॥

तदनन्तर श्वेत घोडोंके छते हुए बडे भारी ऊंचे रथपर बैठकर
कृष्ण और अर्जुनने अपने अपने दिव्य शंख बजाये ॥ १४ ॥

पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः ॥

पाँडू दध्मौ महाशंखंभीमकर्मावकोदरः १५ ॥

दोहा—देवदत्तअर्जुनलियो, पांचजन्ययदुराय ॥

भीमभयानकभेषसों, पाँडूकशंखबजाय ॥ १५ ॥

श्रीकृष्णके शंखका नाम पांचजन्य था और अर्जुनके शंखका नाम देवदत्त था इसके पीछे वृकोदर (बहुभोजी) भीमसेनने अपना पौंड्रनामक बड़ा शंख बजाया ॥ १५ ॥

अनन्तविजयं राजा कुंतीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥

नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

दोहा-नृपातियुधिष्ठिरनेकियो, अनन्तविजयकेघोष
पुनिसहदेवरुनकुलने, मणिपुष्पकजसुघोष ॥ १६ ॥

फिर कुंतीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अपना अनन्तविजय नामक शंख बजाया और नकुल तथा सहदेव अपने सुघोष और मणिपुष्पकामक शंखको बजाते भये ॥ १६ ॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः ॥

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

दोहा-महाधनुर्धर काशिपाति, रथी शिखंडी जानि ॥
धृष्टद्युम्न विराट अति, बली सात्यकि हि मानि ॥ १७ ॥

फिर धनुर्धारी काशीराज, महारथी शिखंडी धृष्टद्युम्न विराट और अजेय सात्यकी यादव ॥ १७ ॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ॥

सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक् पृथक् १८

दोहा-द्रुपदद्रौपदीसुतसबै, और सुभद्रापूत ॥

अपनेअपनेशंखले, धुनिकीनीतासूत ॥ १८ ॥

तथा हे राजन् ! राजाहुपद, द्रौपदीके पांचों पुत्र, तथा सुभद्राके पुत्र महाबाहु अभिमन्युने अपने अपने शंस बजाये ॥ १८ ॥

सघोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥ १९ ॥

दोहा-फट्यो हृदय कौरवनको, शब्द सुन्यो तावारा ॥
पुहमी अरु आकाशमें, पूर रह्यो गुंजार ॥ १९ ॥

वह तुमुल शब्द आकाश और पृथ्वीको गुंजाता हुआ धतराष्ट्र के पुत्रोंके हृदयको बिदीर्ण करने लगा ॥ १९ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः
प्रवृत्तेशस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥

दोहा-देवसुत धृतराष्ट्रके, अर्जुन धनुष संभार ॥

कपिवर ताके ध्वजलसे शस्त्रानि परत प्रहार ॥ २० ॥

जब सब कौरव युद्धके लिये सावधान होकर यथास्थान खड़े होगये और शस्त्रोंके चलनेकी तयारी होरही थी उसी समय कपिध्वज अर्जुनने धनुष उठाकर श्रीकृष्णसे कहा ॥ २० ॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाहमहीपते ॥
सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

दोहा-अर्जुन कही जु कृष्णसों, मेरे चित यह चिंत ॥

दुहु सेनाके माझ रथ, ठाढो करि मो भिंत ॥ २१ ॥

हे धृतराष्ट्र ! तव अर्जुनने श्रीकृष्णसे यह कहा कि हे अच्युत !
दोनों सेनाओंके बीचमें मेरा स्थलेचलो ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्नरणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

दोहा--जवलभिदेखोहौं नहीं, जु रे युद्धके दाय ॥

कौन कौन सों हौं लरौं, यारनमें समपाय ॥ २२ ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैं यह देखना चाहता हूँ कि, युद्ध करनेके लिये कौन
कौन आये हैं और इस रणभूमिमें सुझसे कौन कौन लड़ेंगे ॥ २२ ॥

योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहं य एतेऽत्र समागताः
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

दोहा--युद्ध करण धाये जिते, आये हैं सजसाज ॥

दुरबुद्धी हित कौरवनि, भलो करन के काज ॥ २३ ॥

धृतराष्ट्रके दुर्बुद्धि पुत्रका हित करनेके लिये यहां कौन कौन एकत्र
हुये हैं मैं यह भी देखना चाहता हूँ ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥

सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥

दोहा--ऐसे है श्रीकृष्णजू, सुनि अर्जुनकी बात ॥

दोऊ सेनाओं में झरथ, लै राख्यो ता घात ॥ २४ ॥

हे धृतराष्ट्र ! जब अर्जुन यह कह चुका तब हृषीकेश श्रीकृष्ण
स्थको दोनों सेनाओंके बीचमें लगये ॥ २४ ॥

॥ संजय उवाच ॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषांचमहीक्षिताम् ॥

उवाचपार्थपश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ॥ २५ ॥

दोहा-भीष्मगुरुपुनिअमितनृप, तिनसनमुखसुविशेषि
कहतकृष्ण अरजुनअबै, मिलेसबैकुरुदेशि ॥ २५ ॥

और भीष्म, द्रोणाचार्य तथा सब राजाओंके साक्षने यह कहने
लगे कि हे पार्थ ! इन एकत्रहुए कौरवोंको देखले ॥ २५ ॥

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृन्थपितामहान्

आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा

दोहा-अर्जुनतेदेखेसबै, पितापितामहभाय

गुरुमामाभैयासखा, सुत नाती समुदाय ॥ २६ ॥

तब अर्जुन क्या देखते हैं कि चारों ओर पिता, पितामह, आचार्य,
मामा, भाई, पुत्र, पौत्र और मित्रादि खड़ेहुए हैं ॥ २६ ॥

श्वसुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोरपि ॥

तान्समीक्ष्यसकौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान्

कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

दोहा-ससुरसुहृदबंधसंकल, दोऊसेनामांहु ॥

तिन्हें देखकरुणा भई, तब बोले नरनाह ॥२७॥

उनमें श्वशुरभी हैं, इष्टमित्रभी हैं ऐसे दोनों सेनाओंके भाईबंधु-
ओंको खडे देखकर अर्जुनके जीमें करुणा उत्पन्न हो आई और विल-
खते हुये यह कहने लगे ॥ २७ (अर्जुन उवाच)

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥

सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति २८

दोहा-देखे मैं सबबंधु ये, कृष्ण युद्धके दाय ॥

मोमुखसुखतजात है, अंगअंग शिथिलाय ॥२८॥

कि हे श्रीकृष्ण ! युद्ध करनेके लिये आये हुए इस अपनेही कुटु-
म्बके वर्ग और आत्मीयजनोंको देखकर मेरे अंग प्रत्यंग शिथिल
हुएजाते हैं और मुख सूखा जाता है ॥ २८ ॥

वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

गांडीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥२९॥

दोहा-रोमहर्षतनहोत है, और कंपही भाय ॥

मों हाथनतें धनुगिरै, जरत त्वचा अधिकाय ॥२९॥

मेरा शरीर थरथराता है, रोमांच खडेहुएजाते हैं, हाथसे गांडीव
धनुष गिरापड़ता है और देहकी त्वचाभी जलीजाती है ॥ २९ ॥

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ३०

दोहा-छाँटौं वहै हौं नहिं सकतु, भ्रमत जु है मन भीत ॥

केशव शकुन निदेखियत, कैसी है इहरीत ॥ ३० ॥

हे केशव ! अब मुझमें खड़े रहनेकी सामर्थ्य नहीं है, मेरा मन चक्कर खाता है, और शकुनभी बुरे दिखाई देते हैं ॥ ३० ॥

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे

दोहा-स्वजन हनौ संग्राममें, धरि करवान कमान ॥

अपनौ भलौ न देखियै, हँ विपरीत सुजान ॥ ३१ ॥

हे कृष्ण ! समरमें अपने आत्मीयजनोंको मारकर मुझे कुछ भलाई नहीं सूझती है ॥ ३१ ॥

न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च

किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवितेन वा

दोहा-विजय न चाहौं कृष्णजू, नहिं चाहौं सुखराज ॥

राज्य भोग गोविंदजू, अरु जीवन के हिकाज ३२

हे कृष्ण ! मुझे विजयकी इच्छा नहीं है. न राज्य और न सुख चाहता हूँ. हे गोविंद ! सब कुटुम्बका सत्यानाश करके राज मिल जाय तो क्या ? भोग भोगनेसे क्या है ? और जीनेसे क्या लाभ होता है ? ॥

येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च

तद्दमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च

दोहा-राज भोग सुख कृष्णजू, करियत इनके काज ॥

लरत जीवन इछां डिकै, हम नहिं चाहव राज ॥ ३३ ॥

हे कृष्ण ! जिनके लिये हम राज्य भोग और सुखोंको चाहतेये वे
सब प्राण और धनोंका लोभ छोडकर युद्धमें सन्मुख खड़ेहुए हैं ॥

**आचार्याःपितराः पुत्रास्तथैवचपितामहाः
मातुलाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसंबन्धिनस्तथा ३४**

दोहा-गुरुमातुलसुतससुरअरु, सारेहूअवरोषि ॥

संबन्धीनातीनिरखि, पितापितामहपेषि ॥ ३४ ॥

इनमें आचार्य हैं, पिता हैं, पुत्र हैं, पितामह हैं, मामा हैं, श्वशुर
हैं नाती हैं, साले हैं, तथा और २ सम्बन्धी हैं ॥ ३४ ॥

एतान्नहंतुमिच्छामि घ्नतोऽपिमधुसूदन ॥

अपित्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंतुमहीकृते ॥ ३५ ॥

दोहा-एमारैंमोकाँयदपि, हौंनहिंहनोंअकाज ॥

वंशकटेकिहिकामकौ, त्रैलोक्यकोराज ॥ ३५ ॥

हे मधुसूदन ! जो ये मुझको मारेंगे, तोभी मैं इनको नहीं मारूँ-
गा, चाहे त्रिलोकीका राज्यभी क्यों न मिले, पृथ्वीका राज्य तो
किसी गिनतीहीमें नहीं है ॥ ३५ ॥

निहत्यधार्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन

पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ३६

दोहा-पापहोयइनकेहनें, यदपिलियेहथियार ॥

तातेंयेहनियेनहीं, बंधुसहितनिरधार ॥ ३६ ॥

हे जनार्दन ! इन कौरवोंको मारनेसे हमें क्या सुख मिलेगा; इन
आतताइयोंके मारनेसे तो केवल पापही लगेगा ॥ ३६ ॥

तस्मान्नाह्वायं हंतुं धार्तराष्ट्रान् स्वबांधवान्
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधवा ॥ ३७ ॥

दोहा—निज बांधव धृतराष्ट्र सुत, क्यों हनिये यदुराय ॥

कृष्ण सुजन को मारिके, सुख लहियत का भाया ॥

क्योंकि इनके मारने से केवल पाप लगेगा, इससे हम इनको नहीं मारेंगे. ये धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे बांधव हैं. (आप ही बताइये) इन आत्मीयजनों को मारकर हम किस प्रकार से सुखी हो सकते हैं ॥ ३७ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ॥

कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥

दोहा—एजुलुभाने लोभ सों, नहिं देखत जो मोह ॥

कुलक्षय की नहे दोष है, और मित्र को द्रोह ॥ ३८ ॥

लोभने इनके चित्त को भ्रष्ट कर दिया है इससे यद्यपि ये वंशनाशके दोष और मित्रद्रोहके पातक को नहीं देखते हैं ॥ ३८ ॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्

कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

दोहा—जानि वृद्ध अघ की जिये, होत पाप को पोष ॥

क्यों न टरें हम देखिके, कृष्ण कुलक्षय दोष ३९ ॥

तौ क्या हमको भी यह उचित है कि—हम इस पाप से दूर होने का यत्न न करें. हे जनार्दन ! हम तौ कुलक्षय दोष को जानते हैं जानकर न बचना महापाप है ॥ ३९ ॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ॥

धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ४० ।

दोहा-कुलक्षयकीन्हैकुलधरम, जानजुमवैनसाय
धर्मनसैकुलकोजवै, होतअधर्मसुभाय ॥४०॥

हे कृष्ण! वंशके नष्ट होनेपर सनातन कुलधर्मोंका नाश होजाता है
और धर्म नष्ट होनेपर कुलका कुल अधर्मसे प्रतिष्ठाहीन होजाताहै ४०

अधर्माभिभवात्कृष्णप्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।

स्त्रीषु दुष्टा सुवाष्ण्य जायते वर्णसंकरः ४१

दोहा-कृष्णअधर्माहिकेवढे, दुष्टहोहिंकुलनारि ॥

हांहिवरणसंकरजवै, त्रियादोपानिरधारि ४१

हे कृष्ण ! जब अधर्म कुलको असलेता है तब कुलकी स्त्रियां व्य-
भिचारिणी होजाती हैं, उनके व्यभिचारिणी होनेसे सन्तान वर्ण-
संकर होती है ॥ ४१ ॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ॥

पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिंडोदकक्रियाः ४२

दोहा-नरकपरे संकरमये, कुलघातीजे जोय ॥

पतितहोहिंतिनकेपितर, पिंडनदेईकोय ॥ ४२

वंशके नष्ट करनेवालोंके कुलमें जो सन्तान उत्पन्न होती है वह
नरकमें लेजानेहीके लिये होती है और इनके पित्रीश्वर पिंड और
तर्पणसे रहित होकर नरकमें गिरते हैं ॥ ४२ ॥

दोपैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ॥

उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ४३

दोहा—कुलहिवर्णसंकरभये, डारत दोप वढाय ॥

जातिधर्म कुलधर्मते, तेई देत नसाय ॥ ४३ ॥

हे कृष्ण ! कुलघातियोंके इन वर्णसंकर कारक दोषोंके कारण सनातन जातिधर्म और कुलधर्म नष्ट होजाते हैं ॥ ४३ ॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ॥

नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

दोहा—कुलधर्मनकेनाशते, निःसंदेहयहहोय ॥

सदानरकमें तेरहैं, कहतजु यों सब कोय ४४

हे जनार्दन ! जिन मनुष्योंके कुलधर्म नष्ट होजाते हैं उनका निश्चयही नरकमें वास होताहै; ऐसा हमने सुना है ॥ ४४ ॥

अहो वत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ॥

यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः

दोहा—बडे पापके करनको, निश्चयकियो विचार ॥

तिनमें जान्यो राजसुख, हनतकुटुंबनिरधार ४५

हाय ! हाय !! हम कैसे भारी पापके करनेमें उद्यत होगये हैं कि-
राज्यके लोभसे हम अपने स्वजनोंको मारनेके लिये कटिबद्ध हुएहैं ४५

यदिमामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥

धार्तराष्ट्रारणेहन्युस्तन्मेक्षेमतरंभवेत् ४६

दोहा-करमेंलेहथियार ये, आवैं, मो समुहाय ॥

मोहिहनेजोसहजमन, मानिलेहुँसुखभाय ४६

.हे कृष्ण ! यदि धृतराष्ट्रके पुत्र हाथोंमें शस्त्र ले लेकर मुझ शस्त्रहीनको मारेंगे तौ मउनको नहीं रोक्कंगा और न मैं शस्त्र चलाऊंगा और इसी बातमें मुझको अत्यन्त कुशल और भलाई मालूम होती हैं ४६

॥ संजय उवाच ॥

एवमुक्त्वार्जुनःसंख्ये रथोपस्थउपाविशत्

विसृज्य सशरंचापं शोकसंविग्नमानसः ४७

दोहा-ऐसेकहिअर्जुनतबै, बैठिगयोरथमाहिं ॥

करतैंडारेशर धनुष, शोकबढ्योमनमाहिं ४७

अब संजय कहते हैं कि-हे धृतराष्ट्र ! संग्राममें अर्जुन ऐसे कहकर धनुषवाणको फेंक शोकसे दुःखी हो रथमें जा बैठे ॥ ४७ ॥

इतिश्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रे श्रीकृष्णा-
र्जुनसंवादेअर्जुनविषादयोगो नामप्रथमोऽध्यायः ॥१॥





परब्रह्मणेनमः ।

❀ अथ विचार दर्पण ❀

भूमिका

इस बातको लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं कि—हम लोगों की वह दशा नहीं रही है जो प्राचीन कालमें थी । कहाँ उस समयका हमारा बुद्धिबल और शारीरिक पराक्रम और कहाँ इस समयका, रातदिनका सा अंतर होगया है । इस अधोगतिको देखकर बहुत दिनोंसे हमारे चिन्तमें यह विचार उठ रहा था कि कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे सब मनुष्यों को अपनी इस अधोगति का ज्ञान होजाय जिससे उन्नतिके उपायोंकी ओर लगकर पुनः उसी उन्नत दशाको प्राप्तकर लें जो कि पहिले थी, परन्तु यद्भी बहुधा देखा जाता है कि जो उत्तम २ उपदेशकी पुस्तकें निकलती हैं लोग एकबार उनको आधी या सारी पढकर एक ओर फेंक देते हैं सदा अपने पास नहीं रखते इसलिये हमने यही उपाय सोचा है कि अपने विचार दर्पणको श्रीमद्भगवद्गीता की टीका के साथ जो सरल भाषा में हो प्रकाशित किया जाय जिससे दोलाभ होंगे जो पाठकरनेवालेहों उन का ध्यान इन लेखोंकी ओर आकर्षितहोगा और जिनको केवल लेख आदि पढनेकी इच्छा रहती है उनको गीताके पाठ करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होगी गीताको वेदही समझना चाहिये क्योंकि इसके प्रथम छः अध्यायों में तो कर्मकांडका उपदेश है और होनाभी ऐसाही चाहिये जब मनुष्य फलही इच्छा न करके कर्मयोगमें कुशल होजाता है तभी ईश्वरकी उपासनाका अधिकारी बनता है और पिछली छः अध्यायोंमें ज्ञानकांड है देखिये कर्म उपासना कर चुकनेके पीछे ज्ञानकी प्राप्ति होनेकी आशा होसकी है अजकलके अधिकांश साधुओंकी भोनि आलसी और निरुत्साही और पुरुषार्थहीन मनुष्य कभी ज्ञानको प्राप्त नहीं होसके, केवल अहं ब्रह्मास्मि कह ना ज्ञानी बनना नहीं होसका.

आजकल ऐसा होना चाहिये कि जो उच्च २ उपदेश समयानुकूल छपाए जावे वह धर्म पुस्तकोंके साथ छपने चाहिये जिससे लोग उनको अपने पास रखें। हमको पूर्ण विश्वास है कि अपना यह पुरुषार्थ अवश्य सफल होगा जहाँ कहीं कोई भूल हो उसको पंडितजन समाजी दृष्टिसे देखेंगे और हम यहभी आशा करते हैं कि भारतवर्षकी उन्नति चाहनेवाले पुरुष इस विचारदर्पण और गाताके बर्णको जहाँ तहाँ लोगोंको सुनाएंगे। गुणोजन गुण ग्राहक होते हैं दुष्टजन छिद्रही दृढते हैं - ऐसा विचार कर हमको पूर्ण आशा है कि गुणोजन हमारे "विचारदर्पण" को अपनाएंगे

कलकत्ता

पौष शुक्ल पौर्णिमा

विक्रमीय सं० १९७०

सृष्टयब्द ३८९३०१३

अखिलके हिन्दू(आर्य)जाति

(हितेच्छुक)

पं० सत्यचरण शास्त्री

तथा पं० श्रीराम शर्मा,





परब्रह्मणेनमः ।

❀ विचार दर्पण ❀

दर्शन (१)

श्रीमद्भगवद्गीताकी महिमा

गीता संसार की सब धर्मपुस्तकों में प्रधानस्थान धारण करने वाली है। वेदोंका सार इसमें छुट २ कर भरा हुआ है इसीसे हिन्दुओं (आर्यों)का यह मुख्यधर्म ग्रंथ है विधर्मी लोगभी अर्थात् ईसाई मुसलमान आदि भी इसको उच्च मानकी दृष्टिसे देखते हैं क्योंकि गीताके समान उच्च विचार उनके धर्मग्रंथों बाइबल कुरान इत्यादिमें नहीं मिलते, गीतामें ऐसा एक उदाहरण भी नहीं दिखलासके है जो विज्ञानके नियमों या प्रमाणोंके विरुद्ध लिखा गया हो और बाइबल कुरानके बहुत उदाहरण दिखलासके हैं जिनके देखनेसे पता लगता है कि यह बातें सर्वथा विज्ञान और प्रमाणोंके विरुद्ध हैं और इसीहेतुसे त्याज्य हैं। धर्मके सच्चे प्रेमियों की तृष्णा चाहे वह ईसाई मुसलमान क्यों न हों हमारे धर्म ग्रंथों अर्थात् उपनिषद् वेदांतदर्शन और गीताको देखे बिना नहीं बुझ सकती ॥

गीतामें ब्राह्मणसे लेकर चाँटाल पर्यंत सब हिन्दुओं [आर्यों] के लिये बिना पक्षपात के यथाधिकार उपदेश दिया गया है भगवान् श्रीकृष्णमहाराज सर्व व्यापक निराकार परब्रह्मके अवतार ये भक्तजनोंकी रक्षा और धर्मका उपदेश करनेको उन्होंने अवतार लिया था, आर्यसमाजी आदि कितनेही भाइयोंके मतमें परमेश्वरका अवतार लेना असंभव माना है । यद्यपि सर्व शक्तिमानको कोई बात असंभव नहीं होसकी, क्योंकि जब एक सिद्धयोगीको भी इतनी सामर्थ्य है कि अपने कई शरीर रचसका है तो पर-

पात्मा यदि लीलासे अपना एकशरीर रचले तो उसकी व्यापकतामें क्या हानि होसकी है; तथापि यदि उन आर्यसमाजजी आदि भाइयोंके मतानुसार श्रीकृष्णमहाराजको परमेश्वरका अवतार नहीं माना जावे तो भी कुछ हानि नहीं, क्योंकि श्रीकृष्णमहाराजको एक अद्वितीय महात्मा और पूर्ण योगेश्वर माननेमें तो उनको भी सन्देह नहीं है महाराज श्रीरामचन्द्रजीकी छिछोरी श्रीकृष्णमहाराजके सदृश कोई दूसरा महापुरुष इतिहासमें दृष्टिगोचर नहीं आता, भागवतादि ग्रंथोंमें श्रीकृष्णमहाराजका गोपियोंके साथ चौरहरणादिरासलीलाका वर्णन देखकर कितने ही विचारीन और भूखजन यह कहने लगते हैं कि जिन श्रीकृष्णमहाराजको अवतार माना जाता है उन्होंने कैसे २ व्यभिचार के काम किये हैं, यदि हम भी ऐसे कार्य करते हैं तो क्या दोषकी बात है परन्तु उनका ऐसा विचार करना सर्वथा अनुचित और निन्दनीय है क्योंकि श्रीकृष्णमहाराजने कदापि ऐसे चौरहरणादि गुरे व्यवहार नहीं किये थे श्रीकृष्णमहाराजके सम्बन्धमें ऐसी २ बातें वाममार्गी और कामी पुरुषोंने भागवतादि ग्रंथोंमें छुसा दी हैं ग्रंथका परापर देखनेसे पता लगसकता है, कि यह सब बातें प्रक्षिप्त हैं ॥

जिन श्रीकृष्णमहाराजने जैसे उच्च उपदेश गीतामें दिये हैं उनपर एक दृष्टि डालनेसे पता लगता है, कि उनके चारित्र्यों पर कलक लगाना भूखता और पामरता नहीं है तो क्या है, हम उदाहरणार्थ उनके कुछ उपदेश नीचे दिताते हैं, जिनको देखकर बुद्धिमान मनुष्य स्वयं विचार सकेंगे कि श्रीकृष्णमहाराज काम सम्बन्धी लीलाओंको रोकनेवाले थे या करने वाले, श्लोक—इन्द्रियस्येन्द्रियार्थे रागद्वेषौ ब्यवस्थितौ तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परा पंथिनौ ॥ गीता अध्याय ३ श्लोक ॥ ३४ ॥ (अर्थ) एक २ इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषयोंमें रागद्वेष स्थित होते हैं; उन दोनोंके वशमें न आवे वह रागद्वेष निश्चय करके इस जीवके शत्रु हैं, अर्थात् उसके कल्याण के मार्ग में विघ्नकर्ता होते हैं ॥

श्लोक—काम एष ओष एपरजो गुण समुद्भवः महा शनो महापाप्मा विदधे नमिह वैरिणमु गीता अध्याय ३ श्लोक ॥ ३७ ॥

(अर्थ) यह जो काम है, ओषमी यही है, इसकी रजोगुणसे उत्पत्ति है फिर वह कैसा है, बहुत खानेवाला है और बड़ा पापी है इसको वैरी समझो इसी की प्रेणासे मनुष्य पाप करता है ।

(श्लोक) इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥ एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ गीता अध्याय ३ श्लोक ॥ ४० ॥

(अर्थ) इन्द्रिय, मन, बुद्धि इस काम का स्थान हैं इन तीनोंपर अपना प्रभाव डालकर जीवात्मा के ज्ञान को ढकके इसको मोह देता है इसको कैसे रोकें वह उपाय अगले १ श्लोकमें बताते हैं ॥

(श्लोक) तस्मात्स्वमिन्द्रियाण्यादौ निब्रम्यमन्तरपभावाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ गीता अध्याय ३ श्लोक ४१ ॥

(अर्थ) हे अजुनू, तू प्रथम इन्द्रियोंको अपने वशमें करके ज्ञानविज्ञान दोनोंको नष्ट करनेवाले इस कामको नाशकर यह बड़ा पापी है ॥

ज्ञान-वात्पदार्थों का जानना ॥ विज्ञान-आत्मिक बातोंका जानना ॥

(श्लोक) ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एवेत । आर्यतवंतः कौन्तेय न ते पुरमने बुधः ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २२ ॥

(अर्थ) निश्चय करके इन्द्रियों के सम्बन्धसे जोगोग होते हैं वह दुःखके कारणही होते हैं वह स्थायी नहीं है, उनमें बुद्धिमान मनुष्य नहीं लगते । इसलिये जो पुरुष इन इन्द्रियोंके सुखोंमें न फँसकर योगाभ्यासदिद्वारा परमात्माको प्राप्त होनेके साधनों में लगता है वही मुक्तिको प्राप्त होता है ।

(श्लोक) बाह्य स्पर्शसंस्पर्शकात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् । सत्त्वसंयोग युक्तात्मा सुखमक्षय्य मश्नुते ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २१ ॥

(अर्थ) बाह्यके जो स्पर्श रूप, रस, गन्ध विषय हैं उनमें जिसका आत्मा (मन) फँसा हुआ नहीं जिसको अन्तरात्मा मेही सुख प्राप्त है ऐसी पुरुषब्रह्मके प्राप्त होकर सदाकेलिये स्थाई सुखको प्राप्त होगा

श्लोक-काम क्रोधा विद्युक्तानां यतीनां यतचेतसाम् अभितो । ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २६ ॥

(अर्थ) काम क्रोध से रहित, और मनको अतनेवाले, आत्मापरमात्मा को जाननेवाले पुरुष जीवितवृक्ष में भी ब्रह्मानन्दको भोगते हैं और मरण पीछे भी ब्रह्मको प्राप्त होंगे

[श्लोक] यतेन्द्रिय मनो बुद्धिर्मुनिर्भोक्ष परायणः । विगतेच्छा भय क्रोधोपः सदा मुक्त एव सः ॥ गीता अध्याय ५ श्लोक २८ ॥

(अर्थ) इन्द्रिय मन और बुद्धिको जिसने पापकर्मोंसे हटाकर अपने आधीन कर लिया है और जिसको भोग विलासके पदार्थोंकी इच्छा नहीं है, और जिसको भय यः क्रोध नहीं है ऐसी मुनि पुरुष अर्थात् जो आत्मा परमात्मा आदि सूक्ष्म विषयोंको विचार करनेवाला पुरुष है, वह सदा दुःखों से मुक्त रहता है

(श्लोक) उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । आत्मैव ब्रह्मत्मानं वेन्दुरात्मैव । रिपुरात्मनः ॥ गीता अध्याय ६ श्लोक ५ ॥

(अर्थ) अतः करणको कामक्रोधादि वृत्तियों से रहित करके कल्याणको चाहनेवाला पुरुष अपना उद्धारकरे अपनी आत्माकी अभोगात्मिकता न होने दे, अपने वशमें किया हुआ मन अपना मित्र है और विषय सुखोंमें लड़ाया हुआ मनही अपना शत्रु है ।

उपरोक्त श्लोकोंके पढ़नेसे सिद्ध होता है, कि श्रीकृष्णमहाराज इन्द्रियोंको दमन करने और कामक्रोधरूपी शत्रुओंको जीतने के कैसे पक्षपातीय; और दूसरी बात यह भी है कि उनका अवतार धर्मको संस्थापन करनेको हुआ था, वह संसारमें धर्म

जन्मको विषम करने वाला कालीनाग है। सो काल समझना, मुमुक्षु कालको मर्दन करनेसे कालातीत होते हैं। इसलिये कवियों ने कृष्णचन्द्रको कालीनागके फणपर नाचते वर्णन किया है।

महाभारतके समयसे लेकर अबतक भारतवर्षके बड़े २ ऋषि मुनि और विद्वान् लोग श्रीकृष्णमहाराजको परमेश्वरका अवतार मानते चले आये हैं। इस पाँचसहस्र वर्षके समयमें बुद्धदेवको छोड़कर भारतवर्ष में किसीभी दूसरे मनुष्यको अवतार नहीं माना है। श्रीबुद्धदेवभी एक महापुरुष हुए हैं। वह जाति भेद नहीं मानते थे उनके उपदेश निम्न लिखित प्रकार हैं। संव्व पापस्स अकरनम् कुशलस्स उपासम्पदसाचित। परियोदापानम् एतंबुद्धन सासनम्॥ तथा गातो॥

(अर्थ) बुराकाम मतकरो, अच्छे काम बार २ करो, अपने अन्तःकरणको शुद्ध करो। दशपाप जिनसे बचना चाहिये “दशअकुशल” कहलाते हैं इनसे विपरीत “दश कुशल” हैं जो इस प्रकार हैं। (१) शारीरिक-हिंसा नहीं करना, चोरी नहीं करना, परस्त्री गमन नहीं करना। (२) वाचिक-मिथ्या भाषण नहीं करना, अश्लील शब्दोंका उच्चारण नहीं करना, कटुवचन किसीको नहीं बोलना। धर्म, अर्थ, मोक्ष जिससे सिद्ध न हो, ऐसी वार्तालाप नहीं करना। (३) मानसिक-किसीके धन हरने या किसीके अनिष्टकरनेको विचार नहीं करना, विज्ञान और प्रमाण विरुद्ध बातोंको नहीं मानना। इहलौकिक या पारलौकिक बातोंमें कार्यकारण का विचार करना अर्थात् अंध विश्वास नहीं रखना। (४) कक्कवचीसूत्र, दीर्घ निकायमें लिखा है कि-भगवान् बुद्धदेवने निम्नलिखित पाँच उपदेश समस्त संसारके मनुष्योंकी भलाई के लिये दिये हैं यथा-किसीभी प्राणीका बध मत करो, बिना आज्ञा किसीकी वस्तु या सम्पत्तिको मत लो, परस्त्रीसे सर्वया बचो। मिथ्या, कटु और अश्लील भाषण कदापि न करो। [कक्कवचीसूत्र एक बौद्धधर्म ग्रंथकानाम है जो पालीभाषा में है। पालीभाषा संस्कृतभाषाकी अपभ्रंश भाषा है] (५) मादक पदार्थोंका सेवन कदापि मत करो। क्योंकि यह शरीर और मनबुद्धिको नाश करते हैं॥

यह उपरोक्त पाँच उपदेश गृहस्थ लोगों को नित्य पालने चाहिये। यह बुद्धदेवका अभिप्राय था। भगवान् बुद्धदेवके उपदेशोंका इतना भारी प्रभावपड़ा कि,

(१) देखो बुद्धका जीवन चरित्र। अगारिक धर्मपालकृत अग्नेयीभाषा पृ० ६९।७०।

एक समयमें समस्त भारतवर्षसे हिंसाका नाम उठगया था। चीन, जापान, श्यामके पचास करोड़ निवासी और भारतवर्षके पचीस करोड़ हिंदु [आर्य] बुद्धदेवको अवतक अवतार मानते हैं। श्रीकृष्णमहाराजके पीछे भारतवर्षमें बुद्धदेवको छोड़ कर और किसीकोभी अवतार नहीं माना है। इसीसे जान पड़ता है कि भारतवासी बिना परीक्षा कियेही किसी साधारण व्यक्तिको अवतार नहीं मानलेते ॥

ऊपर जो हमने यह लिखा है कि, भागवतादि ग्रन्थों में श्रीकृष्ण महाराजके सम्बन्धमें काव्य सम्बंधी बातें वाममार्गी और काव्यी पुरुषोंकी घुसाई हुई हैं उससे यह अभिप्राय नहीं है कि, ऐसी सभी बातें ऐसे लोगों द्वारा डाली हुई हैं और मूलमें पहिले से न थीं। सारांश यह है कि, बहुतसी बातें जो मूलमें अलंकार रूपसे लिखी गई थीं उनके अर्थ पलट दिये गये। प्राचीन हिन्दुओं (आर्यों) की यह शैली सदासे चली आई है कि, वह अपने अधिकांशविचार अलंकार रूपमें ही प्रगट किया करते थे, क्योंकि यहांपर कविना और साहित्य सदासे उन्नतदशामें रहें हैं। वेदोंमेंभी ऐसे अलंकार बहुत देखनेमें आते हैं, यथा (१) सरस्वती के पीछे ब्रह्माका भागना, यहां ब्रह्माका अर्थ है सूर्य और सरस्वतीका अर्थ है रात्रि, अर्थात् सूर्यदेव रात्रिको हटाकर प्रकाश करते हैं। (२) परमात्माके मुखाविन्द अर्थात् मुखसे ब्राह्मणोंका उत्पन्न होना, वाहुसे क्षत्रियों का, जंघासे वैश्योंका और पैरोंसे शूद्रोंका। यहां उपदेश, बल, वाणिज्य, और सेवा प्रधान वृत्तियों के सम्बन्धमें अलंकार काममें लायागया है कोई साक्षात् मुखादि अंगोंसे परमात्माने चार वर्ण उत्पन्न नहीं किये।

(३) शुक्र उदय होनेपर विवाह संस्कार होना चाहिये, वहां प्रयोजन यह है कि, शुक्र अर्थात् वीर्य पकनेपर विवाह होना चाहिये, न कि इससे पूर्व छोटी अवस्थामें। अब लोगोंने इस अलंकारको न समझकर शुक्र अर्थ तारेका मानलिया है। अबभी बहुधा कविलोग अपने विचित्र अलंकारोंमें प्रगट करते हैं और अलंकारोंके जानने वाले कविके तात्पर्यको यथार्थ जान लेते हैं, परन्तु अलंकारोंको न जानने वाले यथार्थ अर्थ नहीं समझ सके। प्राचीन कालके ग्रंथों की टीकाएं पिछले शृंगारस प्रेमी टीकाकारोंने काम सम्बन्धीकर दीं और बहुतसे श्लोक मूलमें स्वयं बनाकर मिला दिये और उनके अर्थभी काम सम्बन्धी ही करादिये। अतः हमें सभी बातोंको न तो प्रक्षिप्त जानना चाहिये और न सभी को अलंकार। सत्यासत्य के ठीक ठीक निर्णय के लिये विवेक से पूरा २ काम लेना चाहिये। पिछले दो सहस्र वर्ष में एक ऐसा अंधकारमय समय

भारतवर्ष में आया था कि, जिसमें प्रमाद और अज्ञान अधिक बढ़ गये थे, उसी समय में इन्द्रियोंके दास और विषय प्रिय पुरुषों ने वाममार्ग आदि घृणित मतोंका प्रचार किया और धर्मग्रंथों में भी उसी समय उन दुष्टोंने अपने कुत्सित और निन्दनीय विचारोंको मूल या टीकारूप में प्रविष्ट कर दिये जिनको साधारण मनुष्य पढ़कर भ्रममें पड़जाते हैं परन्तु विद्वान् और विवेकी जन-तुरन्तही जानलेते हैं, कि अगुरु २ बातें मिलावटी हैं। शोक है। कि, अब तक भी हमलोग इन मिथ्या और अशुद्ध मूल, या टीकाओं को हमारे धर्म ग्रंथोंमें से निकालने की चेष्टा नहीं करते। यदि कहीं २ थोड़ा बहुत परिश्रम इस ओर हुआ भी है, तो मूर्ख लोगोंके द्वेष करनेपर लोग इसकामसे पीछे हट गये हैं परन्तु सत्यकी खोज करनेवालोंको ऐसे मूर्ख लोगोंकी भमकियों से न डरकर अपने कार्य में लगा रहना चाहिये, हां साथमें हमको इसबात का हर्ष है कि वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, और गीता में वह दुष्ट लोग अपने कुत्सित और निन्दित विचारों को प्रविष्ट नहीं करसके। इसका कारण यह हुआ कि, वेदकी भाषा और ऋचाओंकी बनावट अति कठिन है और गीता, उपनिषद् और दर्शन शास्त्रोंको लाखों हिन्दु [आर्य] लोग कण्ठस्थ करते चलेआये हैं। अतः उनमें मिलावटी, मूलके श्लोक, सूत्र, और टीकाओं का प्रवेश कठिन होगया। भगवान् श्रीकृष्ण महाराजने यही जानकर गीताका उपदेश किया था कि, जब अभी से लोगोंमें प्रमाद आना प्रारम्भ होगया है, तो भविष्य में संभव है कि, लोगोंकी अध्यात्म विद्यापर रुचि न रहे और सांसारिकसुखोंकी ओर अधिक प्रवृत्ति बढ़ती जाए तो रातादेन ऐसी २ विद्याओंकी खोजमें पड़े रहेंगे जिनसे इहलौकिक सुखोंके साधन प्राप्त हों। जिस प्रवृत्ति का फल यह होगा कि, वेदोंका पठन पाठन छूट जायगा और उनके गूढ़ तत्त्वों का समझनाभी उनके लिये कठिन होजायगा, तो गीताके द्वारा सरल रीतिसे वेदों के गूढ़ तत्त्व समझ में आसकेंगे। किसी कविने सच कहा है कि—गीता सुगोता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरेः॥

अर्थ—गीता के तात्पर्य को ही यथार्थ समझलेना बहुत लाभकारी होसका है, बहुत विस्तार पूर्वक अन्य शास्त्रों के पढ़ने से क्या प्रयोजन।

परन्तु इससे यह अभिप्राय नहीं है कि अन्य शास्त्रोंको न पढ़े। कविका आशय केवल गीताकी महिमा दिसानेका है। श्लो०—सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः पार्थो वत्सःसुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

अर्थ-सब उपनिषद् गोरूप हैं, श्रीकृष्ण महाराज इस गोकुल को दोहने वाले हैं, गीता रूपी अमृत अर्थात् दुग्ध दुहा गया, जिसका पान बुद्धिमान् अर्जुन रूप वच्छा में किया । अपने २ घरोंमें रखें और नित्य इसके अमूल्य उपदेशोंका अवलोकन मनन करते रहें, क्योंकि इन उपदेशों द्वारा हमको इस लोक और पर लोक सम्बन्धी दोनों प्रकारके सुख प्राप्त हो सकेंगे ।

गीता माहात्म्य समीक्षा-

पृथ्वी और विष्णु भगवानके प्रश्नोत्तर रूप आख्यायिका (अलंकार) द्वारा गीतापाठका महत्त्व वर्णन किया गया है। पापी भी गीताके पाठसे उच्चमार्गति को प्राप्त होसका है, यह कोई असंभव बात नहीं है, क्योंकि गीताके पाठ करनेसे अर्थ को जाननेकी रुचि होगी, अर्थ जाननेपर किये हुए दुष्कर्मोंके लिये पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करेगा और आगेको पापरूप कर्म करनेसे बचता रहेगा, इस प्रकार पापी भी गीताके पाठसे कल्याण कोही प्राप्त होसका है। और यहभी अर्थ है कि, पृथ्वी अर्थात् भूमि के लोगोंने परमात्मा से प्राप्तेना की कि, सब प्रकारके सुख देनेवाली आपकी भक्ति प्राप्त करने को क्या करें तो उत्तर में यह प्रेरणा हुई कि, गीताम्यास । गीताम्यास ॥ गीताम्यास ॥



इति प्रथम दर्शन समाप्तः



द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ संजय उवाच ॥

तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ॥

विषीदंतमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

दोहा-ले उसास अंसुवा भर, अर्जुनकरुणाभाया ॥

बहुविषाद संयुक्त लख, बोले श्रीयदुराय ॥ १ ॥

राजा धृतराष्ट्रसे संजय कहने लगे कि-इसप्रकार कृपासे परिपूर्ण आसुओसे डबडवाये नेत्रवाले, विषाद करते हुये अर्जुनसे मधुसूदन भगवान् यह कहने लगे ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

कुतस्त्वाकश्मलमिदं विषमेसमुपस्थितम्

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

दोहा-अर्जुनया संग्राममें, कत दुख पायो मीत ॥

कीरति अरु स्वर्गहिहरै, कायरज्यो भयभीत ॥

कि-हे अर्जुन ! ऐसे कठिन समयमें तुझे यह मोह कहाँसे हुआ, ऐसा मोह नीच पुरुषोंको होताहै, इससे (मरनेपर) नरक मिलेगा और (इस लोकमें) अकीर्ति होगी ॥ २ ॥

क्लैव्यंमास्मगमःपार्थनैतत्त्युपपद्यते ॥

क्षुद्रंहृदयदौर्वल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप ॥ ३ ॥

दोहा-कायरता तूं जनिकरै, यह तो कौनहिजोग
छांडिकचाईहीयकी, देशत्रुनकोरोग ॥ ३ ॥

हे पार्थ ! कायर मत बनै, तुझे यह उचित नहीं है, हे शत्रुसूदन !
अपने मनकी इस तुच्छ दुर्बलताको छोड़कर खड़े हो जाओ ॥ ३ ॥

कथंभीष्ममहंसंख्येद्रोणं च मधुसूदन ॥
इषुभिःप्रतियोत्स्यामिपूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

दोहा-हरिपूजा संग्रामम, हैभीषमअरुद्रोन ॥

पूजाकै शरसोंहनौ, मोसोंकहिये तौन ॥ ४ ॥

हे मधुसूदन ! मैं संग्राममे भीष्म पितामह और द्रोणाचार्यसे युद्ध
किसतरह करूं हे शत्रुनिकंदन । ये दोनों तौ पूजाके योग्य हैं. इनपर
बाण कैसे चलाऊं ॥ ४ ॥

गुरुनहत्वाहिमहानुभावाञ्छ्रेयोभोक्तुंभै-
क्ष्यमपीहलोके॥हत्वार्थकामांस्तुगुरुनिहै
वभुंजीयभोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

दोह-भीखमांगिवरुखाइये, गुरुहनिवाँजुअनीति

गुरुहिमाारिभोगहिकरौं, भषाँसुलोहरीति ॥ ५ ॥

हे कृष्ण ! इस लोकमें महानुभाव गुरुजनोंको मारे बिना जो भी-
खका अन्न खाकर कालक्षेप होजाय तौ यह भी बहुत उत्तम है, जो
गुरुओंको मारकर इन सांसारिक भोगोंको भागगा. वह रुधिरसे
सनेहुए भोगोंको भोगेगा ॥ ५ ॥

नचैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयोयद्वाजयेमय-
दिवानोजयेयुः ॥ यानेव हत्वा नजिजीवि-
षामस्तेऽवस्थिताःसंमुखेधार्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

दोहा-इहौजुहमनहिंजानहीं, हारिहोइ कै जीत ॥

जिनहिंमारिहमनहिंजियें, ते ठाढ़े हैं मीत ॥ ६ ॥

हे कृष्ण ! जो हम अधर्म करनेको तत्पर हो भी जाय तौ हमको नहीं मालूम है कि-हममें कौन बली है, ये हमको जीतेंगे वा हम इनको जीतेंगे. जिनको मार कर हम जीना नहीं चाहते हैं. वे धृतरा-
ष्ट्रके पुत्र हमारे सन्मुख खड़े हैं ॥ ६ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामित्वांध-
र्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि-
तन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥ ७ ॥

दोहा--धर्ममांझिहौंमूढहौं, पूछतकृष्णसुभाय ॥

दीनतुमारोशरणहौं, दीजैयुक्तिवताय ॥ ७ ॥

इनको मारकर हम कैसे जियेंगे यह कार्पण्य है और कुलक्षयका दोष है कार्पण्य और दोष इन दोनों बातोंसे मेरा स्वभाव विगड़ गया है. अब मेरा मन ऐसा मूढ़ होगया है कि-मुझे धर्म अधर्मका कुछ ज्ञान नहीं रहा है. इसलिये मैं आपसे पूछता हूँ कि-युद्ध करना वा भिक्षा मांगकर जीवन करना. इन दोनोंमें कौनसी बात श्रेष्ठ है

इनमें जो बहुत ठीक होय सो कहिये मैं आपका शिष्य हूँ, आपके शरण आया हूँ, जिस प्रकार मेरा धर्म बचै और निश्चय कल्याण होनेवाला उपाय हो. वही कहिये ? ॥ ७ ॥

नहिप्रपश्यामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छो-
षणमिन्द्रियाणाम् ॥ अवाप्यभमावसपत्न-
मृद्धं राज्यंसुराणामपिचाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

दोहा--भूमिलोकसुरलोकको, लहों अकंटकराज ॥

इन्द्रियशोकैजीवको, जाइ न शोकसमाज ॥ ८ ॥

हे प्रभो ! जो संपूर्ण पृथ्वीकाभी मुझे निष्कंटक राज्य मिल जाय और देवताओंकाभी अधिपति बनजाऊँ तौ भी मुझे कोई उपाय नहीं सूझता है, जिससे इन्द्रियोंका दुखानेवाला मेरा यह शोक दूर होजाय ॥ ८ ॥

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप ॥

नयोत्स्यइतिगोविंदमुक्त्वातूष्णीं बभूवह ।

दोहा--ऐसेकहिश्रीकृष्णसों, अर्जुनताहीवार ॥

युद्धनहींहरिजूकरों, कीनोयहनिर्धार ॥ ९ ॥

तब संजयने कहा--हे धृतराष्ट्र ! निद्राको जीतनेवाला और शत्रुओंको संताप देनेवाला अर्जुन श्रीकृष्णसे यह कहकर चुप होगया कि, मैं अब युद्ध नहीं करूंगा ॥ ९ ॥

तमुवाचहृषीकेशःप्रहसन्निवभारत ॥

सेनयोरुभयोर्मध्येविषीदंतमिदंवचः॥१०

दोहा-दोऊसेनामांझयों, अर्जुनकियोविषाद ॥

कृपावंतवहैकृष्णजू, कीनोबचनप्रसाद ॥ १० ॥

“हे भरतवंशसमुद्भव धृतराष्ट्र ! दोनों सेनाओंके बीचमें खड़ेहुए अर्जुनको शोकयुक्त देख इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण कुछ हंसतेहुएसे यह कहने लगे ॥ १० ॥

अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभापसे॥

गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः११

दोहा-शोचअशोचीक्योंकरत, करतज्ञानकीबात

शोच न पंडितकरत हैं, जीवनउपजतजात ११

प्रथम श्रीकृष्णने विचारकिया कि-अर्जुनको देह और आत्माके अविवेकसे शोक उत्पन्न हुवा है. सो जबतक इसको ज्ञान न होगा तबतक शोक न मिटेगा यह सोचकर कहने लगे कि हे अर्जुन ! जिन वस्तुओंका सोच करनाउचित नहीं है. उनका सोच करते हो और पंडितोंकीसी बातें बनाते हो. यह तुमारा हठ ठीक नहीं है. विद्वान लोग जीतेऔर मरे हुओंका सोच नहीं करते हैं, क्योंकि जीना मरना दोनों मिथ्याहैं ॥ ११ ॥

समीक्षा-अर्जुनने जो “ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्णेति ” अध्याय १ श्लोक २८ से लेकर “ यदि मामप्रतिकारमिति ” अध्याय १ श्लोक ४६ पर्यंत उन्नीसश्लोकोंमें और “ कथं भीष्ममहं संख्येति ” अध्याय २ श्लोक ४ से लेकर “ नहि प्रपश्यामीति ” अध्याय २ श्लोक ८ पर्यंत पांच श्लोकोंमें शोक मोह और संशयकी बातें कहीं तो श्रीकृष्ण महाराजने “अशोच्यानन्वशोचस्त्वमिति”

अध्याय २ श्लोक ११ से प्रारम्भकरके " सर्वधर्मान्परित्यज्येति " अध्याय १८ श्लोक ६६ पर्यंत सिद्धान्तरूपसे अनेक बातें अर्जुनके शोक मोह और संशयको दूर करनेको कहीं, यथा अर्जुनको शोक और मोह होगया था, कि जब युद्धमें हमारे कुलके पुरुष सब परसप जायेंगे तो हमारे स्वर्गस्थपितर, उनके नाम से श्राद्धादिकें न होनेपर, नरकमें गिरपड़ेगें, तो इस शोक और मोहको यह कहकर निवृत्त किया कि " ते तं भुक्त्वा स्वर्गं लोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्तीनि " अध्याय ९ श्लोक २१। अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले मनुष्य उत्तम स्वर्ग लोकके सुखोंको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मर्त्यलोकमें आजाते हैं. अतः हे अर्जुन ! तू इस मोहको त्याग दे कि, हमारे पितरोंके निमित्त जब कोई श्राद्धादिक्रिया न करेगा तो वह स्वर्गलोकसे निकाले जायेंगे. इस बातको तू सिद्धान्त मान कि, दूसरोंके किये हुए पुण्योंसे जीव न तो स्वर्गमें ठहरसके हैं, और न दूसरोंके किये पापोंसे स्वर्गसे निकाले जासके हैं, भला विचारो तो सही किया यह न्यायकी बात है कि, अपराध करे तो कोई और पकड़ा जावे कोई ।

ऐसा यद्यपि नहीं होसक्ता यद्यपि एक मूढमरूपसे एक दृष्टांत है कि जिससमय बाल्मीकिजी बाल्यावस्थामें बहलिषाधेयमें अमण करते हुये अनेक मनुष्योंको मार २ कर उनका वस्त्र धन लेकर जीविका का कार्य्य करते थे. एक दिन सप्तऋषि उसी मार्गसे आते जये ज्योंही बाल्मीकिने अपने धन्वावाणसे मारना बाधा त्योंही उन महर्षियोंने आवाण दी कि ठहरो पहिले हमारे प्रश्न का उत्तर देकर मारना छपित है. दूरदर्शी महर्षियोंने विचार करके कहा है वीर पुरुष ! जो प्रतिदिन आप जीवहिंसाकर धन लेजते हैं, क्या उस पापके भागी केवल आपही हैं ? या तुझारे कुटुम्बी भी हैं ? इतना सुन बाल्मीकिजीने कहा अभी पूछकर उत्तर देता हूँ घरेमें जाकर सबसे पूछा, सब कुटुम्बियोंने पापके भाग लेनेसे इन्कार किया. उसी समयसे विचार बाल्मीकिजीके बढ़ल गये और उन ऋषियोंके शरणमें जापड़े. उन महर्षियों की शिक्षा दीक्षासे बाल्मीकिजी परमपदको प्राप्त होगये इससे सिद्ध होसक्ता है कि जो पाप करेगा वही भोगेगा.

न त्वेवाहं जातु ना संनत्वं ने मे जनाधिपाः ॥

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२

दोहा—हम तुम अरु नरपतिजिते, जिनको नाशन होइ ॥

तिहूँ कालमें थिर रह्यो, ऐसे सबको जोइ ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! क्या मैं, तुम और ये सब राजा पहिले नहीं थे ? क्या आगे नहीं होंगे ? यह बात नहीं है, पूर्वकालमें मैं भी था, और तुम भी थे और ये सब राजा भी थे, अब भी हैं और आगे भी हम तुम और ये राजा भी सब होंगे ॥ १२ ॥

देहिनोऽस्मिन्नयथादेहेकौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥

दोहा—बालयुवा अरु वृद्धता, या देही को होय ॥

तैसे देहान्तर लहै, धीर न मोहित कोय ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जैसे इस देहमें जीवकी बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था होती है. उसी तरह जीव इस देहको छोड़कर दूसरी देह पालेता है, इसमें ज्ञानी पुरुषोंका मोह करना व्यर्थ है.

समीक्षा—जिस प्रकार बाल्यावस्था जानेपर कौमारावस्था आजाती है और कोमारावस्थाके पीछे यौवनावस्था आजाती है और यौवनावस्थाके पीछे जरावस्था आजाती है और मनुष्य लोग एक अवस्थाके जाने और दूसरीके आनेपर चिंता और शोक नहीं करते और न रोते पीटते हैं इसी प्रकार एक देहके पीछे दूसरी देह प्राप्त होनेपर भी शोक करना और रोना पीटना व्यर्थ है ॥ १३ ॥

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

दोहा—अर्जुन इंद्रिय चित मिली, विषय जु सुख दुःख देत ॥

आवै जाइन थिर रहै, सहत नया कोहेत ॥ १४ ॥

हे कौंतेय ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध जो इन्द्रियोंके विषय हैं ये शरदी गरमी, और सुख, दुःखके देनेवाले हैं ये अनित्य हैं. और आते जाते रहते हैं अर्थात् कभी दुःख और कभी सुख, कभी सर्दी कभी गर्मी आती जाती रहती है इससे हे अर्जुन ! इनका सहना उचित है १४

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषंपुरुषर्षभ ॥

समदुःखसुखंधीरंसोऽमृतत्वाय कल्पते १५

दोहा-जाकेविथा न होइ कछु, सुखदुखगिनैसमान ॥

वहै धर्मकरिमोक्षहै, बातयहैपरमान ॥ १५ ॥

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! जिनको इन्द्रियोंके विषय नहीं सताते और जो सुखदुःखको समान जानते हैं वे धीर पुरुष मोक्षके अधिकारी होते हैं ॥ १५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥

उभयोरपि दृष्टो तत्त्व न योस्तत्त्वदर्शिभिः ।

दोहा-जो है सो विनशैनहीं, जोविनशैसोनाहिं ॥

जोइनतत्त्वनकोलखै, गनियेज्ञानिनमाहिं ॥ १६

हे अर्जुन ! असत जो सुखदुःखादि नाशवान् पदार्थ हैं. वे अनित्य हैं. और सत जो आत्मा है. उसका नाश नहीं है. तत्त्वदर्शियोंने अभाव और अनभाव इन दोनोंका भी सिद्धांत देखा है ॥ १६ ॥

अविनाशितु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥

विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ।

दोहा-जासों जग यह है भयो, सो अविनाशी जानि
जाहिविनाशनकोउसकै. ताहिआतमामानि ॥

हे अर्जुन ! जो सबमें व्यापक है वह अविनाशी है और इस अविनाशिका नाश कोईभी नहीं करसकता है ॥ १७ ॥

अंतवंतइमेदेहानित्यस्योक्ताःशरीरिणः ॥
अनाशिनोप्रमेयस्यतस्माद्युद्धस्वभारत ॥

दोहा-अंतवंतसबदेहहैं, जीवरहतहौनित्त ॥

अविनाशीवहवस्तुहै, युद्धकरौ किन मित्त १८

हे भारत ! यह देह विनाशी है अर्थात् अवश्य नष्ट होजाता है और इसमें जो जीव रहता है वह अविनाशी और प्रमाणरहित है, फिर इस अनित्य देहके लिये अपना धर्म क्यों त्यागता है, तिससे हे अर्जुन ! खड़ा होकर युद्ध कर ॥ १८ ॥

य एनंवेत्ति हंतारंयश्चैनंमन्यतेहतम् ॥

उभौ तौनविजानीतोनायंहंतिनहन्यते ॥

दोहा-जोयाकोहन्तागनै, हन्यौगनैजोकोय ॥

यह न मरैमरैनहीं, अज्ञानीवेदोय ॥ १९ ॥

जो किसी आदमीको इस आत्माका मारनेवाला समझते हैं वा इस आत्माको किसीके द्वारा माराहुआ समझते हैं ये दोनोंही बातें अज्ञानकी हैं इस आत्माको न कोई मारही सकता है और न यह मरताही है इस श्लोकमें यह दिखाया है कि, तू जो भीष्मादिकके मारनेका सोच करता है वह व्यर्थ है क्योंकि आत्मा तो किसी प्रकारसे मरनहीं सकती है और देह अनित्य है ॥ १९ ॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भ-
विता वा न भूयः ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं
पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥

दोहा-यहनमरैउपजैनहीं, मयो न बहुन्योहोइ ॥

अजरपुरातननित्यहै, मारेमरैनसोइ ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा न कभी जन्म लेता है न मरता है न क-
भी पहिले हुआ था, न आगे होगा. यह जन्मरहित है, नित्य है,
पुरातन है (सदासे है यह बातभी नहीं है कि नया हुआ हो) शरीरके
मारने परभी इसका नाश नहीं होता है ॥ २० ॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ॥

कथं स पुरुषः पार्थ कंघातयति हंतिकम् २१

दोहा-जोजानैहैआतमा, अजअविनाशीनित्त ॥

सोनरमारैकोनको, ताहिहनैकोमिन्न ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! जो इस आत्माको अविनाशी, नित्य, अजन्मा, अ-
विकारी, समझता है. वह किसको मारता है ॥ २१ ॥

वासांसि जीर्णानि यथाविहाय नवानि गृह्णा-
ति नरोऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहाय-
जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

दोहा-जैसे पट जीरन तजै, पहिरत नरजु नवीन॥

देह पुरातन जीवताजि, नई गहत परवीन ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर और नये वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसेही जीव पुरानी देह को त्यागकर नई देह धारण कर लेता है. आशय यह है कि-जैसे पुराने वस्त्रों को त्यागने में कुछ कष्ट नहीं होता है वैसेही पुरानी देह के त्यागने में भी कुछ कष्ट नहीं है

नैनं छिदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः २३

दोहा-यहन कटै हथियारसों, पावक सकै न जारि ॥

भीज सकै जल नाहिं सो, सोखि सकै न बयारि ॥

हे अर्जुन ! इस आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकते हैं, अग्नि जला नहीं सकता है, जल इसे भिगो नहीं सकता है, और पवन सुखा नहीं सकता है

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो शोष्य एव च ॥

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

दोहा-कटै जरै सूखै नहीं, और न भिजवन योग ॥

नित्य जवै सब ठौर थिर, अविनाशी विनरोग ॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा न छिद सकती है, न जल सकती है, न भीग सकती है, न सूख सकती है ! क्योंकि नित्य है, सर्वव्यापक है, स्थिर है, अचल है और सनातन है ॥ २४ ॥

अव्यक्तोऽयमचित्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवंविदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥

दोहा-प्रगटनहीं जु अचित्य है, अविकारी तू जानि ॥

ऐसे या को जानिकै, शोकलेहु जनिमानि ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! यह आत्मा इन्द्रियोंद्वारा जानानहीं जाता है, मनसे विचारनेमें नहीं आता है और विकाररहित है, आत्माको उक्तरीतिका जानकर इसके लिये तेरा सोच करना व्यर्थ है ॥ २५ ॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वामन्यसेमृतम् ॥

तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥

दोहा-जो तुम जानों जीवको, जन्ममरणपुनिहोड ॥

तऊ शोकतू जनि करै, मन दृढतामें होइ ॥ २६ ॥

हे महाबाहो ! जो तुम इस आत्माको नित्यही जन्मा और नित्य-ही मरा मानते हैं तौ भी इसके लिये तेरा सोच करना अनुचित है ॥ २६ ॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च ॥

तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

दोहा-जो उपजै सो विनसि है, मरै सु उपजै आइ ॥

होनहार सो होत है, तहां न शोच बढाइ ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! जिसने जन्म लिया है वह अवश्य मरेगा और जो मरा है वह अवश्य जन्म लेगा, इससे उपाय रहित बातोंके लिये तुम्हारा शोच करना व्यर्थ है ॥ २७ ॥

अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारता॥

अव्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना । २८

दोहा-पाछे जाहि न जानिये, आगे परै न जानि ॥

मांझआयु कछु देखिये, ताको शोच न मानि ॥

हे भारत! मनुष्यादि प्राणी जन्म लेनेसे पहिले प्रकट नहीं हैं और न मरनेसे पीछे दिखाई देते हैं, केवल जन्ममरणके बीचवाली मध्यमावस्थामें दीख पड़ते हैं, फिर इसमें शोक करनेकी बातभी क्या है ॥ २८

आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति-

तथैवचान्यः॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यःशृणोति

श्रुत्वाप्येनं वेद नचैव कश्चित् ॥ २९ ॥

दोहा-जो याको देखै कहै, सोई अचरज भाय ॥

सुनैअचंभोसोलगै, यहजान्योनहिंजाय ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! कोई तौ इस आत्माको आश्चर्यवत् देखता है, कोई आश्चर्यवत् कहता है, और कोई आश्चर्यवत् सुनता है और कोई इसे सुनकरभी नहीं समझता है ॥ २९ ॥

देहीनित्यमवध्योऽयंदेहेसर्वस्यभारत ॥

तस्मात्सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितुमर्हसि ३०

दोहा-जीव न मान्यो जातुहै, वसेतसबनकीदेह ॥

ताते शोच न कीजिये, करि काहूसों नेह ॥ ३० ॥

हे भारत ! सबकी देहमें जो यह आत्मा है, वह अवध्य है. अर्थात् इसे कोई मार नहीं सकता है, फिर इन प्राणियोंके लिये जो वृद्धाश्रम सोच करना है सो व्यर्थ है ॥ ३० ॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥

धर्म्याद्वियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥

दोहा-अपनो धर्म विचारतू, जानिछाँडै संग्राम ॥

धर्म युद्ध ते क्षत्रियाहि, और न कछु अभिराम ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन ! जो तू अपने क्षत्रियधर्म परभी दृष्टि करता है तौ भी तुझे डरना नहीं चाहिये, क्योंकि क्षत्रीके लिये युद्ध धर्मसे उत्तम और कोई धर्म नहीं है ॥ ३१ ॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥

दोहा-अपनी इच्छा ते लह्यो, खुल्यो स्वर्गको द्वार ॥

भाग्यवंत क्षत्री लहैं, लरैं सुरणहिं मझार ॥ ३२ ॥

हे पार्थ ! यह समय अपने आप उपस्थित होगया है इसमें स्वर्गद्वार खुल जाता है, पुण्यवान् क्षत्रियोंको ही यह युद्धसमागम मिलता है अर्थात् जो क्षत्री युद्धमें मरते हैं वे सीधे स्वर्गको चले जाते हैं ॥ ३२ ॥

अथ चेत्स्वामि मंधर्म्य संग्रामं न करिष्यासि ॥

ततः स्वधर्मकीर्तिं चाहित्वा

दोहा-यही धर्म संग्रामको, जो तू करिहै नाहि ॥

तजिकै कीरत धर्मको, परिहै पापनिमाहि ३३

और जो तू (इस अवसरको पाकरभी) अपने क्षत्रिय धर्मरूप संग्रामको न करेगा तो तेरा धर्म नष्ट होजायगा, कीर्ति जाती रहेगी और तुझे पाप लगैगा ॥ ३३ ॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यंतितेऽव्ययाम्

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥

दोहा-तेरो अपयश जगतमें, बोलैंगे सबकोय ॥

मानवंतको मानघट, अधिकमरणतेहोय ॥ ३४

और मनुष्य तुझको सदा बुरा कहेंगे (देख) प्रतिष्ठित पुरुषकी अपकीर्ति होना मरनेसेभी बुरा है ॥ ३४ ॥

भयाद्रणादुपरतं संस्यंतेत्वांमहारथाः ॥

येषांचत्वंबहुमतोभूत्वायास्यसिलाघवम् ॥

दोहा-भयते अर्जुनरणतज्यो, जगयों कहिहैंवीर ॥

तोहिंबहुतकरिमानते, अबलघुवहैहोधीरा ॥ ३५ ॥

ये सब महारथी तुझको रणभीरु कहेंगे और जो तुझको बड़ा मानते हैं उनकी दृष्टिमें तू तुच्छ हो जायगा ॥ ३५ ॥

अवाच्यवादांश्चबहून्वादिष्यन्तितवाहिताः

निंदंतस्तवसामर्थ्यततोदुःखतरं नु किम् ॥

दोहा-तेरे अरिसब कहहिंगे, जो अनकहनी बात॥
निजघटियाईके सुने, बद्धदुखलागेतात ॥ ३६ ॥

येही तेरे बड़े बड़े बैरी अनकहनी बात तुझसे कहेंगे और तेरे बल
पौरुषका तिरस्कार करेंगे (कहो तौ सही) इससे बड़ा दुःख कौनसा है ॥

हतौवाप्राप्स्यसिस्वर्गजित्वावाभोक्ष्यसेमहंमि
तस्मादुत्तिष्ठकौंतेययुद्धाय कृतनिश्चयः ॥

दोहा-लरतमरैलहिहैस्वरग, जीतेपुहमीभोग ॥
उठिअर्जुनतूंयुद्धकरि, शत्रुहतौयहयोग ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन! जो तू इस संग्राममें मारेजावोगे तौ सीधा स्वर्गको जा-
वोगे और जो जीतोगे तौ इस पृथ्वीका राज्य करेगे (तुझादी दोनों त-
रह जीतहै) इससे दृढ विचारकर कमरकस युद्धके लिये खड़े होजावो

सुखदुःखसमेकृत्वालाभालाभौजयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि

दोहा-लाभहानिअरुसुखदुखी, जीत्योहारिसमान
तातेअर्जुनयुद्धकरि, पापलेहुजनिमान ॥ ३८ ॥

सुख, दुःख, हानि, लाभ और जय, पराजयको समान जानकर
युद्धके लिये तैयार होजाओ ऐसा करनेसे तुझे पाप न होगा ॥ ३८ ॥

एषातेऽभिहितासांख्येबुद्धिर्योगेतिवमांशृणु
बुद्ध्यायुक्तोद्ययापार्थकर्मबंधं प्रहास्यसि ॥

दोहा-सांख्यबुद्धितोसोंकही, कहतयोगबुधितोहि
ताबुधिकेसंयोगते, रहैनकर्मनिमोहि ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! जो कुछ मैंने अवतक तुझसे कहा है वइ सांख्यशास्त्रके अनुसार आत्मा और देहका तत्व समझाया है. अब उसी बुद्धिको योगमें कहताहूं उसे सुन इस बुद्धिके द्वारा सुख दुःखादि जो कर्मबंधन हैं उनसे छूट जाओगे ॥ ३९

नेहाभिक्रमनाशोऽस्तिप्रत्यवायोनविद्यते
स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात्

दोहा-कर्मकरैबिनुकामना, ताकोहोइ न नाश ॥

अल्पकियेहूधर्मयह, काटतभवभयपाश ॥ ४० ॥

हे अर्जुन ! इस कर्मयोगमें प्रारंभका नाश नहीं है अर्थात् प्रारम्भ होनेपर समाप्त न भी होय तौ भी उसका फल मिलताहै, न इसमें कुछ पाप है. इस धर्मका किंचिन्मात्र करनाभी जन्ममरणादि रूप बड़े भयसे रक्षा करता है ॥ ४० ॥

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन ॥

बहुशाखाह्यनन्ताश्चबुद्ध्योऽव्यवसायिनाम्

दोहा-बुद्धिजुनिश्चैवतसों, एकैहैतूजानि ॥

जिनकैनिश्चैनाहिनै, तिनकीबहुविधिमानि ॥

हे कुरुनन्दन ! व्यवसायात्मिक बुद्धि एकही है अर्थात् जिनकी बुद्धि निश्चल होगई है वे मोक्षके साधनरूप इस कर्मयोगमें लग जा-

तेहैं और जिनकी बुद्धि चलविचल है उनकी बुद्धि अनेक हैं अर्थात् तरह तरहके जगहोंमें फैसजाती है और उनकी शाखाभी अनेक हैं ॥

यामिमांपुष्पितांवाचंप्रवदंत्यविपश्चिताः॥

वेदवाद्गताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥

दोहा—वेदहिमानतस्वर्गफल, तेअज्ञानीलोइ ॥

कहतजुह्यांकछुनाहनें, तिनमेंज्ञाननहोइ॥ ४२॥

हे अर्जुन ! जो अविवेकीहैं वे वेदवाणीमें कर्मफल दिखाय मीठी-मीठी बातें कहते हैं और वे कहते हैं कि, कर्मके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥

कामात्मानःस्वर्गपराःजन्मकर्मफलप्रदाम्

क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति ४३

दोहा—स्वर्गलोककीकामना, रहतजुतिनकेचित्त ॥

लोगबडाईकेलिये, करतक्रियायोंहित ॥ ४३ ॥

इससेहे अर्जुन ! स्वर्गप्राप्तिकी है, अत्यन्त कामना जिनके, ऐसे स-काम पुरुष भोग और सुखकी प्राप्तिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञादि क करते हैं, यह क्रिया, जन्म और कर्म फलकी देनेवाली है ॥ ४३ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानांतयाऽपहृतचेतसाम् ॥

व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौनविधीयते

दोहा—भोगबडाईकामना, तिनकोमनहरलेत ॥

निश्चयकरिकैबुद्धिको, नाहेंसमाधिमेंदेता॥ ४४॥

हे अर्जुन ! भोग और ऐश्वर्यमें जिनके मन फँस गये हैं और कर्म-फलके बतानेवाली बाणीसे जिनके चित्त हरे गये हैं उनका मन निश्च-यात्मक बुद्धिमें स्थित नहीं होता है ॥ ४४ ॥

त्रैगुण्याविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

दोहा—त्रिगुणकर्मको कहत हैं, वेदसु तजितूमित्त ॥

धीरजधारिदुखसुखसहो, योगक्षेम तजिचित्त ४५

हे अर्जुन ! ये वेद सत, रज, तम इन तीनों गुणोंके विषय हैं, तू इन तीनोंको छोड़ दे. दुख सुख, लाभ अलाभ, इन द्वन्द्वोंको छोड़ निर्द्वन्द्व होजा, नित्यही सत्त्वमें स्थित हो, अप्राप्तवस्तुकी प्राप्ति और प्राप्तकी रक्षामें चित्त मत लगाओ और आत्मस्वरूपमें सावधान हो ४५

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ॥

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ४६

दोहा—जैसे वापीकूपसों, सरतजितेजलकाज ॥

जितेसवै इकठौरही, करत सरोवर राज ॥ १ ॥

जैसे जितेकवेदमें, कहे सकल विधिकाराज ॥

ज्ञानीमें इकठौरही, तैपैयै कुरुराज ॥ २ ॥ ४६ ॥

हे अर्जुन ! जैसे तालाव, सरोवर आदि पानीसे भरे हुए हैं, इनमेंसे मनुष्य अपने प्रयोजन मात्र जल ले लेता है ऐसेही ब्रह्मवेत्ता संपूर्ण वेदोंमें अपने प्रयोजन मात्र ले लेता है ॥ ४६ ॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते माफलेषु कदाचन ॥
माकर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि ॥

दोहा--तो अधिकारजु कर्ममें, नाहीं फलसों हेत ॥
कर्मनके फलछां डिदे, करहु कामही चेत ॥ ४७ ॥

हे अर्जुन ! कर्महीमें तेरा अधिकार है, फलमें कभीभी अधिकार नहीं और जो तू करे उसके हेतु वा उसके फलके भोक्ताभी मतहो, और जो तूने कहा कि "मैं युद्ध न करूंगा" ऐसे अकर्ममें तेरी निष्ठा न हो

योगस्थः कुरु कर्माणि संगंत्य क्त्वा धनं जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥

दोहा--योगस्थित वहै कर्म करि, सबै संगको त्याग ॥
सिद्ध असिद्ध समान गनि, यहै योग अनुराग ॥ ४८ ॥

हे धनंजय ! सब संगको त्यागकर योगमें स्थितहो कर्म कर, सिद्धि और असिद्धिमें समान भावसे देख. क्योंकि सिद्धि और असिद्धि की समानताही योग है ॥ ४८ ॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनं जय ॥
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ४९

दोहा--बुद्धियोगतें कर्मको, अर्जुन तो घटि जानि ॥
शरण होहु तुम बुद्धि की. दीन कामना मानि ॥ ४९ ॥

हे धनंजय ! बुद्धियोगसे कर्म नीच है, इससे बुद्धिका आश्रय लेकर कर्म करो; जो फलश्री कामनासे कर्म करते हैं वे दीन हैं, सिद्धि और असिद्धि में जो समत्व है उसीका नाम बुद्धियोग है ॥ ४९ ॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्

दोहा-बुद्धियुक्तदोऊतजत, कहापुण्यकहपाप ॥
योगकर्ममें चतुर है, सोईतू करि आप ॥ ५० ॥

जो बुद्धियोगसे कर्म करता है वह इसी संसारमें संचित पापपुण्योंका त्याग कर देता है, इससे तुम बुद्धियोगमें प्रवृत्त होओ, ऐसा योगही सब कर्मोंमें कुशलकारक है ॥ ५० ॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदंगच्छन्त्यनामयम्

दोहा-चाहतनहिंजे कर्मफल, ते पंडितबडभाग ॥
कर्मबंधको छांडिकै, लहतमुक्तिअनुराग ॥ ५१ ॥

हे अर्जुन ! जो पंडितजन बुद्धियोगयुक्त हैं, वे कर्मफलको त्यागकर जन्मबंधनसे छूट कर निश्चय परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ५१ ॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च

दोहा--मोहसंघनताजबतजै, अर्जुनतेरीबुद्धि ॥

तबपैहौ वैरागको, चितमेंकरिकैशुद्धि ॥५२॥

हे अर्जुन ! जब तेरी बुद्धि इस मोहरूपी सुखदुःखके पार होकर अत्यन्त शुद्ध होजायगी तब अवतक जो कुछ तू सुन चुका है, और जो आगे सुननेयोग्य है उसके वैराग्यको प्राप्त होगा ॥ ५२ ॥

श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला॥

समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि

दोहा--तेरीबुद्धिवैरागपै, स्थिररहिहैनित ॥

तवसमाधिमेंजोलागहि, वहैहैनिश्चलचित्त ॥५३॥

हे अर्जुन ! अनेक विषयोके सुननेसे जो तेरी बुद्धि अस्थिर होरही है जब वह मेरे वाक्यमें स्थिर हो जायगी. तब तू योग पावैगा ५३

स्थितप्रज्ञस्यकाभाषासमाधिस्थस्यकेशव

स्थितधीःकिंप्रभाषेतकिमासीतव्रजेतकिम

दोहा--जाकीबुद्धिनिश्चलसदा, ताको चिह्नवताइ ॥

कैसेबोलतक्योंरहत, चलतसुहैकेहिभाइ ॥५४॥

जब श्रीकृष्ण यह कह चुके तब अर्जुनने पूछा कि हे सर्वान्तर्यामिन् केशव ! समाधिमें स्थित पुरुष जिसकी बुद्धि स्थिर होगई है उस स्थितप्रज्ञपुरुषके लक्षण क्याहैं ? और ये किस तरह बोलते बैठतेहैं ? और किसतरह चलने फिरते हैं ? ॥ ५४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

प्रजहातियदाकामान्सर्वान्पार्थमनोर्गतान्
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते

दोहा-जैहैमनकीकामना, तिनकातजैजुकोय ॥

आत्ममेंसंतोपगहि, निश्चलबुद्धिसुहोय ॥५५॥

यह सुन भगवान् बोले-हे अर्जुन ! जो प्राणी अपने मनकी कामनाओंका सर्वथा परित्याग कर देता है और अपनी आत्माहीमें आत्मसुखका अनुभव करता है वही स्थितप्रज्ञ है ॥ ५५ ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥

दोहा-दुःखदेखिभागैनहीं, सुखचाहैं नहिंचित्ता ॥

तजैनेहअरुक्रोधभय, निश्चलबुद्धिसुमित्ता ॥५६॥

जिसका मन दुःख पडनेसे घबडाता नहीं है, और सुखमें जिसे हर्ष नहीं होता है, तथा राग, भय और क्रोध जिसके पासभी नहीं आते हैं वेही स्थितप्रज्ञ है ॥ ५६ ॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्
नाभिनन्दति न द्वेष्टि स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

दोहा-नेहनकाहूसोंकरैं, भलेबुरेकीचाहि ॥

रागद्वेषहूनाकरैं, थिरबुधिलपियेताहि ॥५७॥

अब अर्जुनने जो पूछाथा कि-स्थितप्रज्ञ किस रूतिसे बोलते हैं उस-
के उत्तरमें भगवान् कहते हैं कि-हे अर्जुन ! जिसका किसी पदार्थमें
स्नेह नहीं है. और न शुभप्राप्तिमें हर्षित होता है और न अशुभमें शोक
करता है, न किसीसे राग है न द्वेष, वही पुरुष स्थितप्रज्ञ है ॥ ५७ ॥

**यदासंहरतेचायंकूर्मो गालीव सर्वशः ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रातिष्ठिता ॥ ५८ ॥**

दोहा-जोकछुवानिज अंगको, खेंचि आपुमें लेत ॥
तैसे खेंचो इन्द्रियन, बुधिनि श्रल के हेत ॥ ५८ ॥

जैसे कछुआ अपने सब अंगोको अपने भीतर सकोड लेता है. इसी
तरह वह मनुष्य जो अपनी इन्द्रियोंको उनके विषयोसे मोडकर स-
मेट लेता है उसी पुरुष की बुद्धि स्थिर होती है ॥ ५८ ॥

**विषया विनिवर्तते निराहारस्य देहिनः ॥
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥**

दोहा-विषयन करत जु द्वारि सों, तजत जु हे आहार ॥
आतम देखे जातु है, अभिलाषा निरधार ॥ ५९ ॥

जो कहो कि-निराहार रहनेसे भी पुरुषोंकी विषयासक्ति दूर होजा-
ती है, सो ठीक है यद्यपि उसकी आसक्ति दूर होजाती है पर इच्छा
बनीही रहती है और स्थितप्रज्ञ पुरुषकी परमात्माके दर्शनसे विषय-
वासनाभी दूर होजाती है ॥ ५९ ॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः ॥

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥

दोहा—ज्ञानवंत जे पुरुष हैं, जनन कठिणता साधि

इन्द्रिय अतिबलवंत हैं, तऊ लगावत व्याधि ॥ ६० ॥

हे कौन्तेय ! इन्द्रियां बड़ी प्रबल और क्षोभकारक हैं, यत्न करते करते ज्ञानी पुरुष के मन को भी हठपूर्वक हर लेती हैं अर्थात् विना समाधि में स्थित हुए इन्द्रियो का रोकना कठिन है ॥ ६० ॥

यानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ॥

वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

दोहा—तातें रोकै इन्द्रियन, मोमें चित्त लगाय ॥

वस कीने जिन एसवै, सो थिर बुद्धि स्वभाव ॥ ६१ ॥

जो योगी इन सब इन्द्रियों का दमन कर मुझमें तत्पर हो रहा है अर्थात् आत्मामें निष्ठा कर बैठे, और जिसके वशमें इन्द्रियां हैं वही स्थितप्रज्ञ है ॥ ६१ ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ॥

संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥

दोहा—ध्यान करत नर विषयकों, तासों उपजत संग ॥

काम जु उपजत संगते, तातें क्रोध उमंग ॥ ६२ ॥

इन्द्रियों के वशीभूत किये विना मनमें विषयो का चिन्तन बना

रहता है, चिन्तन करते करते उसमें आसक्ति उत्पन्न होजाती है, तथा आसक्तिसे कामना और कामनासे क्रोध उत्पन्न होता है ॥६२॥

**क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति**

दोहा-मोहहोतहैक्रोधतै, क्रोधहितेबुद्धिनास ॥

शुद्धिगयेबुद्धिनसतहै, बुद्धिनशेयमपास ॥ ६३॥

हे अर्जुन ! क्रोधसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे मतिभ्रम होता है अर्थात् मति चक्रमें पड़जाती है, मतिभ्रमसे बुद्धिका नाश होजाता है और बुद्धि नष्ट होनेपर प्राणी स्वयं नष्ट होजाताहै ॥ ६३ ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन् ॥

आत्मवश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति६४

दोहा-रागद्वेशकोजबतजै, करैविषयकीसेव ॥

इन्द्रियजोनिजवशकरै, लहै शांतिकोभेव॥६४॥

वह पुरुष जिसने अपना मन वश करलियाहै वह रागद्वेषसे रहित होकर इन्द्रियोंके विषयोंको सेवन करताहुआभी शान्तिपाता है॥६४॥

प्रसादेसर्वदुःखानांहानिरस्योपजायते ॥

प्रसन्नचेतसोह्याशुबुद्धिःपर्यवतिष्ठते॥६५॥

दोहा-शांतिजबहि यहगहतुहै, होतदुखनकीहानि॥

बुद्धितवहिंथिरहोतहै, तुमलीजोयहमानि ॥६५॥

हे अर्जुन ! शान्तिके प्राप्त होनेपर पुरुषके सब दुःख मिट जाते हैं और उस शान्त चित्तवाले पुरुषकी बुद्धि शीघ्रही स्थिर होजाती है

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना ।

न चाभावयतःशांतिरशांतस्यकुतःसुखम्

दोहा-योगविनाबुद्धिद्वनहीं, बुधिविनहोइनज्ञान ॥

ज्ञानविनाशांतीनहीं, ताविनसुखनसुजान ॥६६॥

जिस पुरुषने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं किया है उसकी बुद्धि स्थिर नहीं हो सकती है और वह आत्माकी भावना(ध्यान) का भी अधिकारी नहीं होता और ध्यानरहितको शान्ति कहां और विना शांतिके परमानंद जो सुख है सो कहां ॥ ६६ ॥

इंद्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।

तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवांभसि । ६७

दोहा-इन्द्रियाजिततितफिरतुहैं, तितमनलावतुखेंचि ॥

मनजुबुद्धिहरिलेतुहै, वायुर्नावज्योऐंचि ॥ ६७ ॥

मन विषयोंको भोगनेवाली इंद्रियोंके पीछे लगा लगा फिरताहै और फिर वह मन बुद्धिकोभी खींचकर ऐसे लेजाताहै जैसे जलमें वायु नावको घुमाती है ॥ ६७ ॥

तस्माद्यस्यमहाबाहोनिगृहीतानिसर्वशः ।

इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ६८

दोहा-जिन इंद्रियों की सबै, ठौर ठौर तैं आनि ॥

विषय त्याग जिन ही कियो, थिर बुद्धि ता ही मानि
हे महाबाहो अर्जुन ! इसलिये जिसने इंद्रियों को उनके विषयों से
हटाकर दमन कर दिया है उसी की बुद्धि स्थिर है ॥ ६८ ॥

यानि शासर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ॥

यस्यां जाग्रति भूतानि सानि शापश्यतो मुनेः ॥

दोहा-ज्ञान तत्त्व सोइ जगत निशि, तहँ जागत ऋषिराय
जागत जीव अनेक तहँ, सो निशिया के भाव ॥ ६९ ॥

जिसमें संपूर्ण प्राणी सोते हैं वह आत्मनिष्ठावान् पुरुषों का दिन है
और जिसमें प्राणी जागते हैं वह आत्मनिष्ठावान् पुरुषों की रात्रि है
अर्थात् विषयासक्त पुरुषों को आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं है अर्थात् इस
विषयमें उन्हें कुछ नहीं सूझता है इससे उनके लिये यह रात्रिरूप है
और संयमी पुरुषों को यह आत्मतत्त्व दिन के समान है, इसी तरह सां-
सारिक विषयों का सुख मूढ प्राणियों के लिये दिन है और योगियों को
रात्रि के समान है अर्थात् वे विषयभोगों को कुछ नहीं जानते ॥ ६९ ॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशं-
तियद्वत् ॥ तद्वत्कामायं प्रविशंति सर्वे स शां-
तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥

दोहा-जैसे जल सरित को, मिलै समुद्रहि जाय ॥

त्यो यामें सब कामना, शांति रहै तहँ आय ॥ ७० ॥

हे अर्जुन ! जैसे समुद्रमें पूर्णरीतिसे जल भरा हुआ है और उसमें बहुतसी नदी और नदोंका जल चारोओरसे आकर गिरता है. परंतु तोभी वह अचल और प्रतिष्ठित रहता है और अपनी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करता, इसीतरह विवेकी पुरुषोंमेंभी सब कामना लीन होती हैं और उसकी शान्ति बनी रहती है, परन्तु कामनाकी इच्छा करनेवालेको शान्ति नहीं मिलती है ॥ ७० ॥

**विहायकामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥**

दोहा-तजिक सबमनकामना जो नर निःस्पृह होय ।

अहंकार ममता तजै, लहै शान्ति शुठि सोय ॥ ७१ ॥

जो पुरुष संपूर्ण कामनाओंका परित्याग कर निःस्पृह होकर विचरता है और ममता तथा अहंकारको छोड़ देता है. वही शान्तिको पाता है ॥ ७१ ॥

**एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति**

दोहा-ब्रह्मज्ञान तो सोंकह्यो, जाते मोहन साय ॥

जो बुद्धि अंतर में रहै, मिले ब्रह्म में जाय ॥ १ ॥

शोकपंक में मगन लखि, अरजुन कौ अनपार ॥

सांख्य योग दुसरे कह्यो, हरि कीन्हो उद्धार ॥ २ ॥

सांख्य योग वरन्यो विषद, हरि कौं कर परनाम ॥

पुरवो आनंद रामको, सकल मनोरथ काम ॥ ७२ ॥

हे पार्थ ! यह मैंने तुमसे ब्रह्मज्ञानकी निष्ठाका वर्णन किया है, इस ब्रह्मज्ञानकी निष्ठाको पाकर फिर सांसारिक मोह नहीं रहता है अन्त-समयमें जो क्षणभरभी इस ब्रह्मज्ञान निष्ठामें स्थित होजाते हैं वे ब्रह्म-ज्ञाननिष्ठामें स्थित होजाते हैं और ब्रह्मनिर्वाणपदको प्राप्त होते हैं ७२

इति श्रीभगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग-

शास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम

द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

समीक्षा-श्रीकृष्ण महाराजने इस दूसरे अध्यायमें अर्जुनको मोक्षका मार्ग कर्म योग द्वारा बताया है अर्थात् फलकी इच्छा न करके सुख दुःखको समान समझकर कर्म करते रहना ही मोक्षका मार्ग है.

अथ विचारदर्पण द्वितीय दर्शन प्रारम्भः

प्राचीन हिन्दुओं (आर्यों) का गौरव.

यह बात सबप्रकारसे प्राचीन इतिहास वेत्ताओं द्वारा सिद्ध होगई कि हिन्दु [आर्य] धर्म संसारके सब धर्मोंमें सबसे प्राचीन है। सृष्टिके आदिमें यही धर्म था। ईसाईमत २९०० वर्षोंसो वर्षसे और मुसलमानी मत १३०० तेरहसो वर्षसे प्रचलित हुए हैं। प्राचीन कालमें हिन्दुओं [आर्यों] का राज्य यावन्मात्र यमण्डलमें फैला हुआ था। हिन्दुओं (आर्यों)के चक्रवर्ती राजाओंकी यह प्रणाली थी कि किसी स्थानका राज्यलेकर उसी स्थानके पराजित राजाको दे देते थे। वर्तमान समयकी भांति अन्यराजाओंके देश और धन हरनेको उनकी अभिलाषा नहीं रहती थी। लोगोंके हृदयपर उनका गौरव और यश अमारहे यही एकमात्र अभिलाषा उनको रहती थी। जिससमय योरोपका अधिकांश भाग अशुभ और जंगली था और केवल चीन, अफगानिस्तान, ईरान, मित्र और रूमादि देशही सम्य थे, उससमय हिन्दु (आर्य) जातिका प्रताप इतना बड़ा हुआ कि इन उपरोक्त चीनादि देशोंमें भी सभी राजाही राज्य करते थे वहाँके लोग वैदिक धर्मको मानते थे और भारतवर्षके चक्रवर्ती राजाओंका विवाहादि

सम्बन्ध इन उपरोक्त देशों के राज्याओं के साथ हुआ करता था। इन देशों के लोग भारतवर्ष में आया करते थे और यहीं आलू बहा जाता करते थे, यही कारण था कि भारतवर्ष की विधाएं इन देशों में फैलती-योरोप तक पहुंची जैसा कि अंकगणित, रेखागणित, ज्योतिष, नैषिक इत्यादि। योरोपवालों ने अधिक परिश्रम, धैर्य, और साज से इन्हीं विधाओं द्वारा आजकल की आभूषणजनक कलाओं और यंत्रों को निकालकर संसार को मोहित कर दिया। यदि कोई यह प्रश्न करे कि जब भारतवर्ष के पूर्वज ऋषि मुनि इन विधाओं को जानते थे तो उनके समय में आजकल जैसे यंत्र क्यों न प्रचलित हुए, तो इसका यही उत्तर है कि प्राचीन ग्रंथों में यद्यपि पुष्पक विमानादिका वर्णन है; और अन्य २ भी अनेक बातों का वर्णन आता है, यथा रावण के घर में पवन आइ देता था, वरुण देवता जलका प्रबन्ध करता था, अग्निदेवता दीपक जलाता था। इसका अर्थ यही है कि रावण के घर पर आजकल की भांति यंत्रों से, विद्युत् (बिजली), और पवन आदि का व्यवहार किया जाता था। इसी प्रकार अग्निमुखवाण और ब्रह्मास्त्र से प्रयोजन स्फोटक अर्थात् (भक्त उड़नेवाले) पदार्थों से था। शोक! अब हमारे घनुर्वेद के लुप्त होने से हम अपनी प्राचीन अस्त्र, शस्त्र विधा को भूल गये। बात यह है कि आजकल की भांति उन्होंने कलों और यंत्रों को रातदिन धनोपार्जन का साधन नहीं बना रखा था। उद्योगमय के लोग इस भांति धन के दास नहीं थे। प्राचीन समय के अधिक मनुष्यों की प्रवृत्ति केवल इसी धुन में थी कि धनोपार्जन करके अनन्त और स्थायी सुख को प्राप्त करें। इस समय के अधिकांश लोग केवल धनोपार्जन में लगे हुए हैं। यही कारण है कि नित्य नये यंत्र और कलाएं निकाली जाती हैं। बुद्धिका धर्म है कि जितना यह लगाई जाएगी उधरही अधिक खोज करेगी हमको अधिक शोक तो इस बात का है कि इन्हीं माननीय ऋषिमुनियों की आजकल की अधिकांश सन्तान इन यंत्रों को देख कर बड़े आश्चर्य में आ जाती है और अपने पूर्वजों को अलौकिक बुद्धि वाले मानने में सन्देह कर बैठती है।

इस समय अधिकांश हिन्दुओं (आर्यों) की तो यह दशा हो रही है कि इन यंत्रादिकी बनावटों की विधाओं को रस्य जानना तो दूर रहा इनको समझाने पर भी नहीं सक्षम होते। ऐसी अथा गत होने का कारण यही है कि महाभारत के समय में जो विरोध की अग्नि भड़क उठी उससे नित्य यहां पर लड़ाई मगडे रहने लगे और विधाओं का पठन पाठन ए. प्र. प्र. का रुक गया और लोग शनैः २ मूर्ख होते गये। उसी मूर्खता का परिणाम अब भाग रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम सब परस्पर का हँस छोड़ें और इस राज्य के शान्तिमय समय में अनेक विधाओं को सीखकर पुनः अपने को योग्य बनाएं और अपने पूर्वज ऋषियों की कीर्ति पताका को पुनः उच्च शिखर पर पहुंचाएं।

इति विचारदर्पण दर्शन द्वितीय समाप्तः

तृतीयोऽध्यायः ।

॥ अर्जुन उवाच ॥

ज्यायसीचेत्कर्मणस्तेमताबुद्धिर्जनार्दन ॥
तत्किंकर्मणिघोरं मानियो जयसिकेशव ॥

दोहा—बुद्धिभलीहैकर्मते, कृष्णकहीतुमजोहि ॥

कर्मभयानकमैकहा, केशवडारतमोहि ॥ १ ॥

अर्जुनने कहा कि—हे जनार्दन! जो आप कर्मयोगसे ज्ञानयोगको श्रेष्ठ मानते हो तो आप 'तस्माद्युध्यस्व' 'तस्मादुत्तिष्ठ' ऐसे ऐसे वाक्य कहकर क्यों मुझको घोर कर्ममें प्रवृत्त करते हो ? ॥ १ ॥

व्यामिश्रेणैववाक्येनबुद्धिर्मोहयसीवमे ॥

तदेकं वद निश्चित्ययेनश्रयोऽहमाप्नुयाम् ॥

दोहा—वचनसुनेसन्देहको, मोबुद्धिहैभरमाति ॥

निश्चयकरियाकौकहौ, मुक्तिहोइजेहिभांति ॥ २ ॥

हे कृष्ण! जो तुमने कभी कुछ और कभी कुछ अनेक प्रकारकी बातें कही हैं, इससे मेरी बुद्धि औरभी बड़े संदेहमें पड़ गईहै आपकी इन बातोंसे मुझे यह कुछभी ज्ञान नहीं हुआ कि—मैं क्या करूं? इससे अब एक बात निश्चय होके कहो जिससे मेरा कल्याणहो ॥ २ ॥

लोकेऽस्मिन्द्विविधानिष्ठापुराप्रोक्तामयानघ

२ ॥ १ ॥ २ ॥ कर्मयोगेनयोगिनाम्

दोहा-निष्ठाजो द्वै भाँतिकी, पहिले कही बनाय ॥
सिद्धनको ज्ञानी भलौ, कर्मनि कर्मवताय ॥३॥

यह सुन श्रीकृष्ण बोले-हे अर्जुन ! मैंने जो प्रथम इस संसारमें तत्त्व-ज्ञान निष्ठा और कर्मयोगनिष्ठा जो दो प्रकारकी निष्ठा कही हैं उनमेंसे सांख्यवालोंको तत्त्वज्ञान निष्ठा है और योगियोंको कर्मयोगनिष्ठा है ॥

न कर्मणामनारंभान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ॥
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ४

दोहा-कर्मविना कीन्हें पुरुष, ज्ञान हिल है न कोय ॥
ज्ञानरहित संन्यासके, कबहुँ न मुक्ति जु होय ॥४॥

हे अर्जुन ! कर्म किये बिना मनुष्य नैष्कर्म्य जो तत्त्वज्ञान है, उसको नहीं पाता है, क्योंकि केवल संन्यास लेने हीसे निष्काम कर्म करते चित्त शुद्ध किये बिना सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है ॥४॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

दोहा-कर्म करे बिना छिन कहू, रहे न कोऊ जंतु ॥
विवश भये कर्मनिकरे, बांधे माया तंतु ॥ ५ ॥

किसी अवस्थामें कोई प्राणी कायिक, मानसिक, वा वाचिक, कर्म किये बिना क्षण भरभी नहीं रह सकता है, क्योंकि प्रकृतिके जो राग, द्वेषादि गुण हैं उनके वशीभूत होकर सब प्राणियोंको कर्म करना पड़ता है ॥

कर्मैन्द्रियाणिसंयम्यय आंस्ते मनसा स्मरन्
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते

दोहा—कर्मैन्द्रियनको रोकिकै, मन विषयनको ध्यान
कपटी मूरखमें बढो. तेहिको दंभी जान ॥ ६ ॥

जो हाथ पांव आदि कर्म करनेवाली इन्द्रियोंको वशीभूत करके
भगवान्‌के स्मरणके बहानेसे मनमें इन्द्रियविषयोंका ध्यान करता
रहताहै, वह मूढबुद्धि मिथ्याचारी कहा जाताहै ॥ ६ ॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसानियम्यारभतेऽर्जुन
कर्मैन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥

दोहा—रोकै इन्द्रियनचित्तसों, कर्मनियमनिरचाइ ॥

फलअभिलाषाको तजै, तातें यह अधिकाइ ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई नेत्र आदि इन्द्रियोंको मनसे रोककर अर्थात्
अपने सब कर्मोंमें अपनेको भगवान्‌के आधीन जान कर्मइन्द्रियोंसे
कर्मयोगका आरंभ करताहै और फलकी अभिलाषा नहीं करता
वही श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः ॥

शरीरयात्रापि च तेन प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥

दोहा—अनकारिबै कर्महिकहै, भले कर्म करिमीत ॥

बिनुकीनेते कर्मके, देह न निवहै रीत ॥ ८ ॥

इससे हे अर्जुन ! तू निश्चय करके कर्म कर, कर्म न करनेसे कर्म करना श्रेष्ठ है और कर्म करना छोड़ देनेसे तेरे शरीरका निर्वाह होना भी कठिन होजायगा ॥ ८ ॥

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबन्धनः
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगःसमाचर ॥ ९ ॥

दोहा—यज्ञसुकर्मविकर्मते, जंगबन्धनतेहोत ॥

तिर्हिकाजेकर्मनिकरो, मेटिफलनकेगोत ॥ ९ ॥

यज्ञ जो विष्णु भगवान् उनके आराधनार्थ जो कर्म हैं, उन्हें छोड़कर जितने इस संसारमें कर्म हैं वे सब बन्धनरूप हैं, इसलिये हे अर्जुन ! विष्णुभगवान् की आराधनाके निमित्त तू निष्काम होकर कर्म करनेमें प्रविष्ट हो ॥ ९ ॥

सहयज्ञाःप्रजाःसृष्ट्वापुरोवाच प्रजापतिः ॥
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुकृ

दोहा—यज्ञसहितरचिजगतको, कहीविधातावात ॥

उदयतुह्यारोयज्ञते, कामधेनु यह तात ॥ १० ॥

परमात्माने सृष्टि रचनेके समय यज्ञके साथ प्रजाको रचकर कहा कि, इससे तुझारी वृद्धि होगी और यही तुझारे सब मनोरथोंको पूर्ण करेगा ॥ १० ॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः ॥
परस्परंभावयंतःश्रेयःपरमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

दोहा—यज्ञनिकरिदेवनि तजो, देवतुहें फल देहु ॥ ११ ॥

वृद्धि परस्परयाँ करौ, मनवाँछित फल लेहु ॥ ११ ॥

तुम यज्ञादि कर्मसे देवताओंका पूजन कर उनकी वृद्धि करो, तब वे देवताभी वर्षादिसे अन्नादिकी वृद्धि कर तुम्हारी वृद्धि करेंगे. इस तरह आपसमें एक दूसरेकी वृद्धिकरनेमें तुम सबका बहुत भला होगा ॥ ११ ॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः

तैर्दत्तान् प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥

दोहा—इष्टभोग कूँ देत है, देवत जैते मित्त ॥

बिन पूछे ते लेत हैं, ते हैं चोर न चित्त ॥ १२ ॥

यज्ञोंसे पूजे हुए ये देवता तुमको अभीष्ट भोग देंगे और जो कोई इनके दिये भोगोंको इनहीके निमित्त, दिये बिना भोगेगा वे चोर हैं १२

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्व किल्बिषैः ।

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥

दोहा—यज्ञशेष जो खात हैं, पाप न डारत थोड़ ॥

यज्ञविना जो खात हैं, अधनि उह त हैं सोड़ ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो बलिवैश्वदेवादि पंचयज्ञकरके भोजन करते हैं वे महात्मा गृहस्थियोंके पाँच पापोंसे छूट जाते हैं और जो कोई अपने लिये भोजन बनाते हैं और बिना देवताओंके अर्पण किये आपही खालेते हैं वे पापी पापोंको भोगते हैं ॥ १३ ॥

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः १४

दोहा-जीवअन्नतेहोतहै, अन्नमेहतेहोय ॥

मेहयज्ञतेहोतहै, यज्ञकर्मतेजोय ॥ १४ ॥

हे अर्जुन! संपूर्ण प्राणी अन्नसे होतेहैं अर्थात् जब अन्न पेटमें जाताहै तब रसरूप हो शुक्र शोणितकी वृद्धि कर प्राणियोंको उत्पन्न करताहै यह अन्न मेहसे होताहै, मेह यज्ञसे होता है और यज्ञ कर्मसे होताहै १४

कर्मब्रह्मोद्भवंविद्धिब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥

तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

दोहा-कर्मजुउपजैवेदते, वेदब्रह्मतेमानि ॥

ब्रह्मजुभाषतसबनिमें, ताहियज्ञकरिजानि ॥ १५ ॥

कर्मकी उत्पत्ति वेदसे होती है और वेद अक्षर जो परब्रह्म उससे होताहै, वह ब्रह्म सबमें व्यापक है और यज्ञमें, सदैव रहताहै इससे यज्ञादि कर्म अवश्यही कर्तव्यहैं ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः ॥

अघायुरिन्द्रियारामोमोघंपार्थसजीवति १६

दोहा-वेदवंतयांकर्मको, जे न करतजनकोय ॥

पापी इंद्रीवशभये, जनम रहतहैखोय ॥ १६ ॥

हे अर्जुन! वेदसे कर्म, कर्मसे यज्ञ, यज्ञसे मेह, मेहसे अन्न, अन्नसे प्राणी और प्राणियोंसे फिर कर्मकी प्रवृत्ति इस प्रकार ईश्वरने यह चक्र घुमायाहै इसलिये ईश्वराराधनरूप यज्ञादिके कर्ममें जो प्रवृत्त नहीं होते हैं केवल इन्द्रियोंके विषय भोगोंमें लगेरहते हैं उनका जीवन निष्फलहै

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्चमानवः॥

आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते ॥

दोहा-आतमसोंसंतुष्टजे, आतमसोंरतिहोय ॥

वृत्तिजुआतमसोंरहै, ताहिनकरनोकोय ॥१७॥

हे अर्जुन ! जिसकी आत्माहीसे प्रीति है, और जिसकी आत्माही से वृत्ति है और जो आत्माहीमें संतुष्ट है. जिसे इन्द्रियविषयोंसे कुछ आसक्ति नहीं है ऐसे तत्वज्ञानी पुरुषको किसी कर्मके करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १७ ॥

नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥

नचास्यसर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः१८

दोहा-जाहिकरते पुनिनहीं, विनुकीन्हेंनहिंदोष ॥

ब्रह्मादिकसोंकाजनहीं, आत्माहीसोंमोष ॥१८॥

ऐसे ज्ञानीपुरुषको कर्म करनेसे कुछ पुण्य नहीं है और कर्म न करनेसे पापभी नहीं है ! क्योंकिज्ञानी निरहंकार है, इससे उसे कुछ विधि निषेध नहीं है, और न ज्ञानीको प्राणीमात्रका आश्रय लेनेकीभी कुछ आवश्यकता है ॥ १८ ॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ॥

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोतिपुरुषः१९

दोहा-फलकामनिकोछाँडिके, कर्मकरोतुमनित्त ॥

संगविनाकर्मनिकरै, मुक्तिलहतहैमित्त ॥ १९ ॥

इससे हे अर्जुन ! फलश्री अभिलाषाको छोड़ जो नित्यनैमित्तिक कर्म हैं, उन्हें निरंतर करा जो फलकी अभिलाषा छोड़ कर्म करते हैं उन्हें अवश्य मोक्ष मिलती है। संध्यावन्दनादि नित्यकर्म हैं और पुत्रादिके जन्म होनेके निमित्त जो कर्म किये जाते हैं जैसे जात कर्म आदि, सो नैमित्तिक कर्म हैं ॥ १९ ॥

**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥**

दोहा—लही सिद्धि जनकादिहूँ, कीन्हे कर्म समाज ॥

तुझें देखि और उकरे, याते करो सुकाज ॥ २० ॥

जनकादिक जो ज्ञानी होगये हैं उनकोभी कर्म करनेहीसे सिद्धि मिली थी, इससे जो तू अपने को बड़ा ज्ञानी समझता है तौभी लोक संग्रहके लिये तुझको कर्म करना उचित है। अर्थात् जो ज्ञानी कर्म छोड़ देंगे तौ उनकी देखा देखी अज्ञानीभी कर्मको त्याग बैठेंगे २०

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ॥

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते २१

दोहा—बड़ेजु आचार हिकरें, सोई मानत आन ॥

ताही मग सब जन चलें, बड़े करें जु प्रमान ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! बड़े आदमी जो जो कर्म करते हैं उन्ही कर्मोंको साधारण मनुष्य किया करते हैं और जिन बातोंको वे प्रमाण मानते हैं लोगभी उसीके अनुगामी हो जाते हैं ॥ २१ ॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

दोहा-मोकोकछुकरनो नही, तिहूं लोकमें काज ॥

कछुनलह्योलहिबेन कछु, कर्म करतयासाज ॥ २२ ॥

हे पार्थ! तू मुझको देखले, तीनों लोकमें मुझे कुछ करना नहीं है न कोई वस्तु मुझे अलभ्य है, न किसी वस्तुके प्राप्त करनेकी अभिलाषा है तथापि कर्म कियाही करता हूं ॥ २२ ॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ॥

मम वर्तमानुवर्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

दोहा-जोहूँ कर्मनिनहिं करौं, रहूँ आलसहितमीत ॥

सोही सबनरहरहैं, मेरे मनयहरीत ॥ २३ ॥

हे पार्थ! जो मैंही, आलस्य छोड़ सावधान हो कर्म करनेमें प्रवृत्त न होऊँ तौ ये मनुष्य सब प्रकारसे मेरेही अनुगामी होंगे, अर्थात् कर्म करना छोड़ देंगे ॥ २३ ॥

उत्सीदियुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

दोहा-जोहूँ कर्मनिनहिं करौं, होइ सबनको नास ॥

प्रगटाऊँ संकरतबै, हनौ प्रजायहनास ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो मैं कमकरना छोड़ दूँ तौ कर्मके लोप होजानेसे धर्म नष्ट हो जायगा. जिससे ये सब लोक नष्ट हो जायंगे और सृष्टि वर्णसंकर होने लगैगी, तौ यह संकरकर्ता मैंही ठहरूंगा और इस प्रजाको नष्ट करनेवालाभी मैंहीं होऊंगा ॥ २४ ॥

**सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्**

दोहा—मूर्खजोकेर्मनिकरै, करबहुप्राप्तिसुभाइ ॥
लोककाजज्ञानीकरै, ममतासौनलगाइ ॥ २५ ॥

हे भारत ! जैसे अज्ञानी लोग काम करनेमें आसक्त होकर कर्म करते हैं. वैसेही लोकसंग्रहके निमित्त अर्थात् सबको शिक्षा देनेके लिये विद्वान् लोग कर्ममें आसक्त न होकर कर्म करते हैं ॥ २५ ॥

**न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥**

दोहा—तिनबुद्धिभेदनतजै, रहैकर्मलपटाइ ॥

सावधानज्ञानीरहै, पोषैतेईदाइ ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! जो अज्ञानी हैं और कर्म करनेमें आसक्त हैं उनको कर्म न करनेका उपदेश देकर उनकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न न करै. विद्वान् लोगोंको उचित है कि, आपभी सावधान होकर उनसे कर्म करावै २६
**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥**

दोहा-मायाकेगुणरहितहैं, सबैकर्मयहजानि ॥

अहंकारकरिमूढजे, लेतअपनपौमानि ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! प्रकृतिके गुणोंसे ये संपूर्ण कार्य हो रहे हैं, परन्तु अहंकारसे विमूढ होगई है बुद्धि जिनकी सो अपनेको इन सब बातोंका करनेवाला मानते हैं ॥ २७ ॥

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥

गुणा गुणेषु वर्तत इति मत्वा न सज्जते ॥

दोहा-गुणअरुकर्मविभागको, जानततत्त्वजोकोय

इंद्रीविषयनसोंलगी, आपमगननहिहोय ॥ २८ ॥

और हे महाबाहो ! जो गुण और कर्मके विभागोंके तत्त्वको जानते हैं वे यही मानते हैं कि, सत्त्वादिक गुण अपने २ कार्योंमें वर्तमानहैं. इससे उनमें आसक्त नहीं होते हैं ॥ २८ ॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ॥

तानकृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्नविचालयते

दोहा-मायागुणकरिमूढजे, रहैविषयलवलाय ॥

तेहिमगतेजानैतिन्हैं, देइनकहूंचलाय ॥ २९ ॥

प्रकृति जो माया उसके सत्, रज, तम गुणोंमें जो मनुष्य अत्यन्त मोहित होरहे हैं वेही उसके गुणकर्ममें आसक्त होतेहैं उन अल्पज्ञ मन्द पुरुषोंको ज्ञानी मनुष्य कर्ममार्गसे न हटावै. इसका यह अभिप्राय है कि तू अल्पज्ञ है अतः कर्मकर ॥ २९ ॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्ध्यस्व विगतज्वरः

दोहा-चित अध्यातम आनिकै, कर्मन सौं लौराखि ॥

वै अकाम ममता तजौ, युद्धाहि कौं अभिलाखि ॥

हे अर्जुन ! क्षत्रियों का जो शूरवीरपने का स्वभाव है, उस स्वभाव से आत्मा में मन लगाय संपूर्ण कर्मों को युद्ध में आरोपण कर फल की आशा और ममता को छोड़ सब संतापो से रहित हो युद्ध करो ॥ ३० ॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ॥

श्रद्धावंतोऽनसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ३१

दोहा-जे नित या मर मतहि, श्रद्धासों गहिलेत ॥

जिनके जिय निह कर्म हैं, करै कर्मन हिंचेत ॥ ३१ ॥

हे अर्जुन जो मनुष्य श्रद्धालु होय, और मेरे वाक्य की निन्दा न करके इस मेरे मत को नित्य स्वीकार करते हैं अर्थात् कर्म करने में प्रवृत्त हो जाते हैं वे भी इन कर्म बंधनों से छूट जाते हैं ॥ ३१ ॥

ये त्वेतदभ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे मतम् ॥

सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्वान्निष्ठानचेतसः ॥ ३२ ॥

दोहा-जो या मेरे मतहि को, करत स दोष लगाय ॥

ते मूरख जानत नहीं, हैं अचेत के भाय ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! जो मेरे इस मतको अंगीकार नहीं करते हैं और उसकी निन्दा करते हैं उनको किसी प्रकारका ज्ञान नहीं है और उनको विचारहीन तथा नष्ट समझो ॥ ३२ ॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥

प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ३३

दोहा-ज्ञानवंतजूकरतहैं, अपनी प्रकृतिसमान ॥

सबको ऊनिज प्रकृतिवश, एकैते जु अज्ञान ॥ ३३ ॥

ज्ञानवान् मनुष्यभी अपने स्वभावहीके अनुसार काम करते हैं, फिर जो अज्ञानी अपनी प्रकृतिके अनुसार चेष्टा करें तौ कहनाही क्या है, संपूर्ण प्राणी अपनी प्रकृतिके अनुसार काम करते हैं क्योंकि प्रकृति बलवान है इसमें इन्द्रियोंका निग्रह कुछ नहीं कर सकता है ॥ ३३ ॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ॥

तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥

दोहा-सब इन्द्रियके विषयमें, रागद्वेष जो होइ ॥

तिनके वश नरजाइनहिं, रहै जु अरि सम होइ ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! प्रत्येक इन्द्रियका अपने अपने विषयमें राग द्वेष है, इस राग द्वेषके वशीभूत होना उचित नहीं है, क्योंकि ये दोनों मोक्षमें विघ्न करनेवाले हैं ॥ ३४ ॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्

स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

दोहा-ऊनहोयनिजधरमहू, परतें अधिकौमानि ॥

मीचंभली निजधर्ममें, परधर्महिभयजानि ३५

हे अर्जुन! अच्छीतरह कियेहुएभी परधर्मसे अपना धर्म अंगहीन अर्थात् गुणरहित होनेपरभी श्रेष्ठ है, अपने धर्ममें तौ मरनाभी श्रेष्ठ है और परधर्म भयानक है अर्थात् तेरा जो युद्धरूप क्षत्रियधर्म है इसमें मरनेपरभी स्वर्ग मिलेगा और इसको छोड़ देनेसे नरक होगा ॥३५॥

समीक्षा-यहां इस श्लोकके तीन अर्थ हैं. प्रथम तो यह कि शरीर मरण धर्मी है, आत्मा मरण धर्मी नहीं है, आत्मा तो केवल नवीन और जीर्णवस्त्रोंकी भांति नवीन और जीर्ण शरीरोंका ग्रहण और त्याग करता है. अतः जो तू (अर्जुन) यह समझता है कि इससमय यह जो मैं हूँ और यह जो मेरे सम्बन्धी हैं, यदि हम युद्ध में मरखप जायेंगे (अर्थात् वर्तमान शरीरोंको त्याग देंगे) तो हम सदाके लियेही नष्ट होजायेंगे, यह तेरा समझना अज्ञान मात्रही है, क्योंकि नित्य (आत्मा) को अनित्य (शरीर) मानना मूढता नहीं तो क्या है ! अतः यह सिद्ध हुवा कि स्वधर्मको अर्थात् आत्माके नित्यतारूपी धर्मको छोड़ दूसरेका धर्म अर्थात् शरीर के अनित्यतारूपी धर्मको धारणकरना भयकारी है अर्थात् ऐसा माननेसे बहुत हानि है। अथवा इसी अर्थको इस प्रकार समझना चाहिये कि जीवात्मा शुद्धस्वरूप है अज्ञानसे इंद्रियोंके धर्मोंको अपने धर्म समझ बैठा है. इसलिये इस जीवात्माको अपने शुद्धस्वरूपमें स्थिर होनेकी चेष्टा करनी चाहिये अर्थात् आत्माको तो निर्मल ब्रह्मज्ञानसेही आनंद प्राप्त होसक्ता है, इंद्रियोंके विषयोंमें फँसनेसे, न तो बहुत हानि उठानी होगी. दूसरा अर्थ यह है कि अर्जुनने क्षत्रियधर्मके पालने की गुरुकुलमेंही जब गुरुके सामने प्रतिज्ञा कीथी तो इसको अबभी

युद्धादि क्षात्रधर्मका ही पालन करना चाहिये. यदि ऐसा नहीं करना था तो वहां बिना विचारे प्रतिज्ञा क्यों की, प्राचीन कालमें यही नियम था कि गुरुके सामने अपना २ वर्ण स्वीकार करना होता था. तीसरा अर्थ यह है कि युद्ध भूमिमें आनेसे पूर्वही अर्जुनने दुर्योधनादिके साथ लड़नेकी प्रतिज्ञाकी थी और इस समय युद्धसे हटना चाहता है तो इसमें भी प्रतिज्ञाका भंग होता है, और यह भी बात थी कि श्रीकृष्ण महाराजका अभीष्ट दुष्टोंको नष्ट करके लोक मर्यादा स्थापित करना था, जो इस समय अर्जुनको युद्धसे हटनेकी अनुमति देते तो लोकमें धर्ममर्यादा स्थापित नहीं हो सकती थी, अतः उन्होंने वीरताके साथ युद्ध क्षेत्रमें रहकर फलाफलका विचार न देखते हुए लड़नेका ही उपदेश अर्जुनको दिया.

॥ अर्जुन उवाच ॥

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ॥

अनिच्छन्नपि वाष्ण्यबलादिवनियोजितः

दोहा—जाके इच्छानाहिनें, कर्म देत संताप ॥

काहिये प्रेरै कौन के, पुरुष करत हैं पाप ॥ ३६ ॥

हे वृष्णिवंशी कृष्ण ! पापकर्म करनेकी इच्छा किसीकी नहीं होती है. फिर भी ऐसे, जैसे कोई बलपूर्वक कराता है. वह मनुष्य पाप करने में प्रवृत्त हो जाता है. इसलिये इस पापकर्ममें प्रवृत्ति करानेवाला कोई न कोई अवश्य है. सो हे कृष्ण ! वह कौन है ? ॥ ३६ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्

दोहा-यहजुकामअरुक्रोधहै, रजगुणहीतेहोइ ॥

क्योंहूंपूरणहोइनहिं, पापीकेअरिजोइ ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! यह काम अर्थात् कामनाही है, जो किसी प्रकारसे फल-वती न होनेपर क्रोधमें परिणत होजाती है, इस क्रोधकी उत्पत्ति रजोगुणसे है, यह काम बड़ा खानेवाला है, अर्थात् अनेक प्रकारके भोगोंको भोगता हुआभी नहीं अघाता है और यह क्रोध बड़ा पापी है, इसे मनुष्योंका परम शत्रु समझो ॥ ३७ ॥

धूमेनाव्रियतेवहिर्यथाऽऽदर्शोमलेनच ॥

यथोल्बेनावृतोगर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

दोहा-आगिढपैज्योंधूमसे, दर्पनमलकेभाइ ॥

गर्भजरासोंज्योंढपै, जगै न ताही दाइ ॥ ३८ ॥

जैसे अग्नि धुंसे ढका रहता है, दर्पण मलसे आच्छादित होता है और गर्भ जरासे आवृत रहता है, वैसेही यह ज्ञानभी कामनासे ढका-हुआ रहता है ॥ ३८ ॥

आवृतं ज्ञानमेतेनज्ञानिनोनित्यवैरिणा ॥

कामरूपेणकौंतेयदुष्पूरेणानलेनच ॥ ३९ ॥

दोहा-ज्ञानीदूकेज्ञानइन, वैरीराख्योढाँपि ॥

कामदुसहयहअग्नि है, सकैनकोऊदाँपि ॥ ३९ ॥

हे कुंतीपुत्र ! यह मनुष्यका सदा वैरी है, भोगोंका भोगतेहुएभी कभी नहीं अघाता है और जैसे अग्नि ईंधन मिलनेसे बढ़ता है वैसेही ज्यों ज्यों इसेभोग्य वस्तु मिलती है वैसेही वैसे बढ़ताहै और भोग्य

पदार्थोंके न मिलनेपर अग्निकी तरह जलाता है। ऐसे इस कामने ज्ञानियोंका ज्ञानभी ढक रक्खा है ॥ ३९ ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्त्यदेहिनम् ॥

दोहा-इंद्रीमन अरु बुद्धि है, येई जाको थान ॥

इन करिकै सो न सतु है, ज्ञानी हू को ज्ञान ॥ ४० ॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण इन्द्रियां, मन और बुद्धि ये कामके उत्पत्तिस्थान और रहनेकी जगह हैं यह काम इन्हींके द्वारा ज्ञानको ढककर आत्माको मोह उत्पन्न करता है ॥ ४० ॥

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्

दोहा-अर्जुन ताते प्रथम ही, तूं इन्द्रिनको रोकि ॥

हरत ज्ञान विज्ञानको, पापमूल लखि ठोकि ॥ ४१ ॥

हे भरतकुलभूषण ! ऊपर कहे हुए हेतुओंसे तू प्रथम इन्द्रियगण, मन और बुद्धिको रोककर इस कामको बश कर ले क्योंकि यह बड़ा पापात्मा है और आत्मज्ञान तथा शास्त्रज्ञान दोनोंको नष्ट कर देता है

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ॥

मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥

दोहा-इन्द्रिय है सब ते परे, तिन ते पर मन जोय ॥

मन ते परे बुद्धि है, ताते आत्म होय ॥ ४२ ॥

बाह्य जो स्थूल पदार्थ हैं, उनसे इन्द्रिय पर और श्रेष्ठ हैं. इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है. मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है और जो बुद्धिसे परे है वही आत्मा सर्व श्रेष्ठ है इसी आत्माको यह दुष्ट काम मोहित करना है ॥ ४२ ॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्माना
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥

दोहा—आत्मलखियेबुद्धिपर, मनकोकरिवशमाह
कामरूपअरिदुसहको, मारिडारिनरनाह ॥ ४३ ॥
कह्योतीमरेध्यायमें, कर्मयोगयदुनाथ ॥
पूजैयाकोभक्तिसों, हरितारैदेहाथ ॥ १ ॥
कीनोआनंदरामयह, कर्मयोगवहुभाय ॥
कृष्णकृपाकरिहेरिये, रहियेसदासहाय ॥ २ ॥
हे महाबाहो अर्जुन ! इस तरह बुद्धिसे परे आत्माको जानकर
और मनको निश्चलरूपसे वशमें लाकर इस महाअजेय कामरूप
शत्रुका दमन कर ॥ ४३ ॥

-इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-
ऽर्जुन संवादे विचारदर्पणदोहासहितभाषाटीकायां कर्म-
योगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें श्रीकृष्ण महाराजने अर्जुनको यह उपदेश
दिया है कि जो मनुष्य परोपकारादि कार्योंमें कुछ भाग न लेकर केवल
अपने भरण पोषणमें लगे रहते हैं. उनका जीना व्यर्थही है, अतः हम
सबको चाहिये कि यथा संभव और यथाशक्ति “यज्ञ” अर्थात्
परोपकारादि कामोंमें लगे रहें.

‘यज्ञ’ शब्द यज्ञ धातुसे बनता है। जिसका अर्थ यह है देवपूजा, संगति करण और दान,

१—देव शब्द कई अर्थोंमें प्रयुक्त होता है परंतु इस अध्यायमें मुख्य दोही अर्थ है अर्थात् (क) विद्वानोंका संग करना ‘देवपूजा’ है (ख) अग्निमें सुगंधित और आरोग्यकारक पदार्थोंका हवन करना ‘देवपूजा’ है।

विद्वानोंके संगसे ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है और अग्निमें हवन करनेसे वायुके रोगकारक जंतुओंका नाश होकर, अथवा रोग कारक सूक्ष्म पदार्थोंका परिवर्तन होकर हम लोगोंकी आरोग्यता बढ़ती है और वही अग्निमें दी हुई आहुतियां सूर्य किरणों द्वारा आकाशमें जाकर उत्तम वर्षाकी हेतु होती हैं अर्थात् यथा-समयपर वर्षा होने लगती है और अतिवृष्टि और अनावृष्टि न होकर देश अकाल पीडित नहीं होने पाता है।

मेघ वर्षाने वाली परमात्माकी शक्तिका नाम इंद्रदेव है। हवन करनेसे वह शक्ति विशेष उत्तम वर्षा देती है यह “इंद्रदेव” का प्रसन्न होना है। अतः अग्नि, सूर्य, वायु आदि पदार्थोंको यथावत् जानना और उनसे कामलेना तथा विद्वानोंका संग करना “देव पूजा” हुवा।

२—संगति करण—प्रमाणों द्वारा अपने संशय और भ्रमको दूर करना “संगति करण” है अथवा संसारमें न्यायसत्ताकी व्यवस्था स्थापित करना संगति करण है।

३—देश हितकारी कामोंमें तन, मन, धनसे सहायक बनना “दान” का अर्थ है।

“यज्ञोवै विष्णुः” ब्राह्मण ग्रंथोंमें लिखा गया है, अर्थात् परमेश्वरका नामभी यज्ञ है, अतः

परमात्माकी इच्छा पर सब कर्मोंका फल छोड़ निष्काम होकर कर्म करनाभी “यज्ञ” कहलाता है-

अध्याय ३ के दश, ग्यारह, बारह, तेरह श्लोकों में इसी आशयको लेकर “यज्ञ कर्म” की महिमा बताई गई है अर्थात् तात्पर्य यह है कि अपने नित्यके भोजनमेंसेभी कुछ भाग परोपकारार्थ निकाल देना चाहिये नहीं तो नित्य भोजन बनानेमें पांच पाप ही होते हैं। यथा (१) चूल्हामें अग्नि जलाना (२) झाड़ू देना. [३] चाकी [४] ऊखल सूसलको काममें लाना और [५] वर्तनोंमें पानी रखना. इनसे छोटे २ जीव जंतुओंकी हिंसा होती है यही पंच पाप हैं. जब इन क्षुद्र पापोंके बंधनसे छुटकारा नहीं होसکتा है तो बड़े-पापोंकी वार्ताही क्या है. हम लोगोंको चाहिये कि सदा परोपकारादि उत्तम पुण्य कार्योंको करते रहें, यही भ्रमणा सृष्टिके आदिमें परमात्माकी ओरसे वेदोंके रूपमें महर्षियोंके अंतःकरणमें हुई थी (देखो अ० ३ श्लो० १०)

अथ विचारदर्पण तृतीय दर्शन प्रारम्भः

प्रचीन और वर्तमान समय के हिन्दुओं (आर्यों) में भेद

[हमने जो प्राचीन समय और वर्तमान समयका नीचे भेद दिखाया है उससे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि वर्तमान समय के सभी स्त्री पुरुष अच्छे नहीं हैं। परंतु प्रयोजन यह है कि वर्तमान समयमें अधिक लोग प्राचीन समयके पदुष्योंकी अपेक्षा उत्तम गुणोंमें इस समय गिरे हुए दिखाई देते हैं। इसलिये इस भेद को देखकर हम लोग अपनी २ दशाको सुधारें और हमारी भारत माताके मुखको उज्ज्वल करें, इसको यही अभीष्ट है]

हम नीचे यह दिखाना चाहते हैं कि पूर्व कालके हिन्दुओं (आर्यों) की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक दशा कैसी थी और आजकल हमारी दशा क्या हो रही है।

(१) प्राचीन समय—ब्राह्मण लोग समस्त मूर्खदलमें भ्रमण करनेवाले और योग, ज्योतिष द्वारा अस्त्रिल घृहाण्डका वृत्तांत जाननेवाले होते थे । वेद, वेदांगपारण होनेके कारण लोगोंको धर्म, अर्थ दोनोंके उपार्जन करनेकी विधि बता सकनेसे " महाराज " कहलानेके योग्य थे ।

वर्तमान समय—अधिकांश ब्राह्मण लोग ऐसे कूपपंडूक बनगर्भ हैं कि लोक लोकांतरोंका वृत्तांत जानना तो दूर रहा भारतवर्ष के भिन्न २ प्रांतोंकाही पूरा ज्ञान नहीं रखते । दूसरोंको अर्थोपार्जन की विधि बताना तो दूर रहा स्वयं मांगने और सेवावृत्ति करने के अतिरिक्त कोई वृत्तिका साधन नहीं जानते जिसका फल यह हुआ कि " भिक्षुक " और " महादास " कहलाने के योग्य बन गये हैं ॥

(२) प्राचीन समय—सत्री लोग विद्वान, जितेन्द्रिय, न्यायकारी रक्षक और प्रजा पालक होते थे ।

वर्तमान समय—अधिकांश सत्री अपठित विषयप्रेमी, स्वयं दीन और येन केन प्रकारेण परद्रव्य हरने की इच्छा वाले होने हैं । प्रायः अपना और अपने कुटुंबका भरण पोषण करनेमें भी असमर्थ दिसाई देते हैं ।

(३) प्राचीन समय—वैश्य विद्वान, जितेन्द्रिय, समुद्रयात्रा करके देशदेशांतरों में व्यापार करने वाले, प्रायः सत्यवादी और सात्विक दान करने वाले थे, और इतने धनोद्धय होते थे कि जिनके पास हाथियों की अगणित संख्या रहती थी, जैसा कि नलद्वीपमें एक वैश्य के हाथियोंके युपका वर्णन है। आबू पर्वतपर एक जैनी वैश्य का बनाया हुआ मंदिर है, जिसपर दस करोड़ रुपयोंसे अधिक लागत आई थी ।

वर्तमान समय—अधिकांश वैश्य ऐसे देखने में आते हैं जो देवनागरीका लिखना पढ़ना, भी नहीं जानते । यज्ञोपवीत संस्कारसे रहित, भ्रू, समुद्रयात्राके नामसे ठगने वाले, नामके लिये कुपात्रों को दान देनेवाले, कामी, प्रतिज्ञा भंग करनेवाले, देशाभिमान शून्य, व्यापार विद्वान न जाननेके कारण देशकी दरिद्रताको बढ़ाने वाले पराधीन व्यापार करते दीस पड़ते हैं ।

(४) प्राचीन समय—जो पुरुष मलीनता, धूर्त्तता और दरिद्रता लिये रहतापा उसीकी शूद्र कहते थे ।

शूद्र शब्द की व्युत्पत्तिही स्पष्ट बता रही है कि शुद्धिको त्यागने वाला

अर्थात् मलीनता को धारण करनेवाला ही शूद्र कहलाता है यथा—

शूचं द्रवतीति शूद्रः ।

(अर्थ)—शुद्धि अर्थात् स्वच्छता को जो त्यागता है वह शूद्र है ।

जन्मसे शूद्र होतेहुयेभी जो लोग विद्वान और धर्मात्मा बन जातेये, उनका पूर्ण आदर और सन्मान भी होताथा. यथा विदुरमहाराज और वाल्मीकि मुनिका वर्णन हुवा; कितनेही मनुष्य कहतेहैं वि. पुराणोंमें शूद्रोंकी उत्पत्ति श्रीविष्णु भगवानके चरणोंसे लिखी है इसलिये वह इतर तीन वर्णोंसे नीच माने जाने चाहिये और विद्वान धार्मिक होनेपरभी ब्राह्मणोंके सदृश पूजापानेके योग्य नहीं हैं। परन्तु उन्होंने इस बातपर कभी भी ध्यान नहीं दिया कि श्रीगंगाजीकी उत्पत्ति भी श्रीविष्णु भगवान के चरणोंसे मानी गई है। श्रीगंगाजी की कितनी बड़ी महिमा हिन्दुओं (आर्यों) के हृदयमें है? यहाँतक कि श्रीगंगाजीके जल में स्नान करने से ब्राह्मण लोग अपना अहोभाग्य मानते हैं। इसीलिये प्राचीनकाल के शूद्र, शूद्रमाता पिताकी सन्तान होने परभी अपनी मलीनता, मूर्खता, और दरिद्रता का नाशकरतेहुए विद्वान धर्मात्मा और पूजनीय होनेकी चेष्टा करते ये, और अपनी सफलता का फल भोगसक्ते थे ।

वर्त्तमान समय— शूद्र लोग अपनी जाति को नीची मानकर निरुत्साही और आलसी बनरहे हैं; उसमजनों द्वारा उपदेश मिलने परभी अपने शूद्रभावको न छोडने की इच्छावाले देखने में आरहे हैं। अपनी मलीनता और दरिद्रता और मूर्खता में ही संतुष्ट बन रहे हैं। धर्मसे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अज्ञानी होनेके कारण भूत प्रेतादिको पूजते हैं। आर्य धर्मके गौरवसे शून्य दिखाई देरहे हैं, जिससे हिन्दू (आर्य) जाति सब प्रकार से बड़ी निर्बल होगई है। क्योंकि अधिकांश मनुष्य दरिद्रता, मलीनता और मूर्खताके कारण शूद्रों और अतिशूद्रों की पंक्ति में होगये हैं। जबतक यह भाग नीचभावको त्यागकर अपनी योग्यता न बढालेगा तबतक यह हिन्दूसमाज कदापि सुखी नहीं बन सका ।

(५) प्राचीन समय— ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थीजन बल बुद्धि बढानेवाले साधन ब्रह्मचर्य को अधिक मानकी दृष्टि से देखते हुए बीस पचीस वर्ष की अवस्था पर्यंत पूर्णरूप से वीर्यरक्षा करके बलिष्ठ, दृढांग और नेत्रों की ज्योति धारण करने वाले और विद्वान होतेये ।

वर्त्तमानसमय—में विद्यार्थी प्रायः ऐसेदेखनेमें आरहेहैं कि दशबारह वर्षकी अवस्थामें विवाह होनेसे वह गृहस्थी बन जाते हैं। जिससे अल्पायु रोगी, निर्बल, और वेच डाक्टरकी इच्छा रखनेवाले शोकातुर, आलसी, निरुत्साही और आँसोंकी ज्योति सों बैठनेवाले चश्माधारी दिखाई देरहे हैं. शोक! भारतवर्षकी उन्नतिकी जड़ इसीलिये निर्बल और डीली होगई है।

(६) प्राचीन समय— गृहस्थजन माता पिता की सेवा करने वाले, विद्वान् जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, सन्तानोत्पत्ति के निमित्त ऋतु समय में ही अपनी स्त्री से प्रसंग करने वाले यथाशक्ति उत्तम कार्यों में द्रव्य लगाने वाले, ईश्वरभक्त, विद्याप्रेमी और अपनी सन्तानोंको बालकपनसे विद्वान्, धर्मात्मा और बलिष्ठ बनाकर बड़ी अवस्था में उनका विवाह करनेवाले, कुरीतियों के शत्रु और शूर वीर होते थे । चतुर्थ अवस्था में घरका योद्धा छोटकर एकान्त वास करके ईश्वरका भजन करने वाले होते थे । उस समय के मनुष्य सौ पीछे नम्बे पड़ित और विद्वान् होते थे । धन धान्यसे इतने समृद्ध थे, कि मूर्ख और निर्धनता का कोई नाम नहीं जानता था ।

वर्तमान समय— अधिकांश गृहस्थ लोग जीवित माता पिताको दुःख देने वाले, उनके मरने पर अपनी नाम बढाई के लिये उनके नाम पर कुपात्रों और मुर्खोंको भोजन खिलाकर निरर्थक रुपये का व्यय करने वाले, देशसेवा और जाति सेवासे दूर भागने वाले, विद्या और उन्नति के कामों से पीछे हटनेवाले, अपने बालकों को विद्वान् और धर्मात्मा न बनाकर छोटी अवस्था में ही उनका विवाह करके उनको मूर्ख, निर्वल, और भीरु बनाने वाले, मरणांत समय तक अन्याय से द्रव्योपार्जन करते हुए सदा सांसारिक पदार्थोंमें लिपटनेवाले दीक्षपटसेही प्रतिषेधका पीछे तिरानवे अपठित हैं । देखो मनुष्य गणना रिपोर्ट सम्बत् १९६७। भारतवर्षमें भिन्न जापान, इंग्लैण्ड (बिलायत) आदि देशोंकी अत्यन्त विपरीत दशा अर्थात् सौ पीछे पचानवे मनुष्य पठित हैं, और उनकी वार्षिक आय प्रत्येक मनुष्य पीछे हम लोगोंकी प्रत्येक मनुष्य की आजीविका से बीस गुनी अधिक है हमारी दशापर शोक ! शोक !! शोक !!!

(७) प्राचीन समय— वानप्रस्थी और संन्यासी लोग स्थान २ पर जाकर गृहस्थोंको सदुपदेश देने वाले होते थे. और स्वयं अध्यात्म विद्या की खोजमें लगे हुए जितेन्द्रिय और ईश्वरभक्त पाये जाते थे ।

वर्तमान समय— अधिकांश वानप्रस्थी और संन्यासी मूर्ख, गंजेडी, भंगेडी, क्रोधी और अनेक प्रकारसे गृहस्थोंको दुःखदायी देखनेमें आरहे हैं । अनेक प्रकारसे कपटके स्वांग रचकर देश को भार रूप होते हुए इन आश्रमों को लजा रहे हैं । स्मरण रखना चाहिये कि इन बावन लाख भिक्षुमोग नामधारी साधुओं के पालन पोषणकरने में हिन्दु (आर्य) जातिको बीस करोड़ रुपया वर्ष भरमें निरर्थक नष्ट करना पड़ता है जिससे देशकी दरिद्रता बढ़ रही है । इसीसे राजा प्रजा दोनों को चाहिये कि इनमें पात्र कुपात्र देखकर इनके साथ वर्ताव करें, जिससे मूर्खोंकी वृद्धि न हो ।

(८) प्राचीन समय—में स्त्रियां विदुषी, पण्डिता, पतिव्रता और गृहकार्य में चतुरा, पति और सौस ससुरकी आज्ञा में चलने वाली, कलह से दूर भागने वाली, और अपनी सन्तान को विद्वान, धर्मात्मा, और जितेन्द्रिय, शूरावीर, और बलवान बनाने वाली; उत्तम संगीत द्वारा अपने बच्चों को नीति और धर्म के सदुपदेश देकर उनको प्रसन्न करने वाली साक्षात् सरस्वती रूप होती थीं और गृहस्थ आश्रम की शोभा बढ़ाती थीं।

वर्त्तमान समय—अधिकांश स्त्रियें मूर्खा, कलहकारिणी, सास ससुर और पतिकी आज्ञा न मानने वाली, व्यर्थ रुपयेको नष्ट करके पतिको दरिद्र बनाने वाली, आभूषण और कपड़ोंसे कदापि रुस्रन होनेवाली, और पैगम्बर, प्रेतपिशाचोंको पूजने वाली भूतप्रेतोंकी अपने में छाया आनेका दंभकरके मुख्य घरवालोंको डराने वाली। (मारवाड़ प्रांतमें तो संगीत विद्याको न जानकर मागों और) घरोंमें ऐसे अश्लील शब्दोंका उच्चारण करती हुई व्यभिचारका मार्ग दिखाने वाली देखपड़ती हैं कि जिनको वेदशास्त्री अपने मुखसे बोलती समय लजोव। यद्यपि भारतवर्षके सभी प्रांतोंकी स्त्रियां उपरोक्त विशेषण युक्त नहीं हैं। तथापि अधिक प्रांतोंमें तो यही दशा है जो ऊपर वर्णन की गई है।

(९) प्राचीन समय—देवालय ऐसे होते थे, कि जहां नित्य भक्ति और शांति की कथाएं होती थीं, जहांपर जाकर लोग हवन, जप, पूजा, पाठ करते थे। प्रत्येक देवालय में जो द्रव्य आता था, वह सब विद्यालय, महाविद्यालय खोलने चलाने में और अन्य २ धर्म कार्यों में लगाया जाता था।

वर्त्तमान समय—अधिकांश देवालयों की दशा प्राचीन कालसे विपरीत देखने में आ रही है। भक्तजनों के भक्तिके गान होनेकी उपदेश वेदशास्त्रों के मुखसे उत्सवों पर गान सुनने में आता है। शांतिरसकी कथाओं के स्थानपर वनावटी, मिथ्या और व्यभिचार सूचक कामरस की कथाएं सुनाई जा रही हैं। जो द्रव्य देवालयों में आता है उसको अच्छे कामों में न लगाकर पुजारी और महंत लोग भोग्य पदार्थों और व्यभिचारके साधनों की प्राप्ति में नष्ट कर देते हैं।

१०—सारांश यह है कि:—

प्राचीन समय का भारतवर्ष, वल, विद्या, बुद्धि और समृद्धि के कारण सब देशोंमें शिरोमणि गिना जाता था।

वर्त्तमान समय का भारतवर्ष, वल, विद्या, बुद्धि और समृद्धि में सब देशों से हीन हुवा देस पड़ता है।

उपरोक्त तुलना करने से हृदय विदीर्ण होजाता है शोक ! शोक !! शोक !!!....
 हमारी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक दशा बड़ी ही गिरी हुई देखने में आ रही है। कितने ही विचार हीन मनुष्य कहते हैं कि कलियुग में उन्नति होनी कठिन है ऐसा कह कर लोगों को निरुत्साही कर देते हैं। परंतु वेद और शास्त्रों को देखने से और श्रीकृष्ण महाराज का गीता में दिया हुआ उपदेश देखने से यही परिणाम मिलता है, कि कलियुग को मानकर निरुत्साही होना बुद्धिमत्ता नहीं है, क्योंकि हमारे ऋषीमुनि और अवतारों ने पुरुषार्थ को ही प्रधान और उन्नतिकारण माना है। यह बात कहीं भी उन्होंने नहीं लिखा कि कलियुग में पुरुषार्थ करना व्यर्थ होगा। यह बात इस समय भी प्रत्यक्ष सिद्ध है कि पुरुषार्थ करनेवालों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक दशा उत्तम देखने में आती है। बीसवर्ष में बौद्धधर्मीय जापान देश वालों की शारीरिक, मानसिक और आर्थिक दशा इतनी उन्नत होगई कि उसने रूस जैसे प्रबल राष्ट्र को भी युद्ध में हराकर विजय पाई, यह पुरुषार्थ का ही तो फल है।

भारतवर्ष में भी पुरुषार्थ करनेवाले अनेक मनुष्यों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, और धार्मिक उन्नति प्रत्यक्ष देखने में आ रही है। इसलिये कलियुग को उन्नतिका बाधक माननेवाले मूर्खों की बातों का विश्वास न करके पुरुषार्थियों पर परमेश्वर की कृपा का भरोसा करके हमको भी पुरुषार्थ करना चाहिये हमको पूर्ण आशा है कि सर्वशक्तिमान जगदीश, पुरुषार्थ करने पर हमको सच्चा मार्ग दिखाकर हमारा शीघ्र उद्धार करेंगे, जिससे हमारा भारतवर्ष देश भी अन्य उन्नत देशों के सदृश कीर्ति पानेवाला होकर, देशों की गणना में सम्मिलित रहनेवाला होगा और हिन्दू (आर्य) जाति अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त करके संसार की उन्नत जातियों की गणना में आएगी. [इति विचारदर्पणदर्शन तृतीय समाप्त:]



अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ॥

विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्

दोहा-यहैयोगहैमैंकह्यौ, पहिलेराविसोंआय ॥

तिनहूंसवमनुसोंकह्यौ, मनुइक्ष्वाकुसिखाय ॥१॥

हे अर्जुन ! यह कर्मयोग प्रथम मैंने सूर्यको सुनाया था सूर्यने मनुसे कहा था और मनुने अपने पुत्र इक्ष्वाकुसे कहा था.

(इससे यह दिखाया है कि-यह कर्मयोग परम्परासे चला आताहै कुछ अर्जुनकोही नया उपदेश नहीं है) समीक्षा-उपरोक्त श्लोकमें सूर्यसे अभिप्राय तपोबलके तेजसे सूर्य सदृश तेजस्वी ऋषि विशेषसे है.

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ॥

स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥

दोहा-परंपरायायोगको, जानतहैं ऋषिराय ॥

बहुतदिनाबतिगयो, सोयहयोगनसाय ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! यह योग इसी तरह परम्परासे चलाआताथा. अर्थात् एकसे दूसरेने सुना, दूसरेसे तीसरेने सुना, इसे राजऋषिलोग जानते थे, हे परंतप ! यही योग फिर बहुत काल बीतनेपर नष्ट होगया.

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्

दोहा-यहैपुरातनयोगमें, तोसोंदियोवताय ॥

याते तू मोमीतहै, औरभक्तिकेभाय ॥ ३ ॥

वही यह प्राचीन योग आज मैंने तुझे सुनायाहै और तुझे सुनानेका कारण यह है कि-तू मेरा परम भक्त है और सखाभीहै, इसीलिये यह उत्तम गुप्त भेद तुझे सुनायाहै ॥ ३ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

अपरं भवतो जन्म परं जन्मविवस्वतः ॥

कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥

दोहा-तुम तो प्रगटे हो अवै, सूर्यपुरातन देव ॥

तुम कवतासों यह कह्यो, क्यों जानूँ यह मेव ॥ ४ ॥

यह सुन अर्जुन ने पूछा-हे कृष्ण ! तुम्हारा जन्म पीछे हुआ है और सूर्यका जन्म पहिले हुआ है फिर हम यह कैसे जान सकते हैं ? कि आपने यह कर्मयोग सुनाया था ॥ ४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥

तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

दोहा-तेरे औ मेरे जनम, बीतेहै बहुबार ॥

तू तिनको जानत नहीं, हौँ जानत निरधार ॥ ५ ॥

अर्जुन की बात सुन श्रीकृष्ण ने कहा कि-हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुतसे जन्म व्यतीत होगये हैं, हे शत्रुनिकंदन ! उन सब जन्मोंका वृत्तान्त मैं ही जानता हूँ तुम नहीं जानते हो ॥ ५ ॥

अजोऽपिसन्नव्ययात्माभूतानामीश्वरोऽपिसन्न
प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्ममायया

दोहा—अजअविनाशी प्रगटहों, जगतईशकरतार
अपनीइच्छालेतहों, सावधानअवतार ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! यद्यपि मेरी आत्मा अव्यय अर्थात् अविनाशी है, मैं प्राणियोंका ईश्वरभी हूँ और जन्मकर्मसे रहित भी हूँ तौभी अपनी सात्विकी प्रकृतिका अवलम्बन कर अपनी मायासे अवतार लेताहूँ ६

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्

दोहा—जबअर्जुनजगमेंघटत, परमधरमकेभाइ ॥

जहँतहँबढतअधर्मअति, तबजनमतमेंआइ ७

हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होतीहै तब तब मैं अवतार धारण करताहूँ ॥ ७ ॥

रित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

दोहा—साधुनकीरच्छाकरोँ, पापिनडारोंमारि ॥

थापितयुगतजुधर्मकी, युगयुगमाहिँविचारि ॥ ८

हे अर्जुन ! जो साधु महात्मा अपने धर्मपर स्थित हैं उनकी रक्षाके लिये पापियोंके नाशके लिये और धर्मकी संस्थापनाके निमित्त मैं युगयुगमें अवतार लेताहूँ ॥ ८ ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोर्जुन ।

दोहा-मेरे जन्म रुकर्मको, तत्त्व लहै जो कोय ॥

देहत जै मो को मिलै, बहुरि न जनमै सोय ॥ ९ ॥

हे अर्जुन! जो मेरे इन जन्म कर्मोंको अलौकिक जानकर इनके लिये, तत्त्वको जान लेते हैं वे इस देहको छोड़ फिर जन्म नहीं लेते हैं और सुखको प्राप्त होजाते हैं अर्थात् आवागमनसे छूट सुखसे मिल जाते हैं

वीतरागभयक्रोधा मन्मया ७५ ।

बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥

दोहा-रागक्रोधभयको तजै, मोमें राखे भाय ॥

बहुत ज्ञानतप करि सुजन, मोही मांझि समाय ७६

मेरे अवतारोंका अलौकिक तत्त्व जाननेसे बहुतरे मनुष्योंके राग, भय और क्रोध जाते रहते हैं और वे सब पदार्थोंमें मेरा स्वरूप देखते हैं, मोही आश्रित रहे हैं, ऐसे पुरुष ज्ञान और तपसे पवित्र होकर मेरे भावको प्राप्त होगये हैं ॥ १० ॥

ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम्
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

दोहा-जो मोको जैसे भजे, हौं तै सो फल देत ॥

अर्जुन नर सब जगतमें, मेरो मगगहि लेत ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! जो मुझे सकाम वा निष्काम जैसे भजता है मैंभी उसे वैसाही फल देता हूं अर्थात् जो सकाम पूजन करते हैं उनको कर्मानुसार फल देता हूं और जो निष्काम भजते हैं वे मेरे स्वरूपको प्राप्त होजाते हैं, ये सब मनुष्य मेरेही मार्गका अनुसरण करते हैं, अर्थात् ये चाहे जिसका भजन करें वे सब मुझी को प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

कांक्षंतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा

दोहा—कर्मसिद्धिकीचाहकारि, पूजतदेवनिलोड ॥

कर्मनर्कानरलोकमें, सिद्धिवेगहीहोइ ॥ १२ ॥

इस संसारमें जो कर्मकी सिद्धिको चाहते हैं वे इन्द्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं, क्योंकि मनुष्यलोकमें कर्मकी सिद्धि शीघ्र होती है और मेरी सक्षात् सेवासे ज्ञानका फलरूप जो मुक्ति है सो कठिनासे मिलती है ॥ १२ ॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्

दोहा—चारोंवर्णजुमेंरचे, करिगुणकर्मविभाग ॥

मैंइनकोकरतारहों, ताहिमोहिंअनुराग ॥ १३ ॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण अपने २ गुण और कर्मसे मैंनेही बनाये हैं, यद्यपि इनका कर्ता मैंही हूं, तौ भी मुझे अकर्ता समझो क्योंकि मैं अविनाशी हूं और इनमें मेरी आसक्ति नहीं है ॥ १३ ॥

न मां कर्माणि लिपंति न मे कर्मफले स्पृहा
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते

दोहा—कर्मनमोकोलगतुहै. मोहि न फलकीचाहि।

ऐसोजोमोकोलखै. कर्मनवांधैताहि ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! कर्म सुझको लिप्त नहीं होते हैं और न कर्मफलमें मेरी इच्छा है क्योंकि मैं पूणकाम हूं जो सुझको ऐसा जानते हैं वे कर्मसे नहीं बंधते हैं ॥ १४ ॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः ॥

कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वं पूर्वतरं कृतम् ॥

दोहा—जोचाहतहैमुक्तिको, करैकर्मतिनआइ ॥

तातेतूहंकर्मकरि, पहिलनकोमतपाइ ॥ १५ ॥

पहिले जनकादिक मुमुक्षुजनोंने भी ऊपर कही हुई सब बातें समझकर कर्म किया था. इससे अब तुमभी वही कर्म करौ जो पूर्व पुरुषोंने पहिले किया है ॥ १५ ॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः

तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात्

दोहा—कौनसुकर्मअकर्मकों, नरहतपंडितमोहिं ॥

मुक्तिकाजसोईकरम, कहेदेतहौंतोहिं ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! कौनसा कर्म कर्तव्य है और कौनसा कर्म अकर्तव्य है इस बातके विचारमें बड़े २ पंडितोंकी बुद्धि भी चकरमें पड़जाती है,

उसी कर्मका वर्णन मैं तुमसे करूंगा, जिसे जानकर संसारके बन्धनोसे छूट जाओगे ॥ १६ ॥

**कर्मणो ह्यपिबोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः
अकर्मणश्चबोद्धव्यं गहनाकर्मणो गतिः ॥**

दोहा—जान्यों चाहिये कर्म हूं, और विकर्म सुभाइ ॥

मुनि अकर्म गतिकी जिये, गहन कर्म के दाइ ॥ १७ ॥

एक तो वे कर्म हैं जो शास्त्रोक्त रीतिसे अवश्य कर्तव्य हैं, एक विकर्म है जो निषिद्ध है और एक अकर्म है जिनका तत्त्वज्ञान होनेपर त्याग कहा है. इस तरह इन तीनों प्रकारके कर्मोंका विचार करना बहुत आवश्यकीय है, क्योंकि कर्मोंकी गति बड़ी कठिन है ॥ १७ ॥

कर्मण्यकर्मयः पश्येदकर्मणि च कर्मयः ॥

सबुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्

दोहा—कर्मनिमांझ अकर्म जे, आवै कर्म अकर्म ॥

बुद्धिवंत तिन सब किए, मेटे मन के भर्म ॥ १८ ॥

जो कर्मको अकर्म और अकर्मको कर्म समझता है अर्थात् कर्म करना जिसके ज्ञानमें बाधा नहीं करता है और शास्त्रोक्त कर्मके न करनेहीमें जो कर्तव्यता देखता है वही मनुष्योंमें बुद्धिमान है. वही योगी और संपूर्ण कार्योंका करनेवाला है ॥ १८ ॥

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः

ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः

दोहा—जाकेसबआरंभते, बिनाकामनाहोत ॥

तासोंपांडितकहतजन, दहतकर्मकेगोत ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! जो संपूर्ण कामोंको किसी प्रकारकी कामनाकी इच्छासे नहीं करता है. और जिसके संपूर्ण कर्म ज्ञानरूपी अग्निसे जल गये हैं उसीको ज्ञानी पुरुष पाण्डित कहते हैं ॥ १९ ॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपिनैव किंचित्करोतिसः

दोहा—कर्मफलनिछोड़ेसदा, तृप्तकरैनहिआस ॥

ताकर्मनकेकरतही, लगैनभवकीफाँस ॥ २० ॥

जो कर्म फलकी इच्छा नहीं करता है और न उनमें आसक्ति रखता है और सबका आश्रय छोड़ नित्य संतुष्ट रहता है, यद्यपि ऐसा मनुष्य कर्ममें प्रवृत्त रहता भी हो (पर यह समझलो कि) वह कुछ नहीं करता है ॥ २० ॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः॥

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्

दोहा—जीतेइंद्रियदेहनहिं. कामपरिग्रहजाहि ॥

देहकाजकर्मनिकरत, पापनलागतताहि ॥ २१ ॥

जो संपूर्ण आशाओंको छोड़ चित्त और आत्माको वशीभूत कर सब संसारी जगहोंसे सुख थोड़ केवल शरीरमात्रसे कर्म करते हैं वे भी कर्मबंधनोंसे पीड़ित नहीं होते हैं ॥ २१ ॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः
समःसिद्धावसिद्धौ चकृत्वाऽपि न निबध्यते

दोहा—यथालाभसंतोषजो, सुखदुस्वरहैनकोइ ॥

सिद्धि असिद्धी एकसो, कर्मनबंधनहोइ ॥ २२ ॥

हे अर्जुन! वे पुरुष जो वस्तु अपने आप मिलजाय उसीपर संतोष करते हैं, दुःख सुख हानि लाभसे जिनके मनको वेदना नहीं होती है, जो मत्सररहित हैं, जिनकी सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धि है, वे कर्म करकेभी कर्मबंधनमें नहीं बंधते हैं ॥ २२ ॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥

यज्ञायाचरतःकर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

दोहा—तजैसवैजोकामना, ज्ञानलगावैचित्त ॥

यज्ञकाजकर्मनिकरै, सोनबांधियेमिच्छ ॥ २३ ॥

जो भाईबंधु स्त्रीपुत्रादिकी आसक्तिसे छूटगया है, सांसारिक विषय वासनासे दूर होगया है और ज्ञानमें जिसका चित्त स्थित है वह यज्ञके लिये जो कर्म करताहै वे सब कर्मवासनामहित लीन होजाते हैं ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥

ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

दोहा—होमअग्निहविर्ब्रह्महै, अर्पेब्रह्महिजानि ॥

जाइब्रह्ममेंसोरहै, कर्मसमाधिहिठानि ॥ २४ ॥

ब्रह्मके अर्थ और ब्रह्मही हवि तथा ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्महीने दि-

या है. इस प्रकार जो जानता है अर्थात् होम, अग्नि, सुवा, हवि, कर्ता घृत आदि सब सामग्री ब्रह्मरूप है, जिसकी ब्रह्मकर्ममें समाधि अर्थात् चित्तवृत्ति है वह अवश्य ब्रह्मको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥

ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहति ॥ २५ ॥

दोहा-देवनकोइकयजतहै, करतयज्ञबहुभाइ ॥

एकब्रह्ममें यजतुहै, ज्ञानयज्ञकेदाइ ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! कितनेही कर्मयोगी श्रद्धापूर्वक इन्द्रादि देवताओंकी पूजा करते हैं और कितनेही ज्ञानयोगी ब्रह्मरूप अग्निमें ब्रह्मयज्ञरूपसे होवन करते हैं ॥ २५ ॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहति

शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहति ।

दोहा-एकजुहोमतइन्द्रियनि, संयमअगनिस्वरूप
विषयनहोमतएकही, इन्द्रीअगनिअनूप ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! कितनेही ऐसे योगी हैं जो अपने नेत्र, कान आदि इन्द्रियोंको संयमरूप अग्निमें होम देते हैं और कितनेही इन इन्द्रियोंके रूप शब्दादि विषयोंको इन्द्रियरूप अग्निमें होम देते हैं ॥ २६ ॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ॥

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहति ज्ञानदीपिते

दोहा-तेसबइंद्रिनकेकरम, औरकरमसबप्राण ॥

होमतसंयमअग्निमें, प्रकटकरैविज्ञान ॥ २७ ॥

कितनेही ऐसे योगी हैं जो कमन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियके कर्मोंको तथा प्राण अपान आदि दस प्राणोंके कर्मको ज्ञानसे जलतीहुई मनके निग्रहरूप अग्निमें होमते हैं अर्थात् सब विषयवासनासे दूर हो केवल ब्रह्ममें लीन होजाते हैं ॥ २७ ॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ॥

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः

दोहा-एकयजतहैद्रव्यसों, एकतपस्यायोग ॥

एकजुपठिवेदहिपजे, एकजुज्ञानसोंलोग ॥ २८ ॥

जो अपने नियममें बड़े तत्पर हैं उनमेंसे कितनेही द्रव्यदानरूप यज्ञ करते हैं, कितनेही कृच्छ्रचान्द्रायणरूप तपोयज्ञ करते हैं, कितनेही योग यज्ञ करते हैं और कितनेही वेदका पठन पाठनरूप यज्ञ करते हैं ॥ २८ ॥

अपाने जुहति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ॥

प्राणापानगतीरुद्धाप्राणायामपरायणाः

दोहा-होमअपानहिप्राणमें, प्राणअपानहिमाँह ॥

प्राणअपानहिरोकिकै, रहतजुहै नरनाँह ॥ २९ ॥

और कितनेही प्राणायाममें तत्पर प्राण और अपानकी गतीको रोककर अपानमें प्राणका हवन करते हैं और प्राणमें अपानका हवन करते हैं ॥ २९ ॥

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुहति ॥

सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषा :

दोहा—प्राणनहीमें प्राणको, होमतजियतअहार ॥

एसबजानतयज्ञको, मेटतपापविकार ॥ ३० ॥

कितनेही आहारको नियमितदर प्राणोंमें प्राणको होमते हैं
अर्थात् कुंभक करते हैं ये सब यज्ञको जानते हैं और यज्ञहीसे इनको
सब पाप दूर होगये हैं ॥ ३० ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् ॥

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्य कुरुसत्तम ॥

दोहा—यज्ञशेषअमृतभपत, होतब्रह्मसौलीन ॥

यहौलोकबिनुयज्ञनहिं, परलोकेहैछीन ॥ ३१ ॥

जो यज्ञ शेष अमृतरूप अन्नका भोजन करते हैं वे सनातन ब्रह्म
को प्राप्त होते हैं, हे अर्जुन । जो यज्ञ नहीं करते हैं उनको न यह
लोक है न परलोक ॥ ३१ ॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ॥

कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे

दोहा—बहुतभांतिवेदनकही, यज्ञसबैलेमानि ॥

तेसबजानैकर्मते, लेहु मुक्तिसुखसानि ॥ ३२ ॥

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमें वर्णन किये गये हैं. इन सबकी
उत्पत्ति कर्मसे है. इनको जाननेसे तेरी मुक्ति होजायगी ॥ ३२ ॥

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञज्ञानयज्ञः परंतप ॥
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिममाप्यते ३३

दोहा-द्रव्ययज्ञतेहैबडो, ज्ञानयज्ञइहभाय ॥

जितेकर्मवेदनिकही, ज्ञानहिरहितसमाय ॥ ३३ ॥

हे परंतप ! द्रव्ययज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है, हे पार्थ ! जितने कर्म हैं
वे सब ज्ञानमें समाप्त होते हैं अर्थात् फलसहित ज्ञानमें लीन होते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ॥

उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

दोहा-कीजैबहुतैनम्रता, प्रश्नऔरअतिसेव ॥

तौज्ञानीउपदेशिहैं, तुहेंज्ञानकोमेव ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! तत्त्वदर्शी ज्ञानीलोग इस तत्त्वज्ञानका तुझे उपदेश
करेंगे, जब तू उनकी सेवा करेगा, हाथ जोड़ेगा, प्रणाम करेगा और
अनेक भांतिसे पूछेगा कि इस संसारसे मेरी मुक्ति कैसे होगी ३४

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव
येन भूतान्यशेषण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि

दोहा-अर्जुनयाकोलहतही, मोहनरहिहैतोहिं ॥

सबजीवनकोदेखिहै, आपमांझकैमोहिं ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! इस ज्ञानके प्रतापसे तुझको ऐसा मोह फिर कभी न
होगा और इसी ज्ञानसे संपूर्ण प्राणियोंको अपनी आत्मामें
और मुझमेंभी देखोगे अर्थात् कुछ भेदबुद्धि न रहेगी ॥ ३५ ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

दोहा—सबपापिनमेंजोबड़ो. पापीहूतहोय ॥

ज्ञाननावचढिउतरिहै, पापसिंधुसमजोय ॥ ३६ ॥

जो तू सब पापियोंसेभी अधिक पापी होगा. तोभी तू इस ज्ञानरू-
पी नौकापर चढ़कर बिना परिश्रमही इस दुःखसागरसे पार
होजायगा ॥ ३६ ॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥

ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा

दोहा—जैसेज्वालहुताशकी, डारतसबहीजारि ॥

ज्ञानअग्निसोप्रबलहै, डारतकर्मनिवारि ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! जैसे जलती हुई अग्नि काष्ठको जलाकर भस्म कर
देती है. वैसेही ज्ञानरूपी अग्नि सपूर्ण कर्मोंको जलाकर नष्टकर देतीहै.
केवल यह बात नहीं है कि ज्ञानद्वारा पापोंसे पारही होजाते हैं ॥ ३७ ॥

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति

दोहा—ज्ञानसमानजुलोकमें, पावतनाहींऔर ॥

योगसाधनाजोकरै, लहैज्ञानकीठौर ॥ ३८ ॥

इस संसारमें ज्ञानके समान और कोई बात पवित्र अर्थात् चित्तके
शुद्ध करनेवाली नहीं है यह ज्ञान कुछ कालपर्यन्त अभ्यास करते
करते कर्मयोगके द्वारा सिद्ध हो अपने आपही उपस्थित होजाताहै ॥ ३८ ॥

श्रद्धावाँलुभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ॥

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति

दोहा—इन्द्रियजितश्रद्धासहित, पावैऐसो ज्ञान ॥

तापायेत तत्कालही, पावै शान्ति सुजान ॥ ३९ ॥

अपने गुरुके उपदेशमें श्रद्धावाले, ज्ञानकी प्राप्तिमें तत्पर जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानको पाता है और इस ज्ञानको पाकर फिर थोड़ेही कालमें मोक्षको पा लेता है ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः

दोहा—जो मूरख श्रद्धाविना, ताको होइ विनाश ॥

जाके यह संदेह है, सो दुहुँ लोक निराश ॥ ४० ॥

और जो अज्ञानी, श्रद्धारहित हैं और जिनके मनमें संदेह बना रहता है वे नष्ट होजाते हैं, संदेह रखनेवालेको न इसी लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें, कहींभी उसको सुखका नाम मात्र नहीं मिलता ॥ ४० ॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥

आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्न्ती धनं जय ॥

दोहा—मोकोँ अपैँ कर्म करि, करि संदेह हि द्वारि ॥

ज्ञानी बंधै न कर्मसों, रहै सदा सुख प्रारि ॥ ४१ ॥

हे अर्जुन ! इधरा राधनरूप योगसे जिसके कर्म छूट गये हैं और

ज्ञान प्राप्तिद्वारा जिसके सब संशय छिन्नभिन्न होगये हैं ऐसे आत्म-
वान् पुरुषोंको कर्मोंका बन्धन नहीं होता है. कर्म तो केवल लोक
संग्रहके लिये हैं ॥ ४१ ॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः
छित्तैर्न संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ॥ ४२ ॥

दोहा—संदेहजुअज्ञानतैं, उपज्योअर्जुनआहि ॥

ज्ञानखड्गसोंकाटिक, योगकरौकिनताहि ॥ ४२ ॥

याचौथैअध्यायतैं, निष्ठाहैंद्वैभाय ॥

कहीअवस्था भेदतैं, कर्मज्ञानसमुझाय ॥ १ ॥

कृष्णचरनपरनामकरि, वरन्योकर्मसंन्यास ॥

सकलजगतकेहितकह्यो, आनंदरामप्रकास २ ॥

हे भरतवंशीय अर्जुन ! इन ऊपर कहे हुये हेतुओंसे तेरे हृदयमें
जो अज्ञानसे उत्पन्न हुआ संशय जम गया है. इसे ज्ञानरूपी खड्गसे
काटडाल और युद्धरूप जो यह कर्मयोग उपस्थित हुआ है इसके कर-
नेमें कटिबद्ध हो ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासु पण्डितसु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटी-

० कायां कर्मसंन्यासयोगोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ विचारद्वयं चतुर्थ दर्शन प्रारम्भः

हिन्दुओं (आर्यों) की उन्नतिके उपाय.

[१] सबसे प्रथम, कुरीतियोंको देशमें से हटाना चाहिये । सबसे प्रधान हानिकारक कुरीति बालविवाहकी है । छठवोंका अठारहवर्षसे पूर्व और लड़कियोंका तेरह वर्षकी अवस्थासे पूर्व कदापि विवाह न होने पावे; पुरुषोंका पैंतालीस वर्षकी अवस्थासे उपरांत सर्वथा विवाह न होना चाहिये । पंचायतों और राजाओं द्वारा कड़ाईके साथ ऐसे प्रवन्ध होनेकी आवश्यकता है । हमलोग बालविवाहसे अल्पायु, निर्बल, और क्षीणवर्ष्य होगये हैं, और वृद्धविवाहसे विधवाओंकी संख्या बढ़ रही है । इसी प्रकार वृद्धविवाह और बहुविवाह [एकसे अधिक स्त्रियोंके साथ विवाहकरना] कोभी रोकना चाहिये । अतःक वनसके बालविवाहकी कुरीति को सबसे प्रथम हटानेकी चेष्टा करें । हम नित्य देखतेहैं कि, उत्तम धान्यके बीजसेही उत्तम धान्यकी प्राप्ति होती है और उत्तम पशुओंसेही उत्तम पशु उत्पन्न होतेहैं; परन्तु शोक तो इस बातका है कि, बालविवाहके कारण पूर्ण अवस्थासे पूर्वही स्त्रीपुरुषोंका संगम होनेसे निर्बल, निर्बुद्धि और अल्पायु संतानोंकी उत्पत्ति हमलोग अपनी आँखोंसे देखते जातेहैं और इस हानिकारक प्रथाको रोकनेकी चेष्टा नहीं करते । देखिये वैद्यशिरोमणि वाग्भट्ट आचार्य लिखते हैं कि, “पूर्ण षोडशस्त्री पूर्ण विंशेन संगता” । इत्यादि । वीर्यवतं सुतं सूते ततो न्यूनान्दयोः पुनः । योग्यत्वाश्रयः वा गर्भा भवति नैव वा ॥ वाग्भट्ट-शारीरकस्थान ।

(अर्थ) पूर्ण सोलह वर्षकी स्त्री पूर्ण बीसवर्षके पुरुषके साथ संगम करनेसे पराक्रमी संतान उत्पन्न होती है उससे न्यून वर्षवाले स्त्री पुरुषोंके रोगी, अल्पायु अर्थात् छोटी अवस्थामें मरने वाली और निर्बल संतान होता है, अथवा गर्भही न होगा । इसलिये पुरुषोंको बड़ी अवस्थामें विवाहकरके अस्तुकालमेंही अपनी स्त्रीके साथ संगम करना चाहिये इसका नाम ब्रह्मचर्य का पालन करना है । अतः पुरुषोंका अठारह वर्षके उपरांत और स्त्रियोंका तेरह वर्षके उपरांत विवाह होना चाहिये ।

यहभी ध्यान रहे कि, गर्भिणी स्त्री के साथ कदापि संगम न किया जाए । जब पशुही ऐसा नहीं करते तो मनुष्यों का यह व्यवहार क्या अधिक लज्जरजनक नहीं है ? अतिरिक्त इसके, होनेवाली संतानके अंगोंमें विकार होनेकाभी भय है; अतः गर्भिणीके साथ संगम मूलकर भी न करें ।

[२] विवाहादि उत्सवों और मरणादि अवसरों पर रुपयेका अतिव्यय नहीं होना चाहिये । लोगोंमें देसा देसी अधिक और व्यर्थ व्यय करनेकी चाल पड़ी

हुई है. हमलोगोंको इससमय जातीय संस्थाओंके स्थापित करने और उनकी स्थिति को दृढ़ तथा स्थाई बनानेके निमित्त मन सोलकर रुपया लगाना चाहिये, यथा विद्यालय महाविद्यालय, पुस्तकालय, सेवाश्रम, व्यायामशाला, कूप, तडाग, धर्मशाला आदिका बनाना और उनका चलाना ।

जहांतक दान किया जाए व सार्विक होना चाहिये जैसा कि श्रीकृष्णमहाराजने लिखा है:-

दातव्यमिति [गी० अ० १७ श्लो० २०] अर्थात् देशकाल और पात्रमें दिया हुआ दान सार्विक कहा जाता है । गंजेडी, भंगेडी और भूखोंको दान देना देशको दृढ़ बनाना है ।

[६] अछील गान और नित्य अछीलभाषण अर्थात् गालीका प्रचार सर्वथा अपने २ घरोंमेंसे बढा देना चाहिये । छोटे बालक, और बड़ी अवस्थावाले पुरुष भाला आदि शब्दोंका प्रयोग नित्य करते हैं । होली के त्यवहारपर पुरुषोंके, और विवाहके समय स्त्रियोंके, मुखसे अछील गानोंका सुनना छोटी २ अवस्थावाले बालक, बालिकाओंके हृदयपर घुरे संस्कार जमाता है, इसलिये पुरुषों तथा स्त्रियोंके मुखसे अछील गान अथवा भाषण कभी नहीं होना चाहिये ।

[४] बालक और बालिकाओंकी शिक्षा का प्रबन्ध इसमेंति हो कि, छः सात वर्षकी अवस्थासेही वह विद्यालयोंमें पढने को भेज दिये जावें और तेरहवर्षकी अवस्था तक निम्नलिखित पढाई समाप्त करलें, परन्तु साथमें यहभी ध्यान रहे कि, वह दुष्टजनोंके संगसे सर्वथा बचाए जावें ।

(क) हिन्दी (देवनागरी) भाषाका लिखना पढना.

(ख) साधारण गणित.

(ग) भारतवर्ष तथा समस्त भूमंडलका प्राकृत तथा प्रातिक भूगोल.

(घ) प्राचीन और वर्तमान समयके भारतवर्ष का इतिहास.

(ङ) साधारण संस्कृतकी पुस्तकें यथा हितोपदेश, आदि.

(च) अंग्रेजी (आंग्लभाषा) की कुछ उपयोगी पुस्तकें.

(छ) साधारण चित्र लेसन.

समीक्षा-गुरुजनों द्वारा धार्मिक शिक्षा भी दीजानी चाहिये. गीताकी कुछ अध्यायोंका जाशय समझा दिया जाय और गीता कंठस्थ करादी जावे.

स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी बातोंसे इसी अवस्थामें हमारे बालक और बालिकाएं भली प्रकार परिचित होजानी चाहियें । स्वास्थ्यरक्षासम्बन्धी कुछ उपयोगी उपदेश नीचे दिये जाते हैं उनको उदाहरणार्थ समझें.

नित्य शुद्ध वायु जलको सेवन करें।

यथाशक्ति नित्य व्यायाम करें। अर्थात् दंड मुगदर आदिका व्यवहार करें। ब्रह्मचर्यकी रक्षाके लिये मिरच, मसाला, अचार, अतिखटाई, चाय, काफी, तमाखु आदि सभी प्रकारके उच्चेजक और तीक्ष्णपदार्थोंका सेवन नहीं करें। इनसे मालकोको प्रमेह, अर्थात् घातुक्षीण हो जाता है।

दाल, भात, दूध, घृत आदि कोई भी उत्तम पदार्थ परिमाणसे अधिक अर्थात् भूखसे अधिक न खावें।

शृंगार सम्बन्धी किसी भी बातका चिन्तन या उसकी चर्चा करना उचित नहीं, क्योंकि इससे विषय वासना जागृत होती है और वीर्यका स्थान भ्रष्ट हो जाता है; शृंगार इसके नाटक और खेल (खयाल) तमाशोभी नहीं देखने चाहिये।

आयुकी रक्षाके लिये ठीक समयपर सोना और उठना चाहिये।

जहाँतक बनसके ऐसा भोजन खावें जिससे प्रतिदिन मलमूत्र ठीक होता रहे अर्थात् कब्जी न रहे।

गरिष्ठ, विष्टब्धक और प्रकृतिके विरुद्ध भोजन कदापि न करें। पद्यरूप हलका भोजन नित्य करना चाहिये। यदि सदैव कब्जी (विष्टब्धता) रहती हो तो पेटको शुद्ध रखनेके लिये रात्रिके समय त्रिफलोंका चूर्ण लेलिया करें। मलका संचय पेटमें कदापि न रहने पावे क्योंकि सब रोग प्रायः मल संचय से ही होते हैं। यथा वाग्भट्टमें लिखा है:-

रोगाः सर्वेऽपि मंदेऽग्नौ सुतरामुदराणि तु । अजीर्णान्मलिनैश्चान्नेर्जायन्ते मलसंचयात् ॥
वाग्भट्ट-निदान स्थान अ. १२ । श्लो० १.

(अर्थ) मल संचयसे मदाग्नि होजाती है मदाग्नि होनेपर सभी रोग होते हैं विशेषकर उदरके रोग नीचे दो श्लोक वाग्भट्ट के दिये जाते हैं तदनुसार कार्य करने से मनुष्य रोगोंसे बचे रह सके हैं।

श्लो०-नित्यं हिताहार विहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।

दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥

समीक्षा—स्वाभा हुआ छत्र अच्छी प्रकार नहीं पचने से सभी रोकते हैं.

श्लोक—शीतोद्भवं दोषत्रयं वसंते । विशेषयन् ब्रीष्मजमम्रकाले ॥

घनातपये वार्षिकमाशु सम्पद्य । प्राप्नोति रोगानृतुजात्र जातु ॥

सूत्रस्थान अ० ४ श्लोक ३६.

(अर्थ) जाड़े में जो कफके दोषोंका संचय होगया हो, उसको वसंतऋतुमें, और गर्मी में जो वातदोषका संचय होगया हो उसको वर्षाऋतुके प्रारम्भमें और वर्षाऋतु में होनेवाले पित्तके संचयको अश्विनमें विशेषतः द्वारा विशुद्ध कर देना चाहिये. ऐसा करनेसे ऋतुसे उत्पन्न होनेवाले रोगों से मनुष्य बचा रहता है. अर्थात् सदाही निरोग रहता है ।

जहाँ तक बन पड़े खुली वायुमें शयन करना उचित है. शीतकालमें भी सिरहानेकी ओर स्वच्छ वायु आने को एवं खिचकी अवस्था होनी चाहिये। सोते समय अनुद-
श्यकासे अधिक पछों को नहीं कोढ़ें और न मुँहको कपड़ों से बंद करें.

मलमूत्रादि का बेग कदापि न रोकें ।

सोलहवर्ष की अवस्था के पूर्व समस्त, सिगरेट कभी न पीये ।

समीक्षा—यदि हम लोग स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी बातोंपर अधिक ध्यान नहीं देंगे तो हिन्दु [आर्य] जातिकी शारीरिक दशा औरभी विगदती जायगी. आजसे पचासवर्ष पहिले हमारी, प्रत्येक मनुष्य पीछे, आयु की गणना तेईस वर्षकी हुई थी, जो अब घटकर अठारह वर्ष हो गई है और यूरोप, अमेरिका में पचास वर्ष पहिले प्रत्येक मनुष्यकी आयुकी गणना छब्बीस वर्षका हुई थी, जो अब पैंतीस वर्षकी है. इसका कारण यही है कि, बहा बालविवाह की प्रथा नहीं है और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमोंका पालना छोटी अवस्थासेही प्रारम्भ हो जाता है ।

[५] ऊपरकी संस्थाचार में लिखी हुई शिक्षाप्राप्त करके तेरह वर्षकी अवस्थाके पश्चात् जैसी रुचि बालकों और उनके सरसकों की हो उसी प्रकारकी निम्नलिखित शिक्षा उनको दिलई जाए । जहातक होसके जातीय विचार्यों और महाविद्यालयोंकी संख्या देशमें बढाकर उनमें सब प्रकारकी विद्याएं पढावें, जिससे हमारे देशवासियों को बहुत व्ययकरके और बट उठाकर दूसरे देशों में विद्याध्ययनके लिये न जाना पड़े ।

शोक ! एक वह दिन या कि, दूसरे देशोंके लोग भारतवर्ष में विद्याएं सीखनेको आते थे, अब वह समय आगया है कि, भारतवासियों को दूसरे देशोंमें जाना पडता है. पुरुषार्थ करनेसे अबभी सब कुछ होसका है ।

[क] ब्राह्मणों के श्रवकों को मुख्यतया वेद, उपनिषद, सांख्य, योग, वेदांत, कर्मकांड, आयुर्वेद, शकटरी [पाश्चात्य आयुर्वेदशास्त्र] में निपुण होना चाहिये ।

[५] क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके बालकोंको गीता आदि धर्मग्रन्थोंको समझने में योग्यता प्राप्त हो इतनी संस्कृत भाषा सीखकर यथा रुचि:—

शिल्प, कृषि, वाणिज्य, भूगर्भविज्ञान (खनिज पदार्थों की विद्या) इंजिनियरी (कलाओं और यंत्रोंकी विद्या), विद्युतशास्त्र, नैविगेशन (जहाजोंको चलाना) बैंक और व्यापारी कम्पनियां खोलना तथा चलाना, शोर्टहैंड राईटिंग [संक्षिप्त लेखन] इत्यादि विद्याओंको सीखना चाहिये।

[६] हमारी बालिकाओंको प्राथमिक शिक्षाके उपरान्त सोनापिरोना, सूक्ष्मशास्त्र अर्थात् आयुर्वेद के नियमानुसार भोजन बनानेकी विधि, स्वास्थ्यरक्षा सम्बन्धी नियम, रोगीकी सेवाकरना, बालकोंकी चिकित्सा करना, बालकोंको शिक्षादेना, धर्म और नीति; इत्यादि बातोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

[७] वैश्य जातिको अन्य उन्नत देशोंमें जाकर वाणिज्य, व्यापार करना चाहिये, जिससे देशका गौरव बढ़े । जिस प्रकार यूरोप, अमेरिका के लोग बड़ी-बड़ी कम्पनियां तथा बैंक खोलकर और कलायंत्रोंको काममें लाकर व्यापार द्वारा करोड़पति अथवा (अर्बुद) पति हो जाते हैं, उसी भाँति हम भी अपने वाणिज्यको बढ़ाकर धानिक बन सके हैं, उन्हीं उन्नत देशोंकी भाँति विज्ञान और यंत्रोंद्वारा कृषि करना सीखें और वैज्ञानिकरीतिद्वारा ही पशुओंको पाला करें, स्वयं हल चलाकर पोड़ीसी भूमिमें ही खेती कर लेना कृषि करना नहीं कहलाता । कृषिविषयपर आज कल जितनी उत्तम पुस्तकें लिखी गई हैं उनको देखनेसे ही पता लगसक्ता है कि, यूरोप, अमेरिकामें किस भाँति कृषि द्वारा लोगोंको धन प्राप्त हो रहा है; वह लोग इतने निपुण बन गये हैं कि जितनी भूमिमें हम लोग फसलका एक भाग उत्पन्न करते हैं उतनीही भूमिमें वह लोग चार भाग प्राप्त करते हैं। भारतवर्ष में सूर्यप्रकाश, भूमि, और सात की बड़ी सुगमता है और साथ में मजदूरी भी बड़ी सस्ती है। फिर भी यहाँ की पैदावार को हम लोग अन्य देशोंके बराबर नहीं लासके यह बड़े शोककी बात है

[८] चारों वर्णोंमें, जिनका स्नानपान और अन्य व्यवहार एकसा है यथा गौंड और सास्वत ब्राह्मणोंका, परस्पर विवाहादि सम्बन्ध होना चाहिये । बहुत जगह अब भी यह देखनेमें आता है कि, जैनी और वैष्णव वैश्योंमें परस्पर भिन्न २ सम्प्रदायी भेद होनेपर भी रोटी बेटीका सम्बन्ध होता है, तो एकही सम्प्रदाय और एकही आचार व्यवहार रखनेवाले मनुष्यों में यह सम्बन्ध क्यों नहीं होना चाहिये?

[अपूर्ण]

अथ पंचमोऽध्यायः ।

॥ अर्जुन उवाच ॥

संन्यासं कर्माणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।

दोहा—कवहुँ कहत संन्यासको, कवहुँ कर्मको योग ॥
निश्चय करि एकै कहो, मेटौ किन भव रोग ॥ १ ॥

हे कृष्ण ! तुम कर्मों के परित्याग का भी उपदेश देते हो और फिर कर्म करने के लिये भी कहते हो [यह क्या बात है] इन दोनों में जो श्रेष्ठ है उस एक बात को निश्चय करके मुझसे कहो ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते

दोहा—कर्मयोग संन्यास अरु, दोऊ एशु भदैन ॥

कर्मयोग संन्यास में, कर्म न लहियत चैन ॥ २ ॥

यह सुन श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे अर्जुन ! कर्मों का त्याग और कर्मयोग अर्थात् कर्मों का करना ये दोनों ही कल्याण करने वाले हैं किन्तु इन दोनों में कर्मसंन्यास से कर्मश्रेष्ठ है अर्थात् कर्म करते करते चित्त के शुद्ध होने से संन्यास होता है ॥ २ ॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात् प्रमुच्यते ३

दोहा—द्वेषत जैचाह हित जै, सो संन्यासी जानि ॥

रागद्वेष सों जेर हित, ताहि छुट्यो तू मानि ॥ ३ ॥

हे महाबाहो! जो दुःख सुखसे रहित रहता है वही नित्य संन्यासी है अर्थात् वह सदाही कर्मोंका परित्याग किये रहता है जो न तो किसीसे द्वेष करता है और न किसी बातकी इच्छा करता है! ऐसा पुरुषही सुखपूर्वक संसारबन्धनसे छूट जाता है ॥ ३ ॥

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः

एकमप्यास्थितः सम्यग्भूयो विंदते फलम्

दोहा—योगसांख्यद्वैद कहत, मूरख पंडित नाहि ॥

दोउ न में एकै भजै, दोऊ फल है ताहि ॥ ४ ॥

हे अर्जुन! अज्ञानीही सांख्य और योगको जुदा जुदा कहते हैं, परन्तु पंडितजन कभी ऐसा नहीं कहते, जो इन दोनोंमेंसे एकमेंभी अच्छी तरह स्थित होजाता है, वह दोनोंका फल पाता है ॥ ४ ॥

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति

दोहा—स्थान जुलहिये सांख्यते, सोइ योगते होइ ॥

सांख्ययोग एकौ गनै, ताको ज्ञानी जोइ ॥ ५ ॥

हे अर्जुन! सांख्य अर्थात् ज्ञानसे जो स्थान मिलता है वही कर्म-योगसेभी मिलता है। इससे जो ज्ञान और कर्मको एकही देखते हैं वेही अच्छी भांति देखनेवाले विद्वान् हैं ॥ ५ ॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति

दोहा—लहसंन्यासहिदुःखसों, विनकर्मनुरेमित ॥
योगजुगतजेकरतहैं, रहतब्रह्मनिहचित ॥ ६ ॥

हे महाबाहो अर्जुन! विना कर्मयोगके संन्यासका प्राप्त होना बहुत कठिन है और कर्मके करनेवाले मुनिजन कर्म करनेसे चित्तशुद्धि-द्वारा बहुत शीघ्रही ब्रह्मको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६ ॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेंद्रियः
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥

दोहा—इंद्रीजितहैशुद्धहिय, योगयुक्तिजोकोय ॥
जीवनजानैआत्मा, कर्मलिप्तसुनहोय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन! जो कर्मयोगसे युक्त है अर्थात् कामनारहित कर्म करता है, जिसका चित्त शुद्ध है, जिसने अपनी आत्मा और इन्द्रियां जीत ली हैं और जो अपनी आत्माको संपूर्ण प्राणियोंकी आत्मासे भिन्न मानता है, वह कर्म करता है तौभी उनमें लिप्त नहीं होता है ७

नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्श्चन् गच्छन्
स्वपन् श्वसन् ॥ ८ ॥

दोहा-ज्ञानीकर्मानिकरतहूँ, किये लेइ नहिंमानि ॥
सूँघत देखत छुवत पुनि, सुनत चलत हूँजानि ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! कर्ममें युक्त तत्त्वज्ञानी लोग देखते हैं, सुनते हैं, स्पर्श करते हैं, सूँघते हैं, खाते हैं, चलते हैं, सोते हैं, श्वास लेते हैं तौभी यही जानते हैं कि-मैं कुछभी नहीं करता ॥ ८ ॥

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्निमिषन्निमिषन्नपि ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तत इति धारयन् ९

दोहा-सोवत जागत गहतुहूँ, बोलत ढारिहुँदेत ॥
इन्द्रियविषयनमेंपरी, जानत हैयहहेत ॥ ९ ॥

वे बोलते हैं, छोडते हैं, ग्रहण करते हैं, आंख खोलते हैं, बन्द करते हैं, परन्तु यही जानते हैं कि मैं कुछ नहीं करता और वे यही विचार करते हैं कि इन्द्रियांही अपने अपने विषयमें तत्पर हैं ॥ ९ ॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा १०

दोहा-कर्मकरैतजिसंगको, सबको ब्रह्महिमानि ॥
ताको पापन लगतुहै, पदमपत्रजलजानि ॥ १० ॥

जो मनुष्य कर्म करता है और उन कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण कर फलकी कामनाको छोड़ देता है उस पुरुषसे पाप ऐसे लिप्त नहीं होते हैं, जैसे कमलपत्रपर जल नहीं ठहर सकता है ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥

योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वा त्मशुद्धये

दोहा—तनकरि मनकरि बुद्धिकरि, पुनि इंद्रिन हूं कीन

संग छांडि कर्म नि करै, योगी होहि नलीन ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! शरीर, मन बुद्धि और केवल इन्द्रियोंसे योगीजन फलकी कामनाओंको छोड़ कर्म करते हैं वह कर्म करना चित्तकी शुद्धिके लिये है ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

दोहा—ज्ञानी हूँ मुक्ती लहै, करै कर्म फल छांड ॥

मूरख फलकी आस कर, बंधत कामना आड १२

हे अर्जुन ! जो कर्मफलकी कामनाको छोड़ कर्म करनेमें तत्पर रहता है वह ईश्वरमें निष्ठारूप शांति पाता है और जो ईश्वरसे विसुख है और फलकी कामनामें मन लगाकर काम करता है वही कर्मसे बंधा हुआ है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

दोहा-मनकरिकर्मनिजेतजै, ज्ञानीतेसुखआहि ॥

नवेद्वारपुरमेंवसत. करतकरावतनाहि ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय पुरुष इस नौ द्वारके पुर अर्थात् नौ इन्द्रियोसे युक्त देहमें मनसे संपूर्ण कामोंको त्यागकर सुखपूर्वक रहते हैं, वे अहंकारके न होनेसे स्वयं कोई काम नहीं करते हैं और ममताके अभावसे औरभी किसीसे कुछ नहीं कराते हैं ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते १४ ॥

दोहा-ईश्वरनहिंकर्मनिकरत, नाहिंकर्मकरतार ॥

कर्मफलनहूनहिंकरत, प्रकृतिकरतविस्तार १४

प्रभु इस जीवके न कर्तापन, न कर्म, न कर्मफलको सृजता है, इन सबकी प्रवृत्ति करानेवाली प्रकृति है अर्थात् जीव अपने पूर्वजन्मके कर्मानुसार कर्म करने लगता है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥

दोहा-सुकृतनकादूकोगहै, औरपापनहिंलेत ॥

ढाप्योज्ञानअज्ञानसों, मोहनप्रगटनदेत ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर न किसीके पापको ग्रहण करता है न किसीके पुण्यको ग्रहण करता है, इस जीवका ज्ञान अज्ञानने ढक रक्खा है,

जो मनुष्य कर्म करता है और उन कर्मोंको ब्रह्ममें अर्पण कर फलकी कामनाको छोड़ देता है उस पुरुषसे पाप ऐसे लिप्त नहीं होते हैं, जैसे कमलपत्रपर जल नहीं ठहर सकता है ॥ १० ॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥

योगिनः कर्म कुर्वति संगं त्यक्त्वा त्मशुद्धये

दोहा-तनकरि मनकरि बुद्धिकरि, पुनि इंद्रिन हूं कीन
संग छांडि कर्म नि करै, योगी होहिं नलीन ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! शरीर, मन बुद्धि और केवल इन्द्रियोंसे योगीजन फलकी कामनाओंको छोड़ कर्म करते हैं वह कर्म करना चित्तकी शुद्धिके लिये है ॥ ११ ॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीम

अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥

दोहा-ज्ञानी हू मुक्ती लहै, करै कर्म फल छांड ॥

मूरख फलकी आस कर, बंधत कामना आड १२

हे अर्जुन ! जो कर्म फलकी कामनाको छोड़ कर्म करनेमें तत्पर रहता है वह ईश्वरमें निष्ठा रूप शांति पाता है और जो ईश्वरसे विमुख है और फलकी कामनामें मन लगाकर काम करता है वही कर्मसे बंधा हुआ है ॥ १२ ॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

दोहा-मनकरिकर्मनिजेतजै, ज्ञानीतेसुखआहि ॥
 नवेद्वारपुरमेंवसत. करतकरावतनाहि ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय पुरुष इस नौ द्वारके पुर अर्थात् नौ इन्द्रियोसे युक्त देहमें मनसे संपूर्ण कामोंको त्यागकर सुखपूर्वक रहते हैं, वे अहंकारके न होनेसे स्वयं कोई काम नहीं करते हैं और ममताके अभावसे औरभी किसीसे कुछ नहीं कराते हैं ॥ १३ ॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः
 न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते १४ ॥

दोहा-ईश्वरनहिंकर्मनिकरत, नाहिंकर्मकरतार ॥
 कर्मफलनहूनहिंकरत, प्रकृतिकरतविस्तार १४

प्रभु इस जीवके न कर्त्तापन, न कर्म, न कर्मफलको सृजता है, इन सबकी प्रवृत्ति करानेवाली प्रकृति है अर्थात् जीव अपने पूर्वजन्मके कर्माबुसार कर्म करने लगता है ॥ १४ ॥

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥
 अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥

दोहा-सुकृतनकादूकोगहै, औरपापनहिलेत ॥

ढाप्योज्ञानअज्ञानसों, मोहनप्रगटनदेत ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर न किसीके पापको ग्रहण करता है न किसीके पुण्यको ग्रहण करता है, इस जीवका ज्ञान अज्ञानने ढक रक्खा है,

इसीसे अज्ञानी जीव मोहमे फँसकर ईश्वरमें विषम दृष्टि रखते हैं॥ १५

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयतितत्परम्

दोहा-ज्ञानभये अज्ञानवह, जिनको पावतनाश ॥

तिनको रविसमज्ञानवह, करत सुपरम प्रकाश १६

हे अर्जुन ! जिनका यह विषय अज्ञान आत्मज्ञानसे नष्ट होगया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके समान प्रकाश करता है और अंधकार-रूप सब दुख सुखको मिटा देता है ॥ १६ ॥

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्वृतकल्मषाः ॥

दोहा-जेमनको अरु बुद्धिको, राखत ईश्वरमाँह ॥

जन्ममरणतिनको नही, मुक्ति होत नरनाँह ॥ १७ ॥

उस परमात्माहीमें जिनकी बुद्धि है, उसहीमें जिनकी आत्मा है, उसहीमें जिनकी निष्ठा है, उसीमें जो तत्पर हैं और उसी परमात्माकी कृपासे ज्ञानद्वारा जिनके पाप नष्ट होगये हैं वे इस संसारमें फिर जन्म नहीं लेते हैं अर्थात् मुक्त होजाते हैं ॥ १७ ॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ॥

शुनि चैव श्वपाके च पांडिताः समदर्शिनः ॥

दोहा-विद्याविनयसंपन्नाद्विज, गोगजसुपचौश्वान
ज्ञानीइनकोसमगनत, भेदलेतनहिमान ॥१८॥

जो विद्वान् हैं वे विद्या और विनयसे संपन्न ब्राह्मणमें गौ, और हाथीमें कुत्ते तथा चांडालमें समान दृष्टिसे देखते हैं अर्थात् अपनेमें और उनमें कुछ भेद नहीं मानते हैं ॥ १८ ॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः
निदोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः

दोहा-समताजिनकेहीयमें, तिनजीत्योसंसार ॥
समताब्रह्महिकोकहत, ब्रह्मलीननिरधार ॥१९॥

जिनका मन समानतामें स्थित है अर्थात् जो सबको समान दृष्टिसे देखते हैं उनमें यहीं यह संसार जीत लिया है, क्योंकि ब्रह्म दोषरहित और समान है इससे ऐसे जन ब्रह्ममें स्थित होजाते हैं ॥१९॥

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥

दोहा-सुखपायेहरपैनहीं, दुःखपायेनरिसाय ॥
राखैथिरनिजबुद्धिको, ब्रह्महिरहै समाय ॥२०॥

हे अर्जुन! जो प्रिय वस्तुको पाकर प्रसन्न नहीं होते हैं और अप्रियको पाकर शोक नहीं करते हैं अर्थात् जिनके न हर्ष है न विषाद, ऐसे स्थिर बुद्धिवाले, मोहरहित ब्रह्मवेत्ता ब्रह्ममें स्थित रहते हैं ॥२०॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मानि यत्सुखम्
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्रुते ॥

दोहा-बाहिरकेसुखकोतजै, हियसुखरहै सुजानि॥
ब्रह्मविषैचितकोधरै, लेहिसुआनंदमानि ॥२१॥

हे अर्जुन ! जो बाह्य इन्द्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें आसक्त नहीं
हैं वे अपनी आत्मामें परम शान्तिरूप सुखका अनुभव करते हैं और
इस शान्तिसे वे ब्रह्मयोगमें अपनी आत्माको लगा समाधिद्वारा अ-
क्षय सुखका अनुभव करते हैं ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते
आद्यंतवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

दोहा-विषयजितेसंसारके, तेहैंदुखकेमूल ॥

उपजतविनशतहैंतिन्हैं, पंडितगहैनभूला ॥२२॥

हे अर्जुन ! जो रूप रसादि इन्द्रियोंके भोगहैं वे दुःखके मूल कारण
हैं. ये भोग उत्पन्न होते हैं और मिट जाते हैं. इससे विवेकी जन
विषयोंमें रमण नहीं करते हैं ॥ २२ ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥

दोहा-कामक्रोधकेवेगको, जोसहिसकैसुभाय ॥

तेयोगीकितहूरहैं, स्थिरसुखलपटाय ॥२३॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य जीतेजी अथवा जबतक शरीरमें शक्ति बनी रहै तबही तक क्रोधके वेगोंको जीत लेता है वही इस संसारमें योगी है और वही सुखी है क्योंकि पुरुषार्थ घटनेपर तौ सभीके काम क्रोध घटजाते हैं जैसा कहा भी है “ धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ” ॥ २३ ॥

**योंऽतः सुखोऽन्तरारामस्तथांऽतज्योतिरेव यः
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति**

दोहा—जाकेहियेप्रकाशहै, अंतरसुखआराम ॥
वहयोगीपरब्रह्ममें, लहेब्रह्मकोधाम ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो अपनी आत्माहीमें सुखका अनुभव करता है और अपनी आत्माहीमें रमण करता है और जो अपने अन्तःकरणके आत्मसंबंधी ज्ञानसे प्रकाशित है वही योगी ब्रह्मरूप होकर ब्रह्मके निर्वाण पदको प्राप्त होजाता है ॥ २४ ॥

**लभन्ते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥**

दोहा—जोज्ञानीपापनितजै, होतब्रह्ममेंलीन ॥
भेदनतिनकेजीयमें, रहतसबनसोंदीन ॥ २५ ॥

जिनके दोभाव नहीं हैं और अपनी आत्माको अपने बशमें कर रक्खा है और जो प्राणीमात्रकी भलाई चाहते हैं, जिनके संपूर्ण पाप क्षीण हो गये हैं वेही निर्वाण पदको पाते हैं ॥ २५ ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्म निर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

दोहा—कामक्रोधतेजेरहित, निजवशकीन्होंचित्त ॥

आत्मतत्त्वकोजानिकर, ब्रह्मचहूँदिशिमित्त ॥

जो काम क्रोधसे रहित हो गये हैं जो संयमपूर्वक रहते हैं जिनने अपना मन वशीभूत कर रक्खा है और जो आत्मातत्त्व को जानते हैं उनके सब ओर ब्रह्मसुख वर्तमान रहता है ॥ २६ ॥

स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षश्चैवांतरे श्रुवोः
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणो ॥

दोहा—तजैविषयसंसारमें, दृष्टिभोंहमधिराषि ॥

प्राणअपानहिसमकरत, नासामधिअभिलाषि ॥

रूपरसादि इन्द्रियोंके बाह्य विषयोंको बाहर करके और नेत्रोंकी दृष्टि को भोंहके मध्यमें रख प्राण और अपान वायुको समान रख कुंभक प्राणायाम करें. श्रूमध्यमें दृष्टि रखना इसलिये कहा है कि वन्द करनेसे तो निद्रा का भय है और खुले रखनेसे बाह्य विषयोंपर मन दौड़ता है और अधखुले रहनेसे श्रुकुटियोंके बीच दृष्टि निकट रहती है और दोनों वायु सम होकर नासिकारन्ध्रसे संचार करती है

जितेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः २८

दोहा-जीतैइंद्रीबुद्धिमन, मुक्तिहिमेंमनदेय ॥

इच्छाभयक्रोधहितजै, मुक्तिपदारथलेय ॥ २८ ॥

१ वह मुनि जिसने अपनी इन्द्रियां, मन और बुद्धि जीत लिये हैं, जो मोक्षहीका आश्रय लिये रहता है और जिसके इच्छा, भय और क्रोध दूर होगये हैं वह सदा ही जीवन्मुक्त है ॥ २८ ॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥

दोहा-तपयज्ञनकोभोगकै, सबलोकनिकोईश ॥

शान्तिलहैयोंजानिकै, मोकोप्रभुजगदीश ॥ २९ ॥

सांख्ययोगअरुकर्मको, दियोविकल्पमिटाय ॥

यातेसेवनदुहुनको, कह्योपांचवेंध्याय ॥ १ ॥

कह्योजगतमनभावतो, वरन्योयोग संन्यास ॥

यदुपतिआनंदरामको, दीजैभक्तिविलास ॥ २ ॥

सब यज्ञों और तपोंका भोगनेवाला संपूर्ण लोकोंका ईश्वर और सब प्राणियोंका सुहृद जो मुझे जानते हैं उन्हींको शान्ति मिलती है २९

समीक्षा-उपरोक्त श्लोकमें जो यह कहा है कि मैं यज्ञ, तपका रक्षक हूं उससे अभिप्राय यह है कि जो पुरुष यज्ञ अर्थात् परोपका-

रादि कर्म और तप अर्थात् अपने मन और इन्द्रियोंके दमन रूप कर्म को करते हैं, उनको मैं विविध दुःखतापसे बचाता हूँ.

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषा-
टीकायां संन्यासयोगोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

समीक्षा--इस पांचवे अध्याय में श्रीकृष्ण महाराजने अर्जुन को यह समझाया है कि मनुष्य को उत्तम कार्य करते यदि विघ्न उपस्थित हों तो चित्तमें घबराहट न आने दे, किंतु सुख दुःखको समान समझते हुए एक वीर पुरुष की भांति देश सेवा और जाति सेवा के कामों में आगेही आगे बढ़ते जाना चाहिये न कि थोड़ा सा विघ्न उपस्थित होने पर कायर होकर गद्गद की भांति हुमदबा भाग जाना चाहिये ।

विजय की इच्छा करने वाले पुरुष को इंद्रियोंके भोग विलास का दास कदापि नहीं बनना चाहिये । जो केवल इंद्रियोंके सुखोंको ही ब्रूढ़नेवाले हैं चाहे उनकी ओरसे देश या जाति रसातलको जाए ! उनसे कदापि देश या जाति या स्वयं उनकी आत्मा की भलाईकी आशा बुद्धिमानोंको न रखनी चाहिये । यही गम्भीर उपदेश अध्याय ५ के श्लोक २० से लेकर २८ पर्यंत दिये गये हैं ।

और अंतके श्लोक २९ में किस सुंदरतासे यह दिखाया है कि जो उत्तम और धार्मिक पुरुष हैं उन को यह दृढविश्वास रखना चाहिये “कि हमको हानि पहुंचाने की किसी को भी सामर्थ्य नहीं है, अतः हमको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें दृढ पुरुषार्थ करते रहना चाहिये ; ईश्वर सबप्रकारसे हमको सहायता देनेवाला है; कामी, धर्मध्वजी, पामर, अन्यायी और लालची मनुष्य, चाहे वह प्रत्यक्षमें कैसेही बली, धनाढ्य और सृद्धिमान क्यों न दीख पड़ें हमारा बाल भी बांका नहीं करसके ” ।

(पृष्ठ ११३ से आगे)

[९] नीची श्रेणीके मनुष्योंके साथ उच्च श्रेणीके मनुष्योंको उच्चम वर्तीव करना चाहिये, उनको हिन्दु (आर्य) धर्मका गौरव और अभिमान सिखाकर उनके साथ इस प्रकार प्रेमका वर्तीव करना चाहिये कि वह ईसाई, मुसलमान नहीं बनने पावें और जब वह योग्य बनकर अपना मलीन धंधा छोड़ दें, तो उनके साथ छूआछूत करनी छोड़ दी जाय। उन में से जो लोग इस समय ईसाई, मुसलमान होगये हों उनकी प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धिकरलीजाये और पुनः हिन्दु (आर्य) धर्मकी गोदमें उनको लाकर “शोधित आर्य (हिन्दु)” उनका जातिनाम रक्खा जाय। दिनप्रतिदिन हिन्दु [आर्य] जातिकी संख्या घट रही है। इस प्रवाहको यदि न रोका जायगा तो हिन्दु [आर्य] जातिके नष्ट होनेका भय है। पिछले समयमें भी शुद्धि के अनेक दृष्टांत मिलते हैं यथा:-

(क) राजा जरासंध का मगधदेश में लाखों शूद्रों को ब्राह्मण बनाना, जिनको अभी तक “जरासंधिया” ब्राह्मण कहते हैं (ख) शंकराचार्य का बौद्ध पंथवालों को ब्राह्मणादि बनाना, जब कि वह एकही वर्ण हो रहे थे। शंकराचार्यने गुण कर्मानुसार यज्ञोपवीत संस्कार करके उनको फिरसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य बनाये (ग) दक्षिण निवासी ब्राह्मणों द्वारा म्लेच्छजाति के शक लोगों का जो दक्षिण भारतमें आये, शिवधर्मी वैश्य बनाया जाना (घ) राजपूताना प्रांत में बीकानेर आदि राज्यों में दो सौ तीन सौ वर्ष पूर्व शूद्रों का ब्राह्मण बनाया जाना। अतिप्राचीन समय में भी योग्य होने पर गुणकर्म से ब्राह्मणादि बनने के कितने ही दृष्टांत मिलते हैं, परन्तु जन्मसे ब्राह्मणादि होनेवालोंका सम्मान अधिक होता था।

[१०] वर्तमान समय में जो लोग “धतित जाति” के नाम से पुकारे जाते हैं उनको चाहिये, कि अपना मलीन धंधा बताने में लज्जित न हों; और न उनको दुःखी और निरुत्साही ही होना चाहिये; क्योंकि प्रथम तो धंधेसे जातिका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी बात यह भी है कि-

इतिहास, और उनकी दंतकथाओंके जानकारोंने पता लगाया है कि इस समय जो मोची चमार हैं, वह एक समय उच्चजाति वाले थे। अब भी मलीन धंधा छोड़ने पर उच्चजाति की गणना में आसक्ते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष में भी लोग प्रायः गुणकर्मानुसार ही मान पा रहे हैं। भारतवर्ष के पूर्वज ऋषिगणोंने पादपूजा का उपदेश दिया है, इस बात पर ध्यान देनेसे पता लगता है कि, ऋषि लोग पैरों का कितना महत्व समझते थे। अभी तक भी पूजनीय मनुष्योंके पैरों की ही पूजा हो रही है न कि शरीर के किसी दूसरे अंगकी। बिना पैरों के जैसे शरीर किसी काम का नहीं, वैसेही हिन्दु [आर्य] समाज रूपी शरीर भी शूद्ररूपी पैरोंके बिना किसी

कामका नहीं; इसीलिये इन के साथ सबको प्रेम का वर्तव्य करना चाहिये ।

इस दृष्टान्तसे हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि शूद्रोंको पूजना चाहिये या द्विजातिके मनुष्योंकी अपेक्षा उनको उत्तम सम्पन्नता चाहिये, किन्तु आशय यह है कि उनको तुच्छ सम्पन्नकर उनका तिरस्कार नहीं किया जाय।

शूद्रोंको यह जानकर उत्साह ग्रहण करना चाहिये कि, धर्म ग्रंथों में उत्तम शूद्र का वैसा ही सम्मान करना लिखा है जैसा कि एक ब्राह्मण का ।

हमारे अवतार और धर्म के आचार्योंने शूद्रों का आतिथ्यसत्कार ग्रहण किया है, जैसा कि रामचंद्रजी महाराज मुनियोंके आश्रममें न जाकर भीलनी के आश्रममें गये और उसके शुद्ध प्रेम से इतने संतुष्ट हुए कि, उसके हाथके उच्छिष्ट बरों को खाया। भरतजी महाराज और वशिष्ठ मुनि गृहक भीलके स्थानपर गये और उस का आतिथ्य सत्कार ग्रहण किया । आजकल यदि कोई विचारहीन मनुष्य उनके साथ उत्तम व्यवहार न करे तो उनको उस बातसे अप्रसन्न नहीं होना चाहिये, क्योंकि धर्म ग्रंथोंमें तो योग्यतानुसार उनका पूरा आदर और सम्मान करना लिखा है ।

शूद्र शब्द का अर्थ पवित्रताको त्यागनेवाला है, जैसा कि इस शब्दकी व्युत्पत्तिसे स्पष्ट प्रतीत होता है; यथा--“शूचंद्रवर्तीति शूद्रः” अर्थात् जो शुद्धि और सात्विकताको त्यागकर मलीनता और दुरिद्रता दोनों को धारण करता है वही शूद्र है । पवित्र, विद्वान् और धनवान होने पर उस की शूद्र संज्ञा नहीं रहती।

[११] देशीशिल्प, कृषि और वाणिज्यको उन्नत करनेके लिये यहींपर उसर विद्याको जाननेवाले मनुष्य उत्पन्न किये जायें । एक समय ऐसा था कि भारत वर्षका बना हुआ कई करोड़ रुपयोंका कपड़ा बाहर यूरोप आदि देशोंको जाता था । परन्तु हम लोगोंने यंत्रादि की खोज न करके पुराने ढंग परही शिल्पादिका काम प्रारंभ रक्खा, और यूरोप अमेरिका आदि देशोंके लोग नये २ यंत्र कलाये निकालकर आगे बढ़ते गये और इन विद्याओंको बहुत उन्नत कर लिया । इस का परिणाम यह हुआ कि, हम लोग अपने लिये आवश्यक वस्तुएँ न बनासकने के कारण उन देशोंकी ओर तत्कत रह गये । जबतक उन लोगों के समान हम भी मिलकर कम्पनिये नहीं सोलेंगे और यहाँके लोगों को विद्वान् नहीं बनायेंगे, तब तक उन देशों के समान उन्नति नहीं कर सकेंगे । वहाँ के लोग व्यापारमें कितने उन्नत होगये हैं इसका पता इसी बातसे लगसका है कि अमेरिकाकी स्टैंडर्डओईल कम्पनी अर्थात् “किरोसीन तेल का व्यापार करने वाली मण्डली” का स्वामी एक वर्ष में अठारह करोड़ रुपये की आय रक्खता है । यूरोप, अमेरिका में ही अनेक अर्बपति घनाढ्य लोग पड़े हैं । यह सब सम्पत्ति समयानुकूल यंत्रों द्वारा व्यापार में उन्नति करनेका ही परिणाम है । [अपूर्ण]

अथ षष्ठमोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः

दोहा—कर्मफलनचाहै नहीं, कर्मनिकरत जुआहि ॥

योगीसंन्यासीवही, अग्निअक्रिया नाहि॥१॥

हे अर्जुन ! जो अपने किये हुए कर्मोंके फलकी इच्छाको छोड़ अपना नित्य नैमित्तिक कर्म करते रहते हैं, वेही संन्यासी और वेही योगी हैं और जो अग्निहोत्रादिकर्म त्याग देते हैं और वापी कूप खननादि कर्मोंका परित्याग कर निष्क्रिय हो जाते हैं न वे संन्यासी हैं, न वे योगी हैं, इसमें यह दिखाया है कि, संन्यास लेने परभी आन्धिकर्म करना अवश्य है और कर्म करते हुएभी कर्मफलकी इच्छा न करना संन्यास है ॥ १ ॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन

दोहा—जाकोंसंन्यासीकहै, वहैयोगतूजानि ॥

बिनुसंन्यासहियोगनहिं, यहैसाँचहूँमानि ॥२॥

हे अर्जुन ! जिसको संन्यास कहते हैं उसीको योगजान, ऐसा कर्म निष्ठ वा ज्ञाननिष्ठ कोई नहीं है. जो बिना फल संकल्पके त्यागे योगी हो सकता हो, क्योंकि कर्मफलका त्याग संन्यासमें भी है और योगमें भी है

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते

दोहा—योगहिकर्मनतेलहत, ज्ञानीचित्तविचारि ॥

योगलहेशांतीगहै, विषयइंद्रियनमारि ॥ ३ ॥

जो ज्ञानयोगकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनको ज्ञान प्राप्ति का कारण कर्म कहा है क्योंकि निष्काम कर्म करनेसे चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस ज्ञानप्राप्तिसे मनुष्यको शान्ति मिलती है ॥ ३ ॥

यदा हि नैन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषजते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

दोहा—विषयनसों अरु कर्मसों, होय प्रीति जब दूरि ॥

सबसंकल्पनको तजै, योगरहै जब पूरि ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य इन्द्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें आसक्त नहीं होता है और न कर्ममें आसक्त होता है, और संपूर्ण फलसंकल्पोंका परित्याग कर देता है, वही योगारूढ कहलाता है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः

दोहा—निज आत्मको उद्धरत, अधोगमन जु करेय
आत्मही रिपु आपको, आत्मही सुख देय ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! भिवेकी पुरुषको उचित है कि, अपनी आत्माका संसारसे आपही उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे, क्योंकि कामनासे रहित जो आत्मा अर्थात् अपना मन बंधुके समान उपकारी है और सकाम आत्माही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

**बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥**

दोहा—आपुहिजीत्योआतमा, सोईबंधुजुयाहि ॥

जिनजीत्योनाहीजुवह, अरिजानियेसुताहि ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! जिसने अपनी आत्मासे आत्मा जीत ली है, तो वही आत्मा उसका बंधु है और जो आत्मा नहीं जीती है, तो उसकी आत्माही उसका शत्रु है अर्थात् आपही अपना शत्रु है और आपही अपना मित्र है ॥ ६ ॥

**जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः**

दोहा—जिनजीत्योहैआतमा, शान्तलहै बहुज्ञान ॥

शीतउष्णसुखदुःखसमें, अरुअपमानजुमान ७

जिसने अपना मन अपने वशीभूत करलियाहै और शीत, उष्ण सुख, दुःख और मान अपमानमें जो सदा शान्त रहताहै, उसके हृदय में परमात्मा स्थिर है अथवा उसीकी बुद्धि अत्यन्त सावधान रहती है

**ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः**

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते

दोहा—योगहिकर्मनतेलहत, ज्ञानीचित्तविचारि ॥

योगलहेशांतीगहै, विषयइंद्रियनमारि ॥ ३ ॥

जो ज्ञानयोगकी प्राप्ति करना चाहते हैं उनको ज्ञान प्राप्ति का कारण कर्म कहा है क्योंकि निष्काम कर्म करनेसे चित्त शुद्ध होता है और चित्त शुद्ध होनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस ज्ञानप्राप्तिसे मनुष्यको शान्ति मिलती है ॥ ३ ॥

यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ॥

सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥

दोहा—विषयनसों अरु कर्मसों, होय प्रीति जब दूरि ॥

सर्वसंकल्पनको तजै, योगरहै जब दूरि ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जब मनुष्य इन्द्रियोंके रूपरसादि विषयोंमें आसक्त नहीं होता है और न कर्ममें आसक्त होता है, और संपूर्ण फलसंकल्पोंका परित्याग कर देता है, वही योगारूढ कहलाता है ॥ ४ ॥

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्

आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः

दोहा—निजआत्मको उद्धरत, अधोगमन जु करेय

आत्मही रिपु आपको, आत्मही सुख देय ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! विवेकी पुरुषोंको उचित है कि, अपनी आत्माका संसारसे आपही उद्धार करे, उसकी अधोगति न करे, क्योंकि कामनासे रहित जो आत्मा अर्थात् अपना मन बंधुके समान उपकारी है और सकाम आत्माही अपना शत्रु है ॥ ५ ॥

**बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥**

दोहा-आपुहिर्जात्योआतमा, सोईबंधुजुयाहि ॥

जिनजात्योनाहीजुवह, अरिजानियेसुताहि ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! जिसने अपनी आत्मासे आत्मा जीत ली है, तो वही आत्मा उसका बंधु है और जो आत्मा नहीं जीती है, तो उसकी आत्माही उसका शत्रु है अर्थात् आपही अपना शत्रु है और आपही अपना मित्र है ॥ ६ ॥

**जितात्मनः प्रशांतस्य परमात्मा समाहितः
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः**

दोहा-जिनजात्योहैआतमा, शांतलहै बहुज्ञान ॥

शीतउष्णसुखदुखसमें, अरुअपमानजुमान ७

जिसने अपना मन अपने वशीभूत करलियाहै और शीत, उष्ण सुख, दुःख और मान अपमानमें जो सदा शान्त रहताहै, उसके हृदय में परमात्मा स्थिर है अथवा उसीकी बुद्धि अत्यन्त सावधान रहती है

**ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः**

दोहा-जानतज्ञानविज्ञानको, अरुइंद्रोजितहोय ॥
 सोनोपाहनएकसम, गनैजुयोगीकोय ॥ ८ ॥

शास्त्र वा गुरुके उपदेशसे उत्पन्न जो ज्ञान और अनुभवसिद्ध जो विज्ञान इनसे सन्तुष्ट है आत्मा जिनकी और जिनका मन कभी चलायमान नहीं होता है, इन्हीं कारणोंसे जिनकी इन्द्रियां वशीभूत होगई हैं और इसीसे वे मिट्टी, पत्थर वा सुवर्णको समान समझते हैं ऐसेही योगी योगारूढ होते हैं ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
 साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

दोहा-मित्रउदासीशत्रुपुनि, अरुनिजबंधुसमान ॥
 साधोपापोचित्तमें, गनैएकअनुमान ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बंधुवर्ग, साधु और पापाचारियोंमें समान दृष्टि रखता है, अर्थात् सबको एक सा समझता है, वह योगियोंसे भी बढकर है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानंरहसि स्थितः
 एकाकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः ॥

दोहा-बैठैएकोएकचित्त, योगीसाधैयोग ॥

एकाकीचाहैनकछु, जोरैनहिंसुखभोग ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! योगीको उचित है कि-सदा एकान्तमें रहै, किसीको संग न रखतै, अपने मन और आत्माको बसमें रखतै, किसी बात-

की आशा न रखै और न किसी वस्तु का संग्रह करै, इस प्रकार निरन्तर अपनी आत्माको परमात्मामें लगाता रहै ॥ १० ॥

**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥**

दोहा-ठौरपुनीतनिहारिकै, करिआसनविस्तार ॥

नहिंऊंचोनीचो नही, पटकुशअजिनविथार ११

हे अर्जुन ! योगसाधन के लिये सुन्दर पवित्र भूमिमें जो न बहुत ऊंची हो, न बहुत नीची हो उसपर कुशाका आसन बिछावै उसपर मृगचर्मपर वस्त्र बिछाकर निश्चल मन होकर बैठे ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेंद्रियक्रियः ॥

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

दोहा-करिवैठमनकोजुथिर, सबइंद्रिनकोजीति ॥

करिकैआसनशुद्धको, योगकरैइहिरीति ॥ १२ ॥

उस आसन पर बैठ मनको एकाग्र कर चित्तेंको, शोक, क्रियासे रहित हो अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये योग साधन करै ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

दोहा-कायाशिरअरुग्रीवको, राखैएकसमान ॥

दृष्टिकरैनिजनासिका, देखै नहिंदिशिआन १३

दोहा—जानतज्ञानविज्ञानको, अरुइंद्रोजितहोय ॥
 सोनोपाहनएकसम, गनैजुयोगीकोय ॥ ८ ॥

शास्त्र वा गुरुके उपदेशसे उत्पन्न जो ज्ञान और अनुभवसिद्ध जो विज्ञान इनसे सन्तुष्ट है आत्मा जिनकी और जिनका मन कभी चलायमान नहीं होता है, इन्हीं कारणोंसे जिनकी इन्द्रियां वशीभूत होगई हैं और इसीसे वे मिट्टी, पत्थर वा सुवर्णको समान समझते हैं ऐसेही योगी योगारूढ होते हैं ॥ ८ ॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
 साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

दोहा—मित्रउदासीशत्रुगुनि, अरुनिजबंधुसमान॥
 साधोपापीचित्तमें, गनैएकअनुमान ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो सुहृद, मित्र, शत्रु, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बंधुवर्ग, साधु और पापाचारियोंमें समान दृष्टि रखता है, अर्थात् सबको एक सा समझता है, वह योगियोंसे भी बढकर है ॥ ९ ॥

योगी युंजीत सततमात्मानंरहसि स्थितः
 एकाकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः ॥

दोहा—बैठैएकोएकचित्त, योगीसाधैयोग ॥

एकाकीचाहैनकछु, जोरैनहिंसुखभोग ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! योगीको उचित है कि—सदा एकान्तमें रहै, किसीको संग न रखै, अपने मन और आत्माको बसमें रखै, किसी बात-

की आशा न रखै और न किसी वस्तु का संग्रह करै, इस प्रकार निरन्तर अपनी आत्माको परमात्मामें लगाता रहै ॥ १० ॥

**शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्**

दोहा-ठौरपुनीतनिहारिकै, करिआसनविस्तार ॥

नहिंऊंचोनीचो नही, पटकुशअजिनविथार ११

हे अर्जुन ! योगसाधन के लिये सुन्दर पवित्र भूमिमें जो न बहुत ऊंची हो, न बहुत नीची हो उसपर कुशाका आसन बिछावै उसपर मृगचर्मपर वस्त्र बिछाकर निश्चल मन होकर बैठै ॥ ११ ॥

तत्रैकाग्रं मनःकृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥

उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥

दोहा-करिवैठमनकोजुथिर, सबइंद्रिनकोजीति ॥

करिकैआसनशुद्धको, योगकरैइहिरीति ॥ १२ ॥

उस आसन पर बैठ, मनको एकाग्र कर चित्तको, रोक, क्रियासे रहित हो अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये योग साधन करै ॥ १२ ॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम् ॥

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्

दोहा-कायाशिरअरुग्रीवको, राखैएकसमान ॥

दृष्टिकरैनिजनासिका, देखैनाहिंदिशिआन १३

सब देह, सिर और शीवाको सीधी रखै, इधर उधर न हिलावै और स्थिर रखे और अपनी नासिका के अग्रभागको देखता रहे तथा किसी ओर दृष्टि न चलावै ॥ १३ ॥

प्रशांतात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः

मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥

दोहा—शांतिगहै भयको तजै, ब्रह्मचर्यव्रत लेय ॥

मोमेरा खैरो किमन, लहै योगको भेय ॥ १४ ॥

मनको शांत कर, निर्भय हो, ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित रह, मुझमें चित्त लगाय मनको रोक मुझमें तत्पर हो. योगका साधन करै ॥ १४ ॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ॥

शांतिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति

दो०—यहिविधिकरै जु योगको, निजमनको थिर राखि

शांतिलहै मोको मिलै, लहै अमीरस चाखि ॥ १५ ॥

मनको बसमें रखनेवाला जो योगी इस प्रकारसे सदा अपनी आत्मा को योगमें तत्पर करेगा. वह परम पदरूप और मुझमें स्थित ऐसी जो शांति अर्थात् मोक्षको पावेगा ॥ १५ ॥

नात्यश्रतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्चतः

न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

दोहा—योग लहै नहि बड़ भखै, विनु स्वायेहू भित्त ॥

सोवत हू नहि होत है, नहि अति जागे नित्त ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! जो बहुत भोजन करता है उसका याग सिद्ध नहीं होता और जो निराहार रहता है उसका योगभी सिद्ध नहीं होता जो बहुत सोता है वा बहुत जागता है उसकाभी योग सिद्ध नहीं होता है १६

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

दोहा-युक्तविहार अहारको, कर्मयुक्तपुनिहोय ॥

जागतसोवतजोजुगत, सोडारतदुखधोय ॥ १७

हे अर्जुन ! जो मनुष्य आहार और विहारप्रमाणसे करता है और कर्मभी युक्तिपूर्वक प्रमाणसे करता है और जो प्रमाणहीसे जागता वा सोता है उसका योग दुःखोंका दूर करनेवाला है। इसका तात्पर्य यह है कि योगीको उचित है कि आहारादि उक्त कर्म परिमित और नियमानुकूल करे ॥ १७ ॥

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥

निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा

दोहा-जो निजचित्तको रोकिके, राखत आत्ममाहि

तजै सब जो कामना, सो योगी नरनाहि ॥ १८ ॥

जब मनुष्य अपनी आत्माहीमें अपने चित्तकी वृत्तियोंको रोक लेता है और संपूर्ण कामनाओंको छोड़कर निःस्पृह होजाता है तबही वह पुरुष युक्त अर्थात् सिद्ध योगी कहाता है ॥ १८ ॥

यथा दीपो निघातस्थो नैगते सोपमा स्मृता

योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः

दोहा—जैसे दीपसमीरं विनु, रहै ज्योति ठहराय ॥

योगीनिश्चलचित्तको, उपमा है या भाय ॥ १९ ॥

जैसे निर्वातस्थानमें रखे हुए दीपककी ज्योति हिलती झुलती नहीं है ऐसेही उपमा उस योगीकी है. जिसने अपना चित्त वशीभूत कर रखा है और सदैव योगाभ्यासमें मन लगाये रहता है तो उसका मन निर्वातस्थानमें रखे हुए दीपककी भांति चलायमान नहीं होता है ॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ॥

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनितुष्यति

दोहा—योगीसेवतयोगको, चित्तवृत्ति ठहराय ॥

निरखत आत्मको तहाँ, रहत सदा सुखपाय २०

जिस अवस्थामें योगाभ्याससे अपनी चित्तवृत्तियोंके रुकनेपर जहां विश्राम लेता है और जहां बुद्धिद्वारा आत्मस्वरूपको देखता है और अपनी आत्माहीमें संतुष्ट होता है ॥ २० ॥

सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलतितत्त्वतः ॥

दोहा—जो सुख इंद्रियनते परे, बहुत बुद्धिगहिलेत ॥

वासुखको जानेत बै, ता पाछे इहनेत ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! जिस अवस्थाविशेषमें योगीजन किसी ऐसे अत्यन्त सुखका अनुभव करते हैं जो इन्द्रियोंके विषयसे दूर हैं और केवल बुद्धिद्वारा ही जाना जाता है, इसीसे उस सुखमें स्थित हो योगी आत्मस्वरूपसे चलायमान नहीं होता है ॥ २१ ॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥

दोहा—जो पाये लाभ अधिक, और जानिरे मित ॥

स्थिरता गहि डोलै नहीं, बहु दुख पाये चित्त ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! जो आत्मस्वरूपरूपी इस सुखको पाकर इससे अधिक और किसी लाभको नहीं मानते हैं और उस सुखमें स्थित होकर बड़े बड़े जो शीतोष्णादि सुख दुःख हैं उनसे भी विचलित नहीं होता है ॥ २२ ॥

तं विद्या दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् ॥
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥

दोहा—दुख ही को संयोगको, मान झुलेत वियोग ॥

निश्चै करि योग हिकरै, ताको कहत जु योग २३

जिस अवस्थामें दुःखका लेश मात्र भी नहीं रहता है, उसी अवस्थाको योगावस्था समझना चाहिये, इससे स्थिरचित्त होकर यत्नपूर्वक योगाभ्यास करना उचित है ॥ २३ ॥

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ॥
मनसैर्वेन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः २४ ॥

दोहा—संकल्पनि जो कामना, तिन्हें तजै चित लाय
मनसों रोकै इंद्रियन, योग करै यह भाय ॥ २४ ॥

संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली जो योगसाधनमें बाधा डालनेवाली कामनायें हैं उन सबको सर्वथा त्यागकर और इन्द्रियोंको मनसे संपूर्ण विषयोसे रोककर योगाभ्यास करै ॥ २४ ॥

शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिंतयेत् ॥

दोहा—धीरजधरिरुबुद्धिकरि, परैरहैसबत्यागि ॥

कछुवैकरैनकामना, आत्मसों अनुरागि ॥ २५ ॥

धृति जो धारण उस करके बशीभूत जो बुद्धि उससे मनको धीरे धीरे आत्मामें लीन करै और फिर किसी बातका चिन्तवन न करै शीघ्रता करनेसे मन स्थिर नहीं होता है ॥ २५ ॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ॥

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वश नयेत् ॥

दोहा—मनचंचलजिततितचलै, ताकोराखैरोकि ॥

करिसंयमनिजआत्मा, सजैजुताकोठोंकि २६

यह मन बड़ा चंचल है किसी एकही जगह स्थिर नहीं रहता है, इससे जहां २ यह फिर वहां वहांसे इसे रोककर आत्मामें स्थिर करै २६

प्रशांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ॥

उपैति शांतरजसं ब्रह्मभूतमकलमषम् २७

दोहा—जाके मनमें शांतिहै, ताहीको सुखहोय ॥

भगनजुब्रह्मानंदमें, पापरहितमुनिसोय ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! जिसका मन ऊपर लिखी रीतिसे शांत हो गया है,
रजोगुण नष्ट हो गया है और आत्मा निष्पाप हो ब्रह्ममें लीन हुआ
है। ऐसे योगीको समाधिका उत्तम सुख अपने आप प्राप्त होजाता है
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः॥

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते २८

दोहा—जो योगी इहिविधिकरै, करै पाप कौत्यागि ॥

सहजहि ब्रह्महिके सुखहिं, लहैवहै अनुरागि २८

इस प्रकार सदा आत्माको लगाये रखनेवाला निष्पाप योगी
सुखपूर्वक बिनाही परिश्रम महान् ब्रह्मसुखको भोगता है ॥ २८ ॥

**सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः २९**

दोहा—मोहिलखै सब ठोरमें, सबको मोही मांहि ॥

मोको देखत सो सदा, हौं हूँ देखत ताहि ॥ २९ ॥

सबको समान दृष्टिसे देखनेवाले योगाभ्यासी अपनी आत्माको
सब प्राणीमात्रमें देखते हैं और संपूर्ण प्राणियोंको अपनी आत्मा-
में देखते हैं ॥ २९ ॥

**यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति**

दोहा—जो मोको सबमें लखै, सब जग मोहिय मांहि ॥

ताके हौं ढिगही रहौं, सो मेरे ढिग आहि ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! जो मुझको संपूर्ण प्राणीमात्रमें देखता है और सब प्राणीमात्रको मुझमें देखता है उस योगीसे मैं अदृश्य नहीं रहता हूँ और न वह मुझसे अदृश्य रहता है अर्थात् मैं प्रत्यक्ष होकर उसे दर्शन देता हूँ ॥ ३० ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥

दोहा—सर्वविषेस्थितजुहों, इकलखिभजैसुमोहिं ॥

रहोंकौनहूँभातिवह, मोमैवर्तैसोहिं ॥ ३१ ॥

जो अभेद बुद्धिसे संपूर्ण प्राणियोंमें स्थित मुझको भजता है वह योगी संपूर्ण कर्मोंको परित्याग करने परभी सर्वथा वर्तमान अर्थात् जीवित दशामें मुझसे मिलजाता है अर्थात् जीवन्मुक्ति पाता है ॥ ३१ ॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः

दोहा—सबकोदेखेआपसम, सुखीदुखीइकभाय ॥

सो योगीसवते बडो, मोमे रहै समाय ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! जो संपूर्ण प्राणियोंके दुःख सुखको अपने दुःख सुखके समान मानता है और सबको एकसा देखता है वही योगी श्रेष्ठ है ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्

दोहा-योगकह्योतुमकृष्णजू, मोकोएकसमान ॥

रहैनमोचितचपलहै, जोतुमकियोबखान ॥३३॥

श्रीकृष्णकी बात सुनकर अर्जुनने कहा कि-हे मधुसूदन ! जो आपने योगकी यह रीति बताई कि सबको समभावसे देखे सो मैं अपनी बुद्धिकी चंचलतासे यह समझताहूँ कि इस प्रकारका योग बहुत कालतक स्थिर नहीं रह सकता है ॥ ३३ ॥

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्

दोहा-मनहैचंचलकृष्णजू, बहुक्षोभकदृढजानि ॥

ताकोरोकनपवनसम, हैअतिकठिनजुमानि३४

हे कृष्ण ! यह मन बड़ा चंचल है देह और इन्द्रियगणोंको क्षोभकारक है बड़ा बलवान और दृढ है इस मनको रोकलेना मेरी समझमें ऐसा कठिन है जैसा प्रबल वायुका रोकना ॥ ३४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

दोहा-अर्जुनतुमसाँचीकही. मनचंचलनगहाय ॥

योगहितेवैराग्यतै, नीकेपकरोजाय ॥ ३५ ॥

अर्जुनकी बात सुन श्रीकृष्ण बोले-हे महाबाहो ! निस्संदेह मन बड़ा चंचल है यह कर नहीं सकता है परन्तु हे कौन्तेय ! अभ्यास और वैराग्यसे निग्रह हो सकता है ॥ ३५ ॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः

दोहा-जिनपकन्योनहिचित्तनिष्ठ, तापैयोगनहोय
जिनअपनोमनवशकियो, लहतयतनसोसोय ३६

हे अर्जुन ! मेरी समझमें तो यह आता है कि, जिसका मन वश-
में नहीं है वहभी योगसाधन नहीं करता है जो जितेन्द्रिय हैं वेही
यत्न पूर्वक योगसाधनकर सकते हैं ॥ ३६ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः
अप्राप्ययोगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥

दोहा-अयतीअरुश्रद्धासहित, योगभ्रष्टतापाइ ॥

लहैनसिद्धसुयोगकी, कहौकौनगतिजाइ ॥ ३७

हे कृष्ण ! जो प्रथमही श्रद्धापूर्वक योगसाधनमें प्रवृत्त हुआ परन्तु
पीछे ठीक उपाय न करसका अर्थात् अग्न्यासमें शिथिल हो गया
और इस कारणसे उसका मन योगसे चलायमान हो गया तो ऐसा
मनुष्य योगकी सिद्धिरूप फलको न पाकर किस गतिको प्राप्त होता है
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति

अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥

दोहा-किधौदुह्नजेत्रष्टन्है, बादरज्यौविनसाय ॥

ताकोकलूनआसरो, रह्यौमूढकेभाय ॥ ३८ ॥

हे महाबाहो ! न तौ प्राणीमें निष्काम कर्म करके ईश्वरको समर्पण किया और काम्यकर्म न करके स्वर्गादिकी प्राप्तिसेभी वंचित रहा और योगसिद्ध न होनेसे मोक्षभी न मिली, वह मनुष्य दोनों ओरसे भ्रष्ट और अप्रतिष्ठित होकर क्या उस मेघके समान नष्ट नहीं होता है जो एक मेघसे निकल कर दूसरे में मिलनेसे बीचहीमें नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥

**एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्य शेषतः ॥
त्वदन्यस्संशयस्यास्य छेत्तान ह्युपपद्यते ॥**

दोहा—मेरेयासंदेहको, करौ दूर जगदीश ॥

या कहिवेकोतुमउचित, नहींशेषअजईश ॥ ३९ ॥

हे कृष्ण ! मेरे इस संशयको पूर्ण रीतिसे दूर करनेके योग्य आपही हैं क्योंकि इस संशयको दूर करनेवाला आपके सिवाय कोई नहीं है

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

**पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ॥
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति**

दोहा—अर्जुनदोऊलोकमें, ताको होई न नाश ॥

भलेकर्मजेकरतहैं, तिनकोनहिअघवास ॥ ४० ॥

अर्जुनकी बात सुन श्रीकृष्ण बोले—कि हे अर्जुन ! उस मनुष्यका इस लोकमें वा परलोकमें कहीं भी नाश नहीं होता है क्योंकि कोई भी शुभकर्म करनेवाला दुर्गति नहीं पाता है ॥ ४० ॥

प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुषित्वां शाश्वतीः समाः
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते

दोहा-पुण्यवंतकेलोकलहि, रहितबहुत दिनजाय
योगभ्रष्टधनवंतशुचि, तिनघरजनमतुआय ॥

जो मनुष्य योगभ्रष्ट होकर उसीदशमें मरजाते हैं वे पुण्यात्मा
लोगोंके लोकोंमें जाकर बहुत दिन तक वास करते हैं और फिर
फिर पवित्र लक्ष्मीवान् पुरुषोंके घर जन्म लेकर अनेक सुख भोगते हैं
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ॥

एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

दोहा-बुद्धिवंतयोगीकुलनि, आनिलेतअवतार ॥

जन्मलहतऐसेघरनि, दुर्लभहैनिरधार ॥ ४२ ॥

अथवा वे योगभ्रष्ट फिर बुद्धिमान योगियोंहीके घर जन्म लेते हैं,
जो ऐसा जन्म है, वह इस लोकमें दुर्लभ है ॥ ४२ ॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम् ॥

यत ते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ४३ ॥

दोहा-तिनहूपहिलीदेहको, लहतबुद्धिसंयोग ॥

यतनकरतहैसिद्धिको, बहुविधिसाधनयोग ४३
हे अर्जुन । इस संसारमें जन्म लेकर फिर वह पूर्व जन्मके बुद्धि
संयोगको पाता है और उस बुद्धिसंयोगद्वारा योग सिद्धिके लिये
फिर यत्न करता है ॥ ४३ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव हिंयते ह्यवशोऽपि सः ॥

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥

दोहा—सो तो अपनो वशनहीं, है पहिलो अभ्यास ॥

ताते उपजै योगको, ब्रह्मसिंधुमें वास ॥ ४४ ॥

अवश होने पर भी अर्थात् सांसारिक विषयवासना काम क्रोधाद्विमें लिप्त होने पर भी वह उस पूर्वजन्मके अभ्यास के कारण योग-सांसिद्धिमें निरत हो जाता है और योगस्वरूपके जाननेकी इच्छा करनेवाला भी केवल योगकोही नहीं पाता है किन्तु वेदोक्त कर्म फलसे अधिक फल पाकर मुक्त होजाता है ॥ ४४ ॥

प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्ध किल्बिषः

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परांगतिम्

दोहा—योगी जो जतन हिंकरे, डारै सब अधधोय ॥

बहुत जन्म सिद्धि दिल है, ताहि परम गति होय ॥

जो योगी इस प्रकार यत्न करता रहता है उसके सब पाप दूर होजाते हैं और अनेक जन्मोंमें योगकी सिद्धि पाकर श्रेष्ठ गति अर्थात् मोक्ष पाता है ॥ ४५ ॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि-
मतोऽधिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिको योगी

तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

दोहा-तपसिउते योगी अधिक, ज्ञानीहूते जानि॥

कर्मनिहूते है अधिक, अर्जुन योगंहि मानि॥४६॥

हे अर्जुन ! तपस्वियोंसे योगी अधिक होता है, ज्ञानियोंसे भी योगी अधिक है और जो वापी कृपादिके बनाने वाले कर्मनिष्ठ हैं उनसेभी योगी अधिक है. इससे हे अर्जुन ! तू योगी हो ॥ ४६ ॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्भक्तेनांतरात्मना ॥

श्रद्धावान् भजते यो मां समे युक्तमो मतः

दोहा-जो योगीराखैमनहिं, मोमेंनिश्चलभाय ॥

श्रद्धायुतमोकोभजै, सोसवतेंअधिकाय ॥४७॥

कर्मज्ञानमतयोगते, भगतिं सबनिसिरमौर ॥

तिनअर्जुनहौवशकियो, मोविनुछिननहिंऔर ॥

शुद्धचित्तसंन्यासते, ध्यानविनाकिहिभाय ॥

मुक्तिहोययातेकह्यो, ध्यानछठेअध्याय ॥ २ ॥

सोइध्याननिश्चैकह्यो, मनमेंआनंदराम ॥

जाहिनिरंतरकेकिये, होइहैआतमराम ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो श्रद्धापूर्वक सुझमें चित्त लगाय मेराही भजन स्मरण करता है वह संपूर्ण योगियोंमें श्रेष्ठ है यही मेरा मत है ॥४७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटी-

कायां अग्यासयोगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमपदकम् ॥

समीक्षा-इस अध्यायमें इस लोक और परलोक में उत्तम गति प्राप्तिके योगादि साधनों का वर्णन किया गया है। परंतु योग आदि साधन तभी प्राप्त हो सकेंगे जब शरीर स्वस्थ और बल, वीर्य करके युक्त होगा, शरीर का बलिष्ठ होना जाठराग्निके प्रबल रहने पर निर्भर है। जाठराग्नि प्रबल होना व्यायाम आदि पर निर्भर है। इसी लिये श्लो० १७ में युक्ताहार विहारके अभ्यासका उपदेश दिया गया है।

सारांश यह कि मनुष्य व्यायाम आदिका अभ्यास करके अपनी जाठराग्नि और बल, वीर्यको बढ़ाए जिससे वह दुष्ट प्राणियोंको दंड देने में समर्थ हो सके और भली प्रकार देश सेवा तथा जाति सेवा कर सके।

जो दुष्ट प्राणी दूसरोंको दुःख देने वाले होते हैं वह आततायी कहलाते हैं और आततायियों का वध करना शास्त्रों में पुण्य कार्य माना गया है। मनुष्य सदा सात्त्विक भोजन करता रहे आंतरिक और बाह्य शुद्धि में तत्पर रहे इससे बुद्धि और स्वभाव निर्मल रहेंगे और वह पाप कर्मों में न फँसने पावेगा।

शरीर और बख्शों को स्वच्छ रखना बाह्य शौच है। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, मान, मोहादिसे मनको शुद्ध रखना आंतरिक शौच कहलाता है।

जब मनुष्य जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी और व्यायामशील होकर अपने शारीरिक बलको बढ़ायेगा तो दुष्ट जीवोंसे सताए जाने वाले दीन प्राणियोंकी रक्षा कर सकेगा, जिससे दुष्ट और पामरों को दण्ड मिलकर संसारमें पाप नहीं फैलेगा।

अतः कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को चाहिये कि न्यायप्रिय और परोपकार प्रिय बने। प्राणीमात्र के साथ प्रेम रखे अर्थात् किसी भी उत्तम प्राणीकी मन वाणी और शरीर से हिंसा न करे

मनुष्य सदा निर्मान, निर्मोह, निर्लोभ, सरलस्वभाव, सत्यवादी होकर परस्त्री और परधन की इच्छा न रखते हुए यश और प्रशंसा की इच्छा छोड़कर परोपकार देश मेवा और जाति सेवामें तत्पर रहें। उपरोक्त गुणों वाले मनुष्य सदा कल्याणभागी रहते हैं यही श्रीकृष्ण महाराज का आशय इस अध्यायमें है।

जो लोग यह कहते हैं कि प्रत्येक कामके लिये ठीक २ समय देनेकी शिक्षा हमको यूरोपियन लोगोंसे सीखनी चाहिये, उनकी यह भूल है। यदि वह गीताको पढ़ें तो देखेंगे कि गीता अध्याय ६ के श्लोक १७ में कई सहस्र वर्ष पूर्व ही हमको श्रीकृष्ण महाराज यह शिक्षा दे चुके हैं। कि ठीकसमय पर जागनेवाला, ठीक समय पर प्रत्येक कामको करनेवाला मनुष्य नीरोग, बलिष्ठ और प्रसन्न चित्त रहता हुआ पूर्ण सौ वर्ष की आयु पासक्ता है और उसके सब काम भी ठीक होते हैं। यदि हममेंसे प्रत्येक मनुष्य अपना निम्नलिखित स्वभाव डाले कि नित्य प्रातः काल ब्राह्ममुहूर्त में अर्थात् सूर्योदय से अढ़ाई तीन घड़ी पूर्व उठकर शौचादि से निवृत्त हो, प्रातःकाल की सन्ध्योपासन करके एक घंटा बाह्य की शुद्ध वायुका सेवन करे। पुनः घरपर आ थोड़ा बहुत पठन पाठन कर। दश बजे ठीक समय पर भोजन करके, ग्यारह बजे या बारह बजे, अपने व्यापारादि कामों में लगजाए और ठीक चार या पांच बजे इस कार्यसे निवृत्त होकर, शुद्ध वायु को सेवन करने का नगरसे दूर चला जावे। यदि होसके तो अपनी एक मंडली बनाकर वहीं पर खेलकूद में प्रवृत्त होकर व्यायाम भी कर लिया करे। सात बजे तक पुनः घर पर लौट आए और सन्ध्योपासन करके पुनः आठ बजे, सायंकालके भोजन से निवृत्त होकर आधीघंटा या एक घंटा सुखपूर्वक

बैठा या लेटा हुआ अपने इष्ट मित्रों से वार्तालाप करता रहे। पुनः नौ बजे से दस बजे तक कुछ लिखना पढ़ना या अन्य काम करके ठीक दस बजे रात्रिको शयन करे।

गीताके उपरोक्त श्लोकानुसार यदि आयुका भाग व्यतीत किया जाए, तो सब मनुष्य सुखी रह सकते हैं और सब काम भी ठीक हो सकते हैं। विपरीत इसके जिनका न खानेका समय नियत है न पीनेका, रात दिन बीस इक्कीस घंटे चलने वाली मशीन बने हुए काम में लगे रहते हैं तो परिणाम यह होता है कि मंदगति, क्षय, धातुक्षीण, प्रमेह आदि रोग होकर तीस चालीस वर्षकी अवस्थामें ही उनको वृद्धावस्था या मौत आघेरती है और वह सब काम यहीं पड़े रहते हैं अतः हमको चाहिये कि उपरोक्त गीता के श्लोकानुसार युक्ताहार विहार करते हुए बल, बुद्धि और धन की वृद्धि करके आनन्द का जीवन व्यतीत करें, जिससे भारतवर्ष भी उन्नत देशोंकी गणना में आये।

[पृष्ठ १२८ से आगे]

[१२] देश के लोगों को चाहिये कि, राजाओं से प्रार्थना करें कि, अपने-२ राज्योंमें शिक्षा को अनिवार्य और बिना शुल्क [फ्री] की करें, और आज कल के नवीन यंत्रों और कलाओंको सिखाने वाले शिल्पविद्यालय [टेक्नीकल इन्स्टीट्यूट्स] और आवश्यकीय वस्तु बनानेके कारखाने (शिल्पकार्यालय) खोलें, जैसा कि, बड़ौदा और मैसूर महाराज ने खोले हैं। राजाओं को चाहिये कि, प्रजा से लिया हुआ द्रव्य प्रजा के हितकारी कामों में लगाएं. न कि अपने भोग विलासके कामों में, कि प्राचीन नीति, और धर्मशास्त्र के ग्रंथोंमें लिखा है. यथा रघुवंश काव्ये प्रथम “ प्रजानामेव भूत्यर्थं ताम्यो बलिम्प्रवर्हीत ”:-

अर्थात्-प्रजाओं के हितके निमित्त उन प्रजाओं से कर लिया जाता था.

[१३] प्रत्येक विद्याभ्यासक को अर्थात् उसपुरुषको जो विद्या पढ़ चुके यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि न्यूनसे न्यून मैं दशमनुष्यों को अपने जैसे विद्वान बनाऊंगा। और वे दश भी यही प्रतिज्ञा करते जायें, तो देखेंगे कि शीघ्र ही भारतवर्ष में विद्यादेवी अपना राज्य करने लगेगी। प्राचीन कालमें विद्या इसी प्रकार फैलती थी और तभी विद्याका आदर भी होता था; सायही प्राचीन काल में यह भी बात थी, कि विद्या और गुण छिपाकर नहीं रखते थे, जो सीखनेकी इच्छा करता था उसीका प्रेमपूर्वक विद्या सिखा देते थे। भारतवर्ष में एक सहस्रवर्षसे ऐसा अंधकार-मय समय आगया कि लोगोंने विद्याओंका छिपाना प्रारंभ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि भारतवर्षसे घर्षदविद्या, वैष्णवशास्त्र और रसायनशास्त्र लुप्तप्राय होगये और योगविद्याका तो अभाव सा ही होगया, इस लिये अब चाहिये कि विद्याका प्रचार अच्छी भांति करें और विद्याको छिपाकर रखनेकी प्रथाका सर्वथा नाश ही कर दें।

[१४] ग्राममें दैनिक समाचारपत्रों का प्रचार होना चाहिये और देशी राज्योंमें राज्य के व्ययसे प्राथमिक शिक्षा की पाठशालाएं खुलनी चाहियें, जैसा कि, बडौदा, मैसूर राज्य में सोली जा रही हैं।

[१५] हमलोगोंमें विज्ञान, कृषि, वाणिज्य, शिल्प आदि विषयोंके ग्रंथ बहुत न्यून हैं अथवा नहींही हैं। आजकल यूरोप, अमेरिकाके लोगोंने इन विषयोंमें बहुत निपुणता प्राप्त की है और अपनी भाषाके साहित्यको इन विषयोंके ग्रंथोंसे बहुत बढ़ा लिया है; इसलिये हम लोगोंको चाहिये कि, अपने किसी एक प्रधान नगरमें "हिन्दी (देवनागरी) साहित्य वर्द्धक समिति" खोलें जिसमें एकलास या इससे अधिक मूलधन हो और जिसके द्वारा विद्वानोंसे विज्ञानादि विषयोंपर ग्रंथ लिखवायें या दूसरी भाषाओंसे हमारी हिन्दी (देवनागरी) भाषामें अनुवाद करवायें, क्योंकि इन ग्रंथोंकी बड़ी आवश्यकता है। इस समय उपन्यासोंद्वारा साहित्यको बढ़ानेका समय नहीं रहा।

[१६] उत्तम हिन्दी साहित्यकी सस्ती पुस्तकोंका प्रचार किया जाय गीताआदि धर्मपुस्तकों तो लागतसे न्यून मूल्यपर ही सर्व साधारण लोगोंको दीजाय और निर्धन मनुष्योंमें बिना मूल्य ही बटवाई जायें।

धर्मशास्त्रोंमें विद्यादान, पुस्तकदान सबसे श्रेष्ठदान माना है। हमारे धर्म ग्रंथोंसे जब हिन्दू [आर्य] जातिके सब स्त्री पुरुष पूरे जानकार होजायेंगे तो वह विधर्मियों लोगों तथा पाखण्डियोंके फंदे में नहीं आसकेंगे।

[१७] आजकल बहुत प्रांतोंमें यह देखनेमें आ रहा है, कि लोग अपनी मातृभाषा से प्रेम न रखकर विदेशी भाषा अंग्रेजी आदिमें ही बातचीत तथा पत्रव्यवहार करना और अपनी देशी मिती तथा संवत्को न लिख कर विदेशी मिती तथा

संवत्को लिखनाही अपना मुख्यकर्तव्य समझते हैं, और ऐसा करनेमेंही अपनेको विद्वान समझते हैं। इससे बड़ी हानि यह होती है कि, हम अपने देशी साहित्यको न बढ़ाकर विदेशी साहित्य की उन्नतिमें ही सहायक होते हैं। शनैः२ इसका फल यह होगा कि हम विदेशी वस्तुप्रचार और विदेशी चालढालको धारण करके अपने देशप्रेमको भी खो बैठेंगे। हमारा इस लेखसे यह प्रयोजन नहीं है, कि हम विदेशी भाषाका लिखना बोलनाही न सीखें; परन्तु प्रयोजन यह है, कि विदेशीभाषा विदेशियोंसे बातचीत या पत्रव्यवहार करनेको, तथा उस भाषामें इंजिनीयरी, साइंस (विज्ञान) आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, व्यापार, भूगोल, सेती, खनिजविज्ञान आदि विषयोंपर जो उत्तम २ ग्रंथ बने हुये हैं, उनसे स्वयं लाभ उठाने और उनके अनुवादद्वारा हमारे हिंदी (आर्थ) भाषा के साहित्यको उन्नत करनेके लिये सीखें और उन बातोंको व्याख्यानद्वारा हमारी जन समुदायमें फैलायें। केवल भाषाका ज्ञान कर लेनेसे ही अपनेको कृतकृत्य नहीं मान लेना चाहिये।

[१८] हम सब हिन्दुओं [आर्यों] को चाहिये कि अपनी शुद्ध और पवित्र भाषा संस्कृत का अपने में पुनःप्रचार करके इसकी रक्षा करें। यूरोप के विद्वानों ने भी इस भाषा को संसारकी सबभाषाओंमें सबसे प्राचीन और सबभाषाओंकी 'जननी' मान लिया है। इसके वर्णमालाकी उत्तमता सबको स्वीकृत है, किसी भाषा में कोई वर्ण नहीं और किसीमें कोई। इस में सम्पूर्ण वर्ण हैं, यथा—अंग्रेजी भाषा में—आ, ऐ, औ, अं, अः, ख, घ, च, छ; झ, ञ, त, थ, द, ड, भ, ण, प, नहीं हैं। इसी प्रकार अरबी भाषामें ख, घ, छ, झ, थ, ध, भ आदि अक्षर नहीं हैं। ऐसी ही दशा फारसी आदि अन्य भाषाओंकी समझो। कोई २०००० उन भाषाओंमें व्यर्थ और अधिक भी हैं, यथा अंग्रेजीमें सी, क्यू आदि। और सब से बड़ा दूषण उन भाषाओंमें यह है, कि उनमें लिखा तो जाय कुछ और बोला जाय कुछ, परन्तु संस्कृत में ऐसा लिखा जाता है वैसे ही बोला भी जाता है।

उदाहरणार्थ देखिये, अंग्रेजीमें लिखा तो जाता है 'कनाइफ' और बोला जाता है 'नाइफ' [चाकू]; लिखा तो जाता है 'लिफ्टेनैट' और बोला जाता है 'लेफ्टेनैट' [किसी बड़े अफसर के नीचे काम करने वाला अफसर]; ऐसेही अनेक उदाहरण देखके हैं जिनमें लिखा तो जाय कुछ और बोला जाय कुछ। इससे यह सिद्ध हुआ कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने अपनी भाषामें वह योग्यता प्राप्त कर ली थी जिसको यूरोप, अमेरिका के विद्वान वैयाकरण भी अब तक प्राप्त नहीं की हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम लोग संस्कृत भाषा के प्रेमी होकर इसको सीखें। प्राचीन कालमें भारतवर्ष के लोगोंकी एकही भाषा थी अब भी जब तक हम लोगों की एक भाषा न होगी तब तक हमारी उन्नति होना कठिन है। अधिक शोक इस बात का है कि यूरोप अमेरिका के लोग तो हमारी संस्कृत भाषा को प्रेम से पढ़ते हैं और हम इस से दूर भागते हैं। ऐसा होना हमारे लिये लज्जाकी बात है।

(अपूर्ण)

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंजन्मदाश्रयः
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु
दोहा-मेरोईकरिआसरो, मोहीमेंचितराखि ॥

मोकोजानैसत्यवह, योसमझाऊंभाखि ॥ १ ॥

हे पृथानन्दन ! अपना चित्त मुझमें लगाकर और मेरा ही
आश्रय लेकर जिस प्रकारसे संशय रहित हो मुझको पूर्ण रीतिसे
जानेंगे सो मैं कहता हूं ॥ १ ॥

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

दोहा-ज्ञान रूप विज्ञानहूं, तोसों कहौंबखानि ॥

जाकेजानेजानिबौ, कहुनरहतहैजानि ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! मैं अब तुमको संपूर्ण ज्ञान विज्ञान सुनाता हूं इसे
जानकर फिर कुछ जानने योग्य बात न रहेगी ॥ २ ॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

दोहा-जतनकरतहै सिद्धिको, एकहजारनमाहिं ॥

तिनहूंमेंकोउलहै, बहुतलखतहैनाहिं ॥ ३ ॥

सहस्रों मनुष्योंमें कोई ही ऐसा होता है जो आत्मज्ञान जाननेके लिये यत्न करता है और इन यत्न करनेवालोंमेंभी कोईही मुझको ठीक रीतिसे जानता है ॥ ३ ॥

**भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४**

दोहा-भूमिनौरपावकपवन, अंबरमनबुधिमान् ॥

अहंकारहैआठवां, मायाभेदनिदान ॥ ४ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ प्रकार की मेरी छुदी छुदी प्रकृति है ॥ ४ ॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ॥

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

दोहा-मायामेरीएकयह, जिनजीत्योसंसार ॥

सांचीमनमेंजानिले, जीवहुतैनिरधार ॥ ५ ॥

यह जो ऊपर आठ प्रकारकी प्रकृति कही गई है यह अपरा प्रकृति है और इससे अन्य जो जीवभूत प्रकृति है, वह परा प्रकृति है, इस बातको अच्छी रीतिसे ध्यानमें रख और हे महाबाहो ! इसी परा प्रकृतिसे यह जगत् धारण किया गया है ॥ ५ ॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ॥

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

दोहा-मायातेउतपन्नहै, सबैजीवइहिदाय ॥

हौंउपजाऊंजगतसब, नाशकरौंचितचाय ॥६॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण प्राणिमात्र मेरी इन दोनों प्रकृतियोंसे उत्पन्न होते हैं इस बातको अच्छे प्रकारसे जानलो और मैंही इस संपूर्ण जगत्का उत्पन्न कर्त्ता और नाश कर्त्ता हूं ॥ ६ ॥

मत्तः परतरं नान्यात्किंचिदस्ति धनंजय

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

दोहा-अर्जुनमोतेजोपरे, और बातजनिजानि ॥

पोयेमनिया सूत्रमें, त्योंमोमेजगमानि ॥ ७ ॥

हे धनंजय ! जैसे सूत्रमें मणि पोई जाती है इस तरह वह संसार मुझमें पोयाहुवा है इसी लिये मुझसे परे कुछभी नहीं है ॥ ७ ॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

दोहा-चंद्रसुरजकीजोतिहूं, जलरसप्रणवहुवेद ॥

गगनशब्दबलनरनको, सबहीमेरोभेद ॥ ८ ॥

हे कौन्तेय ! जलोंमें मैं रस हूं सूर्य और चन्द्रमामें प्रभा हूं सब वेदोंमें प्रणव हूं आकाशमें शब्द हूं और मनुष्योंमें पुरुषार्थ हूं ॥ ८ ॥

पुण्योगंधः पृथिव्यांच तेजश्चास्मि विभावसौ

जीवनंसवभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

दोहा-गंधजुहोंहोंभूमिमें, होंपावकमेंतेजु ॥

जीवनहूँकोजीवहों, तपन नितप लखिलेजु ॥९॥

हे अर्जुन ! पृथ्वीमें जो पवित्र गंध है, वह मैंही हूँ अग्निमें मैं तेजरूप हूँ; सम्पूर्ण प्राणियोंमें जीवनरूप मैं हूँ, और तपस्वियोंमें तप मेराही रूप है ॥ ९ ॥

बीजं मांसर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्
बुद्धिबुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥

दोहा-सबजीवनकोबीजहों, मोकौँजानिजुलेहु ॥

बुद्धिवंतमेंबुद्धिहों, सबतेजनिकोगेहु ॥ १० ॥

हे पार्थ ! मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका सनातन बीज हूँ अर्थात् सृष्टीको सबका उत्पत्तिकारण समझ मैं बुद्धिवानोंमें बुद्धिरूप और तेजस्वि-
योंमें तेज हूँ ॥ १० ॥

बलंबलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ॥

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥

दोहा-बलबलवंतनकोजुहूँ, कामरागजितनाहिं ॥

कारुपहीहोंजुहूँ, धर्मसबैमोहिंमाहिं ॥११॥

हे भरतर्षभ ! बलवान् पुरुषोंमें जो काम और रागरहित बलहै सो मैं ही हूँ और धर्म अविरुद्ध जो काम है सो भी पुरुषोंमें मैंही हूँ अर्थात् अपनी स्त्रीमें पुत्र उत्पन्न करनेमात्र जो भोग किया जाता है वह मैंही ॥ ११ ॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये ॥
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि

दोहा-राजसतामससत्त्वके, जेहैंसिगरेभाय ॥

एसबमोंमेंबसतहैं, मोहिंनैनसौंचाय ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! जो शमदमादि सात्त्विक भाव हैं, हर्ष गर्वादि राजस भाव हैं और शोकमोहादि तामस भाव हैं. वे सब मुझहीसे उत्पन्नहुए जान, तथापि मैं उनके वशीभूत नहीं हूँ वेही मेरे वशीभूत हैं ॥ १२ ॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

दोहा-तीन्योगुनकेभावजे, तिनमोह्योसंसार ॥

मोकोकोऊनहिलखै, इनतेपैलीपार ॥ १३ ॥

इन ऊपर कहेहुए त्रिगुणमय भावोंही ने इस संपूर्ण संसारको मोहितकर रक्खा है इससे मुझे कोई नहीं जानता है, मैं इन भावोंसे परे हूँ और इनका नियन्ता हूँ और अव्यय आर्थात् निर्विकार हूँ. इससे मुझे कोई नहीं जानता है ॥ १३ ॥

ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥

मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥

दोहा-मेरीमायागुनमयी, दुस्तरतराँनजाय ॥

जोकोऊअविमोसरनि, सोजुतरैसंसार ॥ १४ ॥

हे अर्छन ! यह मेरी माया त्रिगुणयुक्ता होनेके कारण दैवी अथात् मानवीय पुरुषार्थसे परे है और बड़ी दुस्तर है इससे जो, कोई केवल मेरीही शरण आते हैं वे इस मायासे पार लगते हैं ॥ १४ ॥

न मांदुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते न राधमाः ॥

माययाऽपहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः

दोहा-पापी मूरख जे जगत, तेन हिं पावत मोहि ॥

ज्ञान जु माया करि हरयो, असुर गर्व में पोहि १५ ॥

हे अर्छन ! मेरी मायाने जिनका ज्ञान हर लिया है और उस ज्ञानके दूर हो जानेसे असुरतुल्य बन गये हैं ऐसे पापी, मूढ, नराधम सुझे नहीं भजते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

दोहा-पुन्यवंत जे चार विधि, मोहि भजत चित ऐन ॥

ज्ञानी योगी कामयुत, विज्ञानी सुनिवैन ॥ १६ ॥

हे अर्छन ! हे भरतर्षभ ! आर्तुर (रोग पीडित) जिज्ञासु (आत्मज्ञानके जाननेकी इच्छा करनेवाला) अर्थार्थी (ऐहिक वा पारलौकिक भोग भोगनेवाला) और ज्ञानी ये चार प्रकारके मनुष्य सुझे भजते हैं. जब इनके पूर्वजन्मके पुण्यका उदय होता है ॥ १६ ॥

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहंस च मम प्रियः

दोहा-ज्ञानी लोभ कि हि करै, सो सब ते अधिकाय ॥

ज्ञानी को पछंभ जु हो, ज्ञानी मोह सुहाय ॥ १७ ॥

इन चार प्रकारके पुरुषोंमें ज्ञानी विशेष है, क्योंकि वह सदा सु-
झमें युक्त रहता है और केवल सुझमें ही भक्ति रखता है, इससे
ज्ञानी को मैं बहुत प्रिय हूँ और ज्ञानी सुझको प्यारा है ॥ १७ ॥

उद्धाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ॥

आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥

दोहा-मेरे मत एसब बडे, ज्ञानी मो को जानि ॥

उत्तम गति पाइ जुतिन, प्रलय ले तु नहिं मानि १८

ये चारों प्रकारके प्राणी ही उत्तम हैं, परन्तु ज्ञानी मेरे ही समान है
यह मेरा मत है, क्योंकि वह सदैव अपना चित्त सुझ हीमें लगाये
रहता है और सर्वोत्तम गतिरूप मेरे ही आश्रित रहता है ॥ १८ ॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

दोहा-बहु जन्मनि मो को लही, ज्ञान वं तरे मित्त ॥

वासुदेव सब में लखे, सो दुर्लभ है निश्चित ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! बहुत जन्मतक ज्ञानको संचित करता हुआ जो इस
संपूर्ण जगत्को वासुदेवमय जानकर मेरा स्मरण करता रहता है वह
महात्मा बहुत दुर्लभ है ॥ १९ ॥

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥

तंतं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया

दोहा--नष्टज्ञानवहुं कामना, यजै अन्यदेवान ॥

तिहितिहिनियमरुवासना, स्वस्वप्रकृतिउन्मान
हे अर्चन ! अपनी अपनी प्रकृतिके अनुसार मनुष्य धन जन
श्रीपुत्रादिके लोभके वशीभूत होकर उन उन वासनाओंसे अज्ञानमें
डूब उन फलोंकी चाहनासे अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं २०

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चिषु मिच्छति
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधान्यहम्

दोहा--श्रद्धायुतजपूजहीं, जो देवनिचितलाय ॥

ताकोंतेहीमांझहीं, श्रद्धादेउंबढाय ॥ २१ ॥

हे अर्चन ! जो जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक जिस जिस देवताके अर्चन
पूजनकी इच्छा करता है. उन पुरुषोंकी उस श्रद्धाको मैं उनमें दृढ-
कर देता हूँ. अर्थात् उनका मन अपनी ओरसे हटाकर उन देवता-
ओंमें मैं लगा देता हूँ. जिससे वे मुझे भूल जाते हैं ॥ २१ ॥

स तथा श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥

लभते च ततः कामान्मयव विहितान्हितान्

दोहा--सोवाहीश्रद्धाहितें, पूजतवाहीदेव ॥

देवजुहोंहीकामना, वह जानतनहिमेव ॥ २२ ॥

तब वह मनुष्य उनही देवताओंमें श्रद्धा करके उनका आराधन
करता है और उनही देवताओंसे अपने अपने मनवांछित फलोंको
पा लेता है. (जब मैं मनुष्यको मुझसे विमुख और अन्य देवताओंमें
आसक्त देखता हूँ तब) मैं भी उनको वैसीही प्रेरणा करता हूँ ॥ २२ ॥

अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥

देवान्देवयजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि

दोहा-फलथोरोपावतुजुवै, विनाज्ञानकेमृढ ॥

देवभक्तदेवनमिलै, मेरोमोकोगृढ ॥ २३ ॥

परन्तु उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् होता है अर्थात् जो मुझे छोड़कर अन्य देवोंकी उपासना करते हैं उनको फल मिलता है परन्तु वे फल शीघ्रही नष्ट होजाते हैं, जो और देवताओंका पूजन करते हैं वे और देवताओंको प्राप्त होते हैं और जो मेरा यजन करते हैं वे मुझसे मिलते हैं ॥ २३ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

दोहा-जाकेथोरीबुद्धिहै, जानतप्रगटनमोहि ॥

अविनाशीउत्तमजुहों, सवतेन्यारोजोहि २४

हे अर्जुन ! मैं विनाशरहित, सर्वोत्तम और परस्वरूपहूँ, जो बुद्धिहीन मुझको ऐसा नहीं जानते हैं और मुझे मत्स्यकूर्मादिरूप मानकर मेरे स्वरूपको नहीं जानते हैं और अन्य देवताओंकी उपासनामें लगजाते हैं, इसीसे उनको नाशवान् फल मिलता है ॥ २४ ॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः

मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्

दोहा-दृष्योजुमायायोगहों, काहूकोनप्रकास ॥

मूरखमोंहिंनजानहीं, अजरअमरसुखवास२५

मैं योगमायासे आवृत हूँ, इसलिये मैं सबके सन्मुख प्रकाशित नहीं होता हूँ, केवल अपने भक्तोंहीके सन्मुख प्रत्यक्ष होता हूँ और मेरी योगमायासे आवृतहुए मूढ लोग मुझको अजन्मा और अविनाशी नहीं जानते हैं ॥ २५ ॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेदन कश्चन

दोहा-जे बीते जानततिन्हैं, वर्तमानत्योंजोय ॥

होनहारसबकोलखों, मोहिलखैनहिंकोय ॥२६

हे अर्जुन ! मैं भूत, वर्तमान और भविष्यत् तीनों कालमें हुए चराचर प्राणियोंको जानता हूँ और मुझको कोई नहीं जानता है क्योंकि वे मेरी मायासे आवृत हैं ॥ २६ ॥

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥

सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परन्तप ॥

दोहा-संगद्वेषअज्ञानते, सबैजुमोहितहोत ॥

मानिलेतहैआपको, हमसुखदुखनिउदोत ॥

हे अर्जुन ! हे परंतप ! इस संसारमें आकर संपूर्ण प्राणी सुग्ध होजाते हैं, क्योंकि इच्छा और द्वेषसे उत्पन्न जो सुख दुख है, उनमें पँस जाते हैं और इसीसे मुझे झूल जाते हैं ॥ २७ ॥

येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

दोहा-पुण्यकियेजिनजगतमें, दूरिकियेजिनपाप
तेईछूटतमोहसों, मोकोपावतआप ॥ २८ ॥

जिन पुण्यात्माओंके पाप दूर होगये हैं, वे इच्छा द्वेषसे उत्पन्न
सुख दुःखादिसे छूट अपने चित्तको दृढकर मेरा भजन करते हैं २८

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ॥

ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्

दोहा-जरामरणकीहानिको, जेकोउकरतउपाय ॥

जानततेअध्यातमहिं, ब्रह्मकर्मकेमाय ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! जो मेरा आश्रय लेकर जरामरणसे छूटनेका उपाय
करते हैं वे उस ब्रह्म, संपूर्ण अध्यात्म और संपूर्ण कर्मोंको जानते हैं ॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः

प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥

दोहा-अधिदैविकअधिभूतसों, अधियज्ञौमुहिमित्ता ॥

मरनसमैभूलतनहीं, योगीमोकोहित ॥ ३० ॥

भजिवेलायकरूपनिज, कह्यो सातवेंऽध्याय ॥

विनायतनज्ञानहिलहै, कृष्णभक्तिअधिकाय ॥ १ ॥

शरनैआनंदरामहै, यज्ञयोगविज्ञान ॥

प्रभुमेरीविनतीयहै, भक्तिदेहुभगवान ॥ २ ॥

जो मुझे अधिभूत, अधिदैव और अधियज्ञसहित जानते हैं, वे युक्तचित्तवाले मरनेके समयभी मुझको ऐसाही जानते हैं अर्थात् मरणकालकी घबड़ाहटमेंभी मुझे नहीं भूलते हैं ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-
र्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां
ज्ञानविज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

समीक्षा—प्रथमके ६ अध्यायोंमें कर्मकांड का वर्णन हुआ है. अब सातवें अध्यायसे बारहवें अध्याय पर्यंत भक्तिकांड का वर्णन किया जायगा. जब मनुष्य यह विचारता है कि, परमात्माने इस पृथ्वी जैसे कितनेही अनंत लोक अपनी सामर्थ्यसे रच रखे हैं, तो उसको परमात्माकी अद्भुत सर्वशक्तिमत्ता पर बड़ाही आश्चर्य होता है। जो हमारे शास्त्रोंमें प्रायः चौदह श्रवणोंकाही वर्णन आता है, उसका कारण यह है कि, पूर्वकालमें हमारे ऋषिसुनियोंका सम्बन्ध इन्हीं लोकों से अधिक था। जब इस प्रकार मनुष्य ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता को देखता है, तो उसके मनमें ईश्वर की भक्ति उत्पन्न होती है, संसारमें यह नियम है कि, किसीमें जो प्रेम या भक्ति उत्पन्न होती है, वह उसके गुणों परही ध्यान देनेका फल है। जिनमें हम कोई गुण नहीं देखते हैं, उनमें हमारा प्रेम या भक्ति नहीं होती है, एक प्रकारकी उदासीनता सी रहती है।

इस प्रकार लोक लोकांतरों पर ध्यान देते हुए मनुष्य के हृदयमें यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि, परमात्मा ने किस प्रकार इस सृष्टिको रचा है। सृष्टिकी रचना में विज्ञानके नियमों का पालन किया गया है या नहीं इसी प्रश्नका उत्तर देनेको इस सातवें अ-

ध्यायका आरम्भ किया गया है और इसमें यह दिखाया गया है कि, इस सृष्टिकी रचनामें परमात्माने विज्ञान के नियमोंको स्थिर रखता है। अर्थात् प्रकृति के सत्, रज, तम रूप, तीन गुण वाले परमाणुओंसे इस सृष्टिकी रचा है। ज्यों २ मनुष्य अधिक खोज करेगा त्यों २ उसको पता लगता जायगा कि, सृष्टिकी कोई भी रचना बिना नियम के नहीं हुई है। जितना २ अधिक ज्ञान मनुष्यका बढ़ता जायगा, उतना २ ही अधिक वह परमात्माका भक्त होता जायगा। साथ ही इस अध्यायमें यह भी दिखाया गया है कि, जो मनुष्य केवल प्रकृतिके विचित्र पदार्थों में मोहित हो उन्हींके भोग विलासमें पँसकर देशसेवा और जातिसेवा के कामों से दूर भागते हैं; वह परमात्माकी भक्ति से वंचित रहकर सदाके स्थायी आनन्द अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं होसके हैं। (देखो अ० ७ श्लो० १५)

[पृष्ठ १५१ से आगे]

[१९] केवल भारतवर्ष सम्बन्धी समाचारों पर इतने ग्रंथ संस्कृत और अंग्रेजीमें लिखे हुए हैं कि यदि लगातार कई वर्ष पर्यन्त चार पांच विद्वान हिन्दी (आर्य) भाषामें इनका अनुवाद करें तब पूरा अनुवाद होसका है। इस लिये सब ग्रंथोंके एकवार अनुवादित होजाने से पूर्व, एक मासिकपत्र "भारतवर्षीय समाचारसंग्रह" नामसे निकाला जाय जिसमें उन ग्रंथोंके अनुवाद पुरतकाकार में प्रकाशित होते रहें और लोगोंको एवबार मोल लेनेका बोझ प्रतीत न हो।

इस समाचारपत्र में निम्नलिखित विषयविभाग हों,

भारतवर्षीय इतिहासमाला और भूगोलमाला, उत्तम २ आर्य स्त्रीपुरुषोंके जीवनचरित्र, भारतवर्षीय प्राचीन विषयाये यथा आयुर्वेद, घनुर्वेद, ज्योतिषशास्त्र आदि, भारतवर्षीय शिल्प, भारतवर्षीय राज्यप्रणाली अर्थात् आर्य प्राचीन राज्य-पद्धति, यावनी अर्थात् मुसलमानोंके समय की राज्यप्रणाली, अंग्रेजी राज्य प्रणाली जो मुसलमानोंके पीछेसे लेकर इससमय तककी हो।

नूतन समाचारसंग्रह जो शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, व्यापारिक और राज्यकीय विषयोंका हो।

इस प्रकार “भारतवर्षीय समाचार संग्रह” नामका मासिक या साप्ताहिक पत्र निकलनेसे लोगोंको प्राचीन और आधुनिक समयके भारतवर्षीय समाचार मिलते रहेंगे; और प्रत्येक विभागके यह समाचार पुस्तकाकार रूपमें निकलें, जिससे कि एक २ पुस्तक बनती जावे। पुस्तकका आकार और पृष्ठसंख्या पाठको या संचालकोंकी रुचि पर निर्भर रहे।

[२०] हमारी ज्योतिषविद्याका पुनरुद्धार होना चाहिये । भास्कराचार्यके पश्चात् हमारे प्रधान २ स्थानोंके ध्रुवोंका अभी तक संशोधन नहीं हुआ है । वायुशास्त्र और जहाजों के चलाने की विद्यामें ज्योतिषशास्त्रही परम सहायक हो सका है, अतः इस ओर हम को पूरा २ ध्यान देना चाहिये ।

[२१] आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये स्थान २ पर आयुर्वेदिक पाठशालायें खोली जायें । सुश्रुतादि सिद्धांतग्रंथों को पढाकर पारद, हरताल, त्रिविंश्वर आदि घातुओंकी भस्म करनेकी विधि बताई जाय। आयुर्वेदकी रीतिसे मारी हुई घातुओंकी भस्म द्वारा असाध्य रोगोंका दूर होना देखनेमें आया है। जिसको देखकर यूरोपियन डाक्टर और यूनानी हकीम [वैद्य] चकित हुए हैं । शोक इस बातका है कि आयुर्वेदीय औषधियोंमें असाधारण गुण होने पर भी आयुर्वेदीय पाठशालाओंके अभावसे यह हमारी विद्या नष्टप्रायः हो रही है, उच्चम २ विद्वान वैद्योंका मिलना कठिन होता जाता है। “आयुर्वेदीय सम्मेलन” सभाओंका खोलना और उनको सहायता देकर स्थान २ पर आयुर्वेदीय पाठशालाओं और औषधालयोंका खुलवाना हमारा परमकर्तव्य होना चाहिये, जिससे कि उच्चम और निपुण वैद्य उत्पन्न होते रहें ।

[२२] हमारे पूजनीय ब्राह्मणों और संन्यासी महात्माओंका यह मुख्य कर्तव्य होना चाहिये, कि भारत वर्षका मुख उज्ज्वल करनेवाली योगविद्याको पुनर्जीवित करें। यही विद्या है जिसके कारण हमारा अध्यात्मशास्त्र इतनी उच्च काटिको पहुँच गया था । अब हमको भय है कि कहीं अमेरिका, जर्मनी आदि देशोंके रहने वाले हमारेही ग्रंथोंको जानकर इस विद्यामें हमको शिक्षा देकर हमारे गुरू न कहलाने लें ।

[२३] भिन्न २ प्रकार के स्थानोंमें साधु पाठशालाएं खोली जानी चाहियें, जिनमें साधुओं को परमेश्वरभक्ति, देशभक्ति, जातिभक्ति और परोपकार की शिक्षा दीजाय । इस समय भारतवर्षमें बावनलाख हिन्दू [आर्य] साधु हैं । उनमें अधिकांश मूर्ख, भंगेडी गंजेडी हैं, जो देश को भाररूप हो रहे हैं (अर्पुण)

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ २

॥ अर्जुन उवाच ॥

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥

दोहा-अध्यातमकोब्रह्मको, कर्मकहाजगदीस ॥

अधिदैवतअधिभूततुम, जानतबिश्वावीस ॥ १ ॥

अब अर्जुनने पूछा कि-हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म
क्या है ? कर्म क्या है ? अधिभूत क्या है ? और अधिदैव क्या है ?

अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः

दोहा-अधियज्ञहिकासोंकहत, यादेहीमेंकौन ॥

कैसेतुमकोजानिये, प्रानकरैजवगौन ॥ २ ॥

हे मधुसूदन ! यहां इस देहमें अधियज्ञ कैसे हुआ और इस देही
में कौन है ? और इस लोकमें मरनेके समय संयतात्मा मनुष्य
आपको कैसे जान सकते हैं ? ॥ २ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३

दोहा-अक्षरसोंब्रह्माहिकहत, अध्यातमजुसमाय ॥

जोउपजावतजगतको, सोईकर्मस्वभाय ॥ ३ ॥

यह सुन श्रीकृष्ण बोले कि—हे अर्जुन ! जो परम अक्षर अर्थात् जगत्का मूलकारण है वही ब्रह्म है, और स्वभाव जो जीव सो अध्यात्म है तथा संपूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति और वर्षा आदिका करने वाला जो द्रव्यत्यागरूप यज्ञ सो ही कर्म है ॥ ३ ॥

अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥

अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४

दो० देहजु है अधिभूत यह, अधिदैवत है जीव ॥

सब देहिनकी देहमें, हौं अधियज्ञ सुपीव ॥ ४ ॥

जो क्षर अर्थात् नाशवान है वह अधिभूत है, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंका अधिपती जो वैराजपुरुष है वह अधिदैवत है और हे नरोत्तम अर्जुन ! देहमें अधियज्ञ अर्थात् देव पूज्य मैं हूँ ॥ ४ ॥

अंतकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ॥

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः

दोहा—अंतसमै देहहितजै, माँसुमिरनजो होय ॥

सोतबहीमोको मिलै, तहां न संशयकोय ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! जो अन्तसमयमें मुझको स्मरण करता हुआ देहको त्यागता है वह मेरे स्वरूपको पाता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ५ ॥

यं यं वाऽपि स्मरन् भावं त्यजत्यंते कलेवरम्

तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावं भावितः ॥ ६

दोहा-प्रानीजबदेहहितजै, सुमिरैकोईकाज ॥

यामें संशय नांहिनै, पावै सोई साज ॥ ६ ॥

हे कौन्तेय ! जिस जिस भावको स्मरण करता हुआ मनुष्य देहको त्यागता है वह मनुष्य उस भावमें भावित होनेके कारण उस उस भावको ही पाता है ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मा मे वैष्यस्य संशयः ७

दोहा-मेरोसुमिरन नित्यकरि, युद्धकरौकिनमित्त

अप मोमें बुद्धिमन, तामें आनउ चित्त ॥ ७ ॥

इसी हेतुसे तू सब समय मेरा स्मरण करता हुआ युद्ध कर, इस प्रकारसे मुझमें मन और बुद्धि लगानेसे तू मुझे निश्चय पावैगा ॥ ७ ॥

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ८

दोहा-योग और अभ्यासमें, जाकोचितथिरहोय

मोचिताराखैसदा, पुरुषहिंपावैसोय ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! अभ्यासयोगयुक्त होकर जो केवल परम पुरुषमेंही चित्त लगाकर उसीका ध्यान करते हैं वे निश्चय उसेही, पाते हैं ॥ ८ ॥

कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांस-
मनुस्मरेद्यः ॥ सर्वस्य धातारमर्चित्यरूप-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

दोहा-कविपुराननुशासिता, धातासूक्ष्म मानि
रविसमानसवते परे, अतिअचिंत्यमुहेजानि॥

जो सर्वज्ञ सकल विद्याओंके निर्माणकर्ता अनादि सिद्ध, सपूर्ण जगतके नियन्ता, सूक्ष्मसेभी अति सूक्ष्म, मवका पोषक, अचिंत्य रूप, सूर्यके समान कान्तिमान् और प्रकृतिसे परे जो पुरुष उसका स्मरण करते हैं ॥ ९ ॥

प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो
योगबलेन चैव ॥ भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य
सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् १०

दोहा-मरणसमैमनुथिरकरै, भक्तियोगबलपाय ॥

भृकुटिमध्यप्राणहिधरै, परमपुरुषमैजाय ॥१०॥

हे अर्जुन ! ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे युक्त जो उस दिव्यरूप परम पुरुषका भक्तिपूर्वक और योगबलद्वारा मरणसमयमें प्राणोंको भृकुटियोंके बीचमें अच्छी तरहसे सन्निविष्ट कर ध्यान करता है वह उससे मिलजाता है ॥ १० ॥

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति त्रिशन्ति यद्यतयो
वीतरागाः ॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

दोहा-अक्षरजासों कहत है. वीतरागजहँजात ॥

ब्रह्मचर्यजोचाहते, ता पदकी कहुवात ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! जिसे वेदवेत्ता अक्षर अर्थात् नाशरहित कहते हैं, जिनके रागद्वेषादि जाते रहे हैं वे यत्न करकरके ईश्वरको प्राप्त होते हैं जिसके जाननेकी इच्छासे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हैं उस पदका संक्षिप्त वर्णन तुमसे कहूंगा ॥ ११ ॥

**सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुद्धं च
मूर्ध्नि ध्यायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्**

दोहा—सब द्वारों को बश करै, मन को कैहिय माहि ॥
प्राण हिरों कैसी समहि, रहै धारणा गाहि ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण इन्द्रियोंका निग्रह करके और मनको हृदयमें रख अपने प्राणोंको भृकुटियोंके बीचमें लेजाकर योग धारण करै १२

**ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्**

दोहा—प्रणवाक्षर को जप करै, सुमिरै मोकों नित ॥
इहि विधि जो देह हित जै, लहै परम गति मित ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य देहको त्यागते समय 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्मका ध्यान करते हुये मेरा स्मरण करते हैं वे अवश्यही मोक्षरूप परम पदको पाते हैं ॥ १३ ॥

**अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः**

दोहा-अनन्यचित्तं वहै कै करै, मेरो सुमिरन ध्यान ॥

ताको मैं नित सुलभ हौं, योग युक्त सो जान ॥ १४ ॥

हे पृथानन्दन ! जो मुझ हीमें चित्त लगाकर नित्यप्रति निरंतर मेरा स्मरण करते हैं वे एकाग्र चित्तवाले योगीजन मुझे बहुत सुलभ सीतिसे पाते हैं ॥ १४ ॥

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्
नाप्नुवंति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः

दोहा-महापुरुषसिद्धिहिलहै, मोमें होत जुलीन ॥

दुखको घर जो जन्म है, तामें होत न दीन ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! मुझको मिलनेरूप परम सिद्धिको प्राप्त हुए महात्मा जब मुझको पालते हैं तब वे फिर अनित्य और दुःखोंके भंडार पुनर्जन्मको नहीं लेते हैं अर्थात् वे जीवन मरणके क्लेशोंसे छूट जाते हैं १५

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ॥

मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥

दोहा-ब्रह्मलोकलौलोकजे, तिनतैं आवन होय ॥

अर्जुनमोको पाइके, जन्मलहत नहिं कोय ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक जितने लोक हैं वे सब बार बार जन्म लेते हैं परंतु हे कौंतेय ! मुझसे मिलनेके पीछे पुनर्जन्म नहीं होता है

सहस्रयुगपर्यंतमहर्षिर्ब्रह्मणो विदुः ॥

रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः

दोहा-सहस्रयुगनकेअंतलों, ब्रह्माकोदिनजानि ॥

रातौतितनीहोतहै, ज्ञानीकहैबखानि ॥ १७ ॥

ब्रह्माका दिन सहस्र चौकड़ी युगोंका होता है और रात्रिभी इतनी ही बड़ी होती है. जो इन बातोंको जानते हैं वे सर्व ज्ञाता हैं ॥ १७ ॥

अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ॥

रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥

दोहा-ब्रह्माकेदिनहोतही, प्रगटतयहसंसार ॥

निशिकेआयेजातुहै, मायामेंताबार ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! कारणरूप जो अव्यक्त ईश्वर है उसीसे चराचर प्राणी ब्रह्माके दिनके आगममें उत्पन्न होते हैं और रात्रिके आगममें उसी ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं ॥ १८ ॥

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते

रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥

दोहा-बारबारउपजतसबै, जीवनसुतुरेमिच्छ ॥

ब्रह्माकेदिनरैनमें, बहेजातहैनिच्छ ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! प्राणियोंका यह संपूर्ण समूह दिनमें बार बार उत्पन्न होकर रात्रिके आगममें लीन हो जाता है और दिनके आगममें फिर उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः

यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥

दोहा-ब्रह्मजुमायातेपरे, इंद्रिगह्योनजाय ॥

सबजीवनकेनशतही, सो कबहुंननसाय॥२०॥

हे अर्जुन ! चराचर प्राणियोंका कारण स्वरूप जो अव्यक्त है उसका भी कारण स्वरूप एक और अव्यक्त है अर्थात् इन्द्रियोंके विषयसे अगोचर और अनादि है जो संपूर्ण प्राणियोंके नष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होता है ॥२०॥

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमांगतिमयं प्राप्य न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम ॥

दोहा-सोईअक्षरपरमगति, अव्यक्तौपुनिसोय ॥

फिरैनजाकोपाइके, परमधामममजोय ॥२१॥

जो अव्यक्त अर्थात् अगोचर और अक्षर अर्थात् अविनाशी कहा गया है उसीको परमगति कहते हैं-जिसको पाकर फिर संसारमें नहीं आते हैं वही मेरा परम धाम है ॥ २१ ॥

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया यस्यांतःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम

दोहा-भक्तिकरैतेपाइये, परमपुरुषसोंजानि ॥

जामेंसिगरेजीवहैं, जगसबरच्योसुआनि २२॥

हे पार्थ ! जिसके भीतर चराचर प्राणी हैं और जिससे यह संपूर्ण संसार व्याप्त है वह परमपुरुष अनन्य भक्तिसे प्राप्त होता है ॥२२॥

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः प्रयाता यांति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ॥

दो०-फिरि आवत जा काल मुनि, नहिं आवत जा काल
अर्जुन तो सो कहत हों, सुनिय ह सीख विशाल ॥

हे भरतर्षभ ! जिस कालमें योगीजन देह छोड़कर फिर नहीं आते हैं और जिस कालमें आते हैं, मैं अब उस कालका वर्णन करता हूँ २३

अग्निज्योतिरहः शुक्लः पण्मासा उत्तरायणम्
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥

दोहा-अग्निज्योतिरदिन शुक्लपक्ष, उत्तरायण के मास
जात जु ज्ञानी या समैं, लहत ब्रह्म में वास ॥२४॥

हे अर्जुन ! अग्निज्योति, दिन, शुक्लपक्ष और उत्तरायण के छः महीने इनमें जो ब्रह्मवेत्ता जन प्रयाण करते हैं वे फिर नहीं आते हैं समीक्षा-यह रूप वाऽलंकार है अर्थात् उत्तरायण कालमें दिन शुक्ल होता है और अग्निज्योतिके समान होती है ऐसे प्रदीप्त ज्ञान काल में जो लोग प्राणत्याग करते हैं वह ब्रह्मको प्राप्त होते हैं फिर उनको “आत्मा वारे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः” अर्थात् आत्मा संबन्धी ज्ञानको सुने उस पर विचार करे और पुनः तदनुसार धारणा करे इत्यादि जप यज्ञ करने की आवृत्ति (बार-बार करना) नहीं करनी पड़ती क्योंकि दिव्यज्ञान की अवस्थामें शरीर छोड़ने से वह मुक्त हो जाते हैं. ” गीतार्थ भाष्य.

धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः पण्मासा दक्षिणायनम्
तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥

दोहा-धूमनिशादच्छिन अयन, कृष्णपक्ष जो होय
शशिमंडल योगी लहै, फिरि आवै है सोय ॥२५॥

धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन के छः मास और चन्द्रजोति इनमें जो योगी प्रयाण करते हैं वे फिर संसारमें आते हैं ॥२५॥

समीक्षा—इस श्लोक का आशय यह है कि, केवल कर्म कालमें जो योगी शरीर छोड़ता है वह धूम, रात्रि तथा कृष्णपक्ष के समान अज्ञानरूप अंधकार को प्राप्त होता है अर्थात् ऐसा योगी बार२ कर्मोंकी आवृत्ति करता है। प्रयोजन यह है कि दक्षिणायन समयमें उत्तर ध्रुवके समीप घोर अंधकार होता है ऐसी अज्ञान रूप अंधकार अवस्थामें केवल कर्मानुष्ठानी योगी भोगरूपी आनंदों को प्राप्त होता है। इससे बार २ कर्मोंमेंही लगा रहना पड़ता है मोक्षतो ज्ञानावस्था में ही प्राण छूटनेपर हो सक्ता है ” ॥ गीतार्थ भाष्य.

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते॥

एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽवर्तते पुनः॥

दोहा—शुक्लकृष्णकीगतिकही, तेसंसारहिहोति ॥

फिरिआवतुहैएकगति, एकलहतहैज्योति २६

शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष ये दोनों योगियोंके आने जानें के सनातन मार्ग हैं. जो शुक्ल मार्गसे जाते हैं वे मुक्त हो जाते हैं और जो कृष्ण मार्गसे जाते हैं वे फिर संसारमें आते हैं ॥ २६ ॥

समीक्षा—“ अर्थात् ज्ञानगतिसे मुक्तिको प्राप्त होता है और कर्मगति से फिर बार२ उपासना रूप कर्मोंका अभ्यास करता है ” गीतार्थ भाष्य

**नैते सृती पार्थ जानन्न योगी मुह्यति कश्चन
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन॥**

दोहा-जो जानै दोऊ गतिन, योगी मोहन कोय ॥

योगी वहै अर्जुन तुहू, सब कालन को जाये ॥ २७ ॥

हे पार्थ ! जो योगी मोक्षके मार्ग और संसारके दाता इन दोनों मार्गोंको जानता है वह मोह नहीं पाता है इससे हे अर्जुन ! सदा योगयुक्त हो ॥ २७ ॥

समीक्षा-उक्तदेवयान और पितृयाण अर्थात् ज्ञान और कर्म दोनों प्रकारके मार्गोंमें से किसी एक मार्गकोभी जानता हुआ योगी मोहको प्राप्त नहीं होता । यह वही आशय है जो “ नहामिकम् नाशोरित ” गी० २ । ४० इत्यादि श्लोकमें वर्णन कर आये हैं कि योगके अंश मात्र काभी नाश नहीं होता ” गीतार्थ भाष्य.

वेदेषु यज्ञेषु तपस्सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपीत चाद्यम् ॥ २८ ॥

दोहा-वेदयज्ञतपदानको, फलजुक्छोहैमिह ॥

योगीताफलसों अधिक, रहै न सबदिनचित्ता ॥ १ ॥

सबफलको यहसारफल, योगीहारिसों योग ॥

भक्तिकरैमोकोमिलै, फलत्यागी करिभोग २८

कृष्णचरणइकचित्तजे, जो जानत यहभाय ॥

ब्रह्मकर्म अधिभूतए, कहेआठवेंध्याय ॥ १ ॥

बिनुकलेसइष्टहिलहै, महापुरुषयहयोग ॥

आनंदरामप्रकाशकरि, कियेयथारथलोग ॥ २ ॥

वेद, यज्ञ, तप, दान आदिमें जो फल बहे गये हैं उनसे अधिक जो योगरूप ऐश्वर्य है उसे पाते हैं और इसको पाकर परमपद जो स्थान है उसपर पहुँच जाते हैं ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां अक्षरब्रह्मयोगोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

समीक्षा—परमात्मा के जो भक्त हैं अर्थात् जो यह जानकरही उत्तम कर्म करते हैं कि परमात्मा उत्तम कर्म करनेवालों पर अपनी कृपा करते हैं उन भक्तजनोंके लिये इस अध्यायमें वह २ विधियाँ बताई हैं जिनको जानकर शरीर छोड़नेके पश्चात् परमात्माकी प्राप्ति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होसکتی है।

मरणकाल के समय गीतामें बताई हुई विधियोंके अनुसार, (यथा ओंकार जपते २ शरीर छोड़ना) वही जन शरीर छोड़सक्ते हैं जिन्होंने अपने जीवनकालमें धार्मिक एवं परोपकारवृत्तिको धारण करके अपने जीवन को व्यतीत करते हुए घंटे दो घंटे करके या अधिक समय तक नित्य जप आदिका अभ्यास किया हो और जिन्होंने ऐसा नहीं किया होगा वह अंत समयमें सांसारिक पदार्थोंके मोहरूपी जालमें फँस कर बारम्बार जन्म, मरण रूपी दुःख को भोगेंगे।

सारांश यह है कि गीताके छठे अध्यायमें जो युक्ताहार विहार, आसन, प्राणायाम, धारणा और समाधिकी विधियाँ बताई हैं, तदनुसार अभ्यास करनेवाले भक्त जनही मरण में सावधान होकर परमात्मा का स्मरण करते हुए अपना शरीर छोड़ सक्ते हैं, अन्य लोग नहीं.

[पृष्ठ १६५ से आगे]

[२४] हिन्दुओं (आर्यों) में इस समय अनेक पंथ प्रचलित हैं जिनमें मुख्य सनातनी, आर्य, जैन, सिक्ख, बौद्धादि हैं, इन सभी को वैदिकधर्म की शाखाएं समझनी चाहियें; जैसा कि, गंगा नदी तो एक है और उसपर घाट अनेक हैं; ऐसीही वैदिक आर्यधर्मरूपी गंगा तो एक है और उसके शाखारूपी घाट सनातनी, आर्य, जैन, सिक्ख आदि अनेक हैं । इन भिन्न २ सम्प्रदाय वालों को चाहिये कि, अपनी २ सम्प्रदायों में रहते हुए भी दूसरे हिन्दू (आर्य) सम्प्रदाय वालों को अपनाही " धर्म बन्धु " समझें । अपने से भिन्न हिन्दू (आर्य) सम्प्रदाय की कुरीतियों पर विचार और शास्त्रार्थ बहुत प्रेम से करें । प्राचीन समय में भी एक वेद की संहिता, वेदान्त, न्याय आदि कई शास्त्रोंको माननेवाले, मत भेद रखते हुए भी एकही वैदिक मतको मानने वाले समझे जातेथे। और बिचले समय में भी शैव, शाक्त, वैष्णव आदि भिन्न २ सम्प्रदायें इसी वैदिक आर्यधर्म की भिन्न २ शाखायें थीं ।

ऐसीही अब भी सनातनी, आर्य, जैन, सिक्ख आदिका मूलधर्म एकही है । इनका परस्पर में विरोध करना मानों अपनेही अंग को काटना है । सभी हिन्दू [आर्य] सम्प्रदायें एकही महान् वैदिक आर्यधर्मकी भिन्न २ शाखायें हैं देश, काल और मनुष्यों की प्रकृतियाँ भिन्न २ होनेसे और समय २ पर अज्ञानी मनुष्योंमें कुरीतियोंके फैलजाने से उन कुरीतियोंके हटाने के लिये बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, नागक, रामानुज, व्यास आदि आचार्यों को भिन्न २ रूपांतरोंमें समयानुकूल उपदेश करना पड़ा, इनके उपदेश ऊपर से भिन्न २ प्रतीत होते हुए भी वास्तवमें एक ही वैदिक आर्य सिद्धांतरूपी वृक्षकी भिन्न २ शाखाएं हैं; परंतु आजकलके चीन, जापान, र्मानीवासी बौद्धलोगोंके स्नानपानका व्यवहार अर्थ होगा है । वह लोग नाममात्रके बौद्ध धर्मावलंबी हैं, उनमें अहिंसा, व्रतचर्य और योगाभ्यास आदि नियमोंका पालन एक प्रकारसे सर्वथा छूट गया है; इसलिये उनके साथ हमारा ऐसा वर्ताव नहीं होसका, जैसा कि, यहां वाले जैन सिक्खादिके साथ है, तथापि वास्तवमें हम और वह एक ही हैं । हम यदि यहांसे उनमें उपदेशक भेजकर केवल उनका गोमांसभक्षण आदि भ्रष्टाचार छुड़ा दें तो बड़ा लाभ यह होगा कि संसारमें हिन्दू (आर्य) जातिकी संख्या तेईस करोड़की जगह सत्तर करोड़के लगभग होजाएगी, जिससे हमारा जातीय बल और भी अधिक बढ़जाएगा.

[२५] इस समय हिन्दू [आर्य] जाति, तेईस (२३) करोड़ जनसंख्या होनेपर भी, दूसरे धर्मवलंबी दृष्टि में तुच्छ और अपमानित बन रही है, इसका निम्न लिखित कारण है, जो हमको दूर करना चाहिये:-

क-सात (७) करोड़, अछूत गिने जाने वालों की संख्या है, जो अत्यंतमलीन दरिद्र और धर्म शुन्य हैं। इनको योग्य बनाकर हिन्दू (आर्य) धर्म के गीतादि ग्रंथ सिखाएं और अर्थोपार्जन का मार्ग सिखाकर और उनकी कुआ छूत मेटकर, विधर्मी ईसाई आदि होनेसे रोकें। जहाँ २ वह लोग हों वहाँ उनके लिये रामकृष्णादि अवतारोंके मंदिर भी बना दिये जाएं। वहाँ जानेसे उनके हृदयमें धर्मभाव उत्पन्न होकर अपने महापुरुषोंके प्रति प्रेम उत्पन्न होगा।

ख-बाचन (५२) लाख साधु हैं, जिनको योग्य बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। ग-साठ (६०) लाख विधवा स्त्री हैं, जिनमें बहुतसी तो पांच वर्ष के भीतरकी हैं। शोक की बात है कि धर्मशास्त्र के विरुद्ध, अपनी मूर्खतासे हम लोगोंने बालिकाओं का विवाह दस बारहवर्षसे नीची अवस्थामें करके उनका सुख नष्ट करनेमें पापका भाग लिया है।

यद्यपि हम विधवा विवाह के विरोधी हैं, परंतु मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें उन बाल-विधवाओंके पुनर्विवाह की आज्ञा भी देखनेमें आती है जिन्होंने कि पतिको संग नहीं किया है अर्थात् जिनको कुमारी ही बोलसके हैं। इसलिये धर्मशास्त्रोंके जानकार और धार्मिक विद्वानोंकी एक सभाद्वारा इस विषय का निर्णय करा-लियाजाए और उनकी सम्मतिमें यदि ऐसा विवाह करना शास्त्र सम्मत ठहरे तो बारह वर्ष से नीची अवस्थावाली बालिकाओं का पुनर्विवाह करदियाजाय; क्योंकि बहुत छोटी २ अवस्थामें विवाह होते समय इन बेचारी बालिकाओंको विवाह विषय का कुछभी ज्ञान नहीं था।

बहुधा ऐसा हुवा है कि बहुत छोटी अवस्था में ही इनके माता पिताओंने अपनी बेसमझके कारण इनका विवाह कर दिया है जिसका परिणाम बेचारी यह भोली बालिकाएं भोगरही हैं।

यह विषय विवादास्पद है इसलिये विद्वानोंकी सभा द्वारा इस का निर्णय होना अत्यावश्यक है।

और बारहवर्षके उपरांत वाली विधवाओंको वैराग्य और धर्मका उपदेश देकर सीना, पिरोना, पटना, लिसना, आदि आजीविका के काम सिखाये जायें। और आगेको ऐसा प्रबंध किया जाय कि, भारतवर्ष में विधवाओं की संख्या बढ़ने न पावे, अर्थात् तेरहवर्ष से न्यून अवस्था वाली कन्याओंका विवाह कदापि न होने पावे।

घ-सोलह (१६) करोड़ शेष हिन्दू [आर्य] जातिके असंख्य भाग हो रहे हैं जिनमें प्रत्येक अपनेको एक दूसरे से भिन्न समझता है। उनको विचार करना

चाहिये कि, मनुष्य अपने उच्च कर्मोंसे बड़ा होता है, न कि मित्याभिमान और बढ़ाई करने से। यहाँ तक कि सी २ स्थान पर मूर्खता बढ़ाई है कि, भाई, भाई के हाथका, पिता, पुत्र के हाथका और पति अपनी स्त्री के हाथका, बनाया हुआ भोजन नहीं करता। खाने पीने के मित्या आदंबर को ही धर्म समझ लिया है। ऐसे मित्याभिमान और द्वेष को छोड़कर एकता और प्रेमका प्रचार करना चाहिये।

[२६] इस समय हिन्दुओं [आर्यों] के सदृश जातिभेद देखनेमें आ रहे हैं। प्राचीन समयमें तो केवल चारवर्ण थे और अब भी चारही रहने चाहिये। इस समय जो संकीर्णता जातिभाव की देखने में आ रही है वह बड़ी भयानक है। कोई हिन्दू [आर्य] जातिके तो चारसौ पाँच सौ घरही हैं; जिसका फल यह होता है कि उसी जातिके बाहर विवाहादि सम्बन्ध न कर सकने के कारण बहुत से मनुष्यों को आजीवन अविवाहित रहना पड़ता है। इस समय यदि अधिक से अधिक जाति के वर्ग रखे जायें, तो समस्त भारत वर्षमें बीस हिन्दू [आर्य] जातिके वर्ग के हैं, जो निम्नलिखित प्रकार हैं।

चार प्रकार के—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जिनका स्नानपान निरामिषी अर्थात् मांस रहित है और जन्म से जाति मानते हैं।

चार प्रकार के—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो जन्म से तो जाति मानते हैं परन्तु जिनका स्नानपान निरामिषी नहीं है अर्थात् मांसाहारी हैं।

चार प्रकार के—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो गुण कर्म से जाति मानते हैं और जन्म से नहीं; जिनका स्नान पान निरामिषी है, जैसा कि आर्यसमाज का एक दल। इनके सिद्धान्तमें उच्चवर्णवाला यदि हीन कर्म करे तो नीचे वर्णमें चला जाता है और उच्च कर्म करनेवाला हीनवर्ण ऊँचे वर्ण में आजाता है।

चार प्रकार के—वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जो गुणकर्म से जातिमानते हैं, जन्म से नहीं; परन्तु जिनका स्नानपान निरामिषी नहीं जैसा कि आर्यसमाज का दूसरा दल। उच्च वर्णसे हीनवर्ण बनना और हीनवर्णसे उच्चवर्ण हो जाना गुणकर्मनुसार ही यह दल मानता है।

एक प्रकार के—जैन।

एक प्रकार के—सिक्ख।

एक प्रकार के—बौद्ध जो गौरक्षक हैं, क्योंकि जो गौरक्षक नहीं हैं, उनको हम हिन्दू (आर्य) जातिकी श्रेणीमें स्थान नहीं दे सकते। यद्यपि बुद्ध भगवानका उपदेश तो किसी भी प्राणी की हिंसा करने को नहीं था; परन्तु समय के फेरसे आज उसी बुद्ध भगवान के अनुयायी कहलाते हुए भी चीन, जापान आदि देशनिवासी

बौद्धधर्मी लोग इतने गिराये हैं कि अन्य प्राणियों की रक्षा करना तो दूर रहा गौजातिकी हिंसा करने से भी नहीं हटते; इस लिये हम जो गौरवक हैं, उनको हिन्दू [आर्य] जाति की श्रेणीमें स्थान नहीं दे सके।

और एकप्रकारके—वह सब लोग जो गौरवक होते हुए किसी भी हिन्दू [आर्य] जातिकी वेदानुकूल सम्प्रदायको मानते हैं; या हमारे धर्मग्रंथोंके किन्हीं सिद्धांतोंके अनुयायी हैं; परन्तु जन्म से या गुणकर्म से जातिभेद नहीं मानते; केवल एकही आर्यजाति मानना चाहते हैं; जैसा कि “आर्य भ्राता मंडल,” “ब्राह्मसमाज” आदि।

इस प्रकार बीस वर्ष हिन्दू [आर्य] जानिके इस समय हो सके हैं। इन बीस बर्गोंसे अधिक वर्ग होनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस समय भी प्रधान २ साम्प्रदायिक भेद इन बीस बर्गों के अंतर्गतही हैं।

[२८] भारतवर्षके सब हिन्दुओं [आर्यों]की एक महासभा होनी चाहिये, जिसका वार्षिक अधिवेशन भारतवर्षके भिन्न-भिन्न प्रांतोंमें होता रहे। उस सभामें प्रांतिक हिन्दू [आर्य] सभाओं के प्रतिनिधिगण आवें और हिन्दू [आर्य] जातिकी उन्नतिके उपाय सोचें और तदनुसार कार्य प्रारंभ करके हिन्दू [आर्य] जाति को उन्नत करें ॥

(अपूर्ण)



अथ नवमोऽध्यायः

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात्

दोहा-अर्जुन तो सों कहतुहों, एक गुप्त यह बात ॥

समझ ज्ञान विज्ञान को, लहै मुक्ति विख्यात ॥ १ ॥

हे अर्जुन ! तू परनिन्दक नहीं है इससे विज्ञानसहित जो यह अत्यन्त गुप्तज्ञान है वह मैं तुझे सुनाता हूँ इसे जानकर तू सब अशुभ कर्मोंसे छूट जायगा ॥ १ ॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

दोहा-उत्तम विद्याराज है, अति पवित्र तू जानि ॥

फलता को प्रत्यच्छ है, करिये ते सुखमानि ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! जो ज्ञान मैं तुझें सुनाता हूँ वह सब विद्याओं का राजा है और सबसे अधिक गुप्त रखने के योग्य है, अत्यन्त पवित्र है, जिसका जानना सुलभ है, वेदोक्त धर्मों का फलस्वरूप है, सुखपूर्वक साधन के योग्य है और नाशरहित है ॥ २ ॥

अश्रद्धानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप ॥

अप्राप्य मां निवर्तते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

दोहा-करिवेकोयाधर्मकों, जाकेश्रद्धानाहिं ॥

तेमोको पावैनहीं, डोलतहैंभवमाहिं ॥ ३ ॥

हे परंतप ! जो मनुष्य इस धर्ममें श्रद्धा नहीं करते हैं, वे सुझको प्राप्त नहीं होते हैं और इस मरणशील संसारमें घूमते रहते हैं ॥ ३ ॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः

दोहा-विस्तारोसवजगतमें, मोहिनपेषैकोय ॥

सबैजीवमोमेंवसैं, मोहिनतिनमेंजोय ॥ ४ ॥

यह संपूर्ण जगत सुझमें अव्यक्तरूप करके व्याप्त है, सब प्राणी सुझमें स्थित हैं और मैं उनमें स्थित नहीं हूँ ॥ ४ ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ॥

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

दोहा-मोमेंकोऊनहिंबसै, यहईश्वरतादेखि ॥

उपजावतपालतछुहों, नहिंतिनमेंअवरोखि ॥ ५ ॥

ये सब प्राणीभी सुझमें स्थित नहीं हैं, जो कदाचित् तू यह कहै कि, तूम पहिले कह चुके हो कि सब प्राणी सुझमें स्थित हैं, इससे पूर्वापर विरोध है, हे अर्जुन ! सो नहीं है, तू मेरे ऐश्वर्यसंबंधी योग बलको देख, प्राणियोंका भरण पोषण करनेवाला मेरा आत्मा प्राणियोंका लालनपालन करता है परन्तु उनमें स्थित नहीं है, यही मेरा योगबल है ॥ ५ ॥

यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्र गोमहान्
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

दोहा—जैसे पवन अकाश में, विचरत है सब वार ॥

त्यों मोमें सब जीव ए, फिरत जानि निरधार ॥ ६ ॥

जैसे निरन्तर आकाश में रहने वाला वायु बड़ा है और सब जगह विचरता है परन्तु आकाश में लिप्त नहीं होता है, ऐसे ही सब प्राणी मुझमें स्थित हैं, परन्तु मैं किसीमें लिप्त नहीं होता हूँ ॥ ६ ॥

सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं यांति मामिह म
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्

दोहा—मेरी मायामें रहैं, प्रबल भये सब जंतु ॥

कल्प आदिसि रजौंति न्हैं, मोमेंति न कोतंतु ॥ ७ ॥

हे अर्जुन! प्रलयकालमें संपूर्ण प्राणी मेरी प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं और उनको मैं कल्पके आदिमें फिर छोड़ देता हूँ अर्थात् सृजता हूँ ७

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ॥

भूतश्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

दोहा—अपनी माया संगले, सिरजत वारंवार ॥

माया ही के बस परचो, रहै सदा संसार ॥ ८ ॥

मैं अपनी प्रकृतिका आश्रय लेकर अपनी प्रकृतिके कारण पराधीन इस संपूर्ण प्राणीसमूहको बारंवार सृजता हूँ ॥ ८ ॥

नचमांतानिकर्माणिनिवध्नन्ति धनंजय ॥

उदासीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ ९ ॥

दोहा-अर्जुनमोकोकर्मवे, कर्मद्वुबांधतनाहिं ॥

सदाउदासीरहतहों, आसक्तनतिनमाहिं ॥९॥

हे धनंजय ! मैं उन सृष्टिरचनादि कर्ममें आसक्तहूँ अर्थात् कर्मोंमें स्थित नहीं होता हूँ और उदासीनवत् स्थित रहता हूँ अर्थात् किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं रखता. इससे मैं कर्मबंधनोसे नहीं बँधता हूँ ॥९॥

मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥

हेतुनाऽनेनकौन्तेयजगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

दोहा-हौंप्रैरतमायाजबै, उपजतसबसंसार ॥

पारथयाहीहेततैं, फिरतसुबारंबार ॥ १० ॥

हे कौन्तेय ! मैंही अध्यक्षहूँ. इस मेरी अध्यक्षताहीसे प्रकृति चराचर प्राणीमात्रको सृजती है, इसी हेतुसे इस जगत्का परिवर्तन होता रहता है. इससे यह दिखाया है कि मैं कर्त्ताभी हूँ और उदासीन भी हूँ ॥

अवजानन्तिमामूढामानुषींतनुमाश्रितम् ॥

परंभावमजानन्तोममभूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

दोहा-मोकोमानसजानिकै, आदरकरतनकोय ॥

मूरखएजानतनहीं, यहैजुईश्वरहोय ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! मूढ़ मनुष्य मेरे सर्वभूत महेश्वर परमभावको नहीं जानते हैं, इसीसे मैंने जो यह मनुष्यरूप धारण कर रक्खा है. उसकी

अवज्ञा करते हैं अर्थात् अपने समान जानकर मेरा आदर नहीं करते हैं
 मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः
 राक्षसीमासुरींचैवप्रकृतिमोहिनींश्रिताः ॥

दोहा—उनकी आशा सुफल नहीं, ज्ञान कर्मता भाया ॥
 प्रकृति आसुरी राक्षसी, तामें बूढ़त धाय ॥ १२ ॥
 हे अर्जुन ! ये मूढ़ मनुष्य इसलिये मेरा आदर करते हैं कि इनकी
 आशा फलवती नहीं है इनके कर्म निष्फल हैं, इनके ज्ञान फलहीन है
 सांसारिक द्रव्यसनोंसे इनका चित्त विक्षिप्त रहता है और राक्षसी तथा
 आसुरी प्रकृतिका आश्रय रखते हैं जो मोहको उत्पन्न करनेवाली है ॥

महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः ॥

भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्
 दोहा—देव प्रकृतिमें जो मिलें, कामक्रोधको त्यागि ॥
 ते जानत मोको सबै, रहत जु है अनुरागि ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! देवी प्रकृतिका आश्रय रखनेवाले महात्माजन तो
 मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंका आदिरूप और अविनाशी जानकर सब
 ओरसे चित्त हटा मेरा ही भजन करते हैं ॥ १३ ॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ॥

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपसते

दोहा—कीरत मेरी दृढ़ करी, जानै मोहि व्रतराखि ॥
 भक्तिसहित मोको नवत, मेरे ईगुन भाखि ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! वे महात्मा लोग निरन्तर मेरा कीर्तन करते हैं, दृढ संकल्प करके मेरी प्राप्ति का यत्न करते हैं, भक्ति-पूर्वक सुझे नमस्कार करते हैं और अहर्निश सुझमें ध्यान लगाकर मेरी उपासना करते हैं ।
ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ॥

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतो मुखम् ॥

दोहा—ज्ञानयज्ञको ऊयजत, मोको सेवत मीत ॥

कोऊ मानत एक करि, कोऊ बहुत पुनीत ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो एक भाव अर्थात् अभेद बुद्धि से मेरी उपासना करते हैं, कितने ही दास्य भाव से भेद बुद्धि द्वारा मेरी उपासना करते हैं. और कितने ही सब प्राणियों का आत्मस्वरूप सुझे ब्रह्मरूप समझकर मेरी उपासना करते हैं ॥ १५ ॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ॥

मंत्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् १६

दोहा—हौं ही क्रतु अरु यज्ञ हौं, स्वधा औषधी जानि ॥

हौं पावक व्रत होम हौं, मंत्रौ मोको मानि ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! वेदोक्त अग्निष्टोमादि यज्ञ मैं ही हूँ, बलिवैश्वदेवादि पञ्चमहायज्ञ मैं ही हूँ, स्वधा मैं ही हूँ अन्नादि औषध भी मैं हूँ, मंत्र मैं हूँ, होम का साधन घृत मैं हूँ, जिसमें हवन किया जाता है वह अग्नि मैं हूँ, और होम भी मैं ही हूँ ॥ १६ ॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः

वेद्यं पवित्रमोंकारऋक्सामयजुरेव च ॥ १७

दोहा-मातपितायाजगतकौ, होंधातांकरतार ॥

ऋग्यजुसामपवित्रहों, औरवेदअंकार ॥१७॥

हे अर्जुन ! इस संपूर्ण जगतका पिता मैं हूँ, माता मैं हूँ, धात्रा मैं हूँ, पितामह मैं हूँ, जाननेके योग्य मैं हूँ, पवित्र मैं हूँ, ओंकार मैं हूँ, ऋग्वेद, सामवेद, और यजुर्वेद मैं हूँ ॥ १७ ॥

गतिभर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत् ॥

प्रभवःप्रलयःस्थानंनिधानंबीजमव्ययम् ॥

दोहा-गतिनिवासभर्ताशरण, साक्षीप्रभुअरुबंधु ॥

प्रलयस्थाननिधानहूँ, अव्ययबीजअबंधु ॥१८॥

हे अर्जुन ! इस सब जगतकी गति मैं हूँ, सबका भर्ता अर्थात् पोषणकर्ता मैं हूँ, सबका प्रभु मैं हूँ, सब शुभ अशुभ कर्मोंका साक्षी मैं हूँ, सबका निवासस्थान मैं हूँ, सबका शरणस्थान मैं हूँ, मैंही सबका अहेतुक हितकारी हूँ, मैंही सबका उत्पत्तिस्थान हूँ, मैंही प्रलय हूँ, विश्वकी स्थिति और प्रलयका स्थान मैंही हूँ, सबका बीज-रूप मैं हूँ, और अधिनाशी मैंही हूँ ॥ १८ ॥

तपाम्यहमहंवर्षेनिगृण्णहाम्युत्सृजामिच ॥

अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन ॥१९॥

दोहा-तप्तगहतछेडतजुहों, वरपतहोंही जानि ॥

अमृतमृत्युकारणकरन. होंहीअर्जुनमानि १९॥

हे अर्जुन ! मैंही सूर्यरूपसे सबको तपाता हूँ, मैंही जल बरसाता हूँ और मैंही रोक देता हूँ, मैंही अमृत और मृत्यु हूँ, मैंही सत और असत हूँ

त्रैविद्यामांसोमपाःपूतपापायज्ञैरिष्टास्व-
र्गतिंप्रार्थयन्ते ॥ ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक
मश्नन्ति दिव्यान् दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥

दोहा-यज्ञकरत पापनदहत, चाहतस्वर्गहिवास ॥
इन्द्रलोकलहिभोगवै, दिव्यभोगसुविलास ॥ २० ॥
हे अर्जुन ! ऋक्, यजुः, साम इस वेदत्रयीके ज्ञाता वेदोक्त यज्ञकर्म
करके सोमरसक पान कर अपने पापोंसे पवित्र हो स्वर्गमें वास वा
दिव्य भोगोंका भोग करते हैं ॥ २० ॥

ते तंभुक्त्वास्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये
मर्त्यलोकं विशन्ति ॥ एवं त्रयीधर्ममनुप्रप-
न्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥

दोहा-फिरि आवत भूलोकमें, छीन पुण्यजवहोय ॥
पावै आवागवनवे, कामवंत जे सोय ॥ २१ ॥
वे स्वर्गलोकमें अनेक भोगोंको भोग कर अपने पुण्योंके क्षीण होने-
पर फिर मृत्युलोकमें जन्म लेते हैं इस प्रकार वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंके
करनेवाली अपनी कामनाकी सिद्धि के कारण कभी स्वर्गमें जाते हैं
कभी मृत्युलोकमें आते हैं इसी तरह आवागमनमें फंसे रहते हैं ॥ २१ ॥

अनन्याश्रित यन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

दोहा-देवभक्तदेवनलहै, पितृपूजकपितृस्थान ॥

भूतयजैभूतहिलहै, मोपूजैभगवान ॥ २५ ॥

हे अर्जुन ! देवताओंके पूजनेवाले देवगतीको प्राप्त होते हैं पित्रोंके पूजक पितृगतिको पाते हैं भूतोंके पूजनेवाले भूत बनते हैं और मेरे पूजनेवाले मेरे परमानन्दस्वरूप अचल पदको पाते हैं ॥ २५ ॥

पत्रंपुष्पफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ॥

तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः ॥

दोहा-पातफूलफलनीरऊ, जोअर्पेकरिप्रीति ॥

लेऊंदियोहौंभक्तको, कियेप्रेमकीरीति ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई भक्तिपूर्वक पत्र, फल, फूल, जल जो कुछभी मेरेको निवेदन करता है उस भक्तिपूर्वक दीहुई वस्तुको मैं बड़ी प्रसन्नतासे अंगीकार करता हूँ, इसका भाव यह है कि अन्य देवताओंकी पूजाके लिये बड़ी बड़ी सायग्रियोंकी आवश्यकता है मेरी पूजाके लिये केवल भक्तिही बहुत है ॥ २६ ॥

यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत

यत्तपस्यसिकौंतेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् २७

दोहा-जोकछकरतुजोखातुहै, जोहोमतजोदेत ॥

अर्जुनजोतूतपकरै, सोकरिमोहीहेत ॥ २७ ॥

हे कौंतेय ! जो कुछ तू करता है, होम करता है, खाता है, देता है, तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर ॥ २७ ॥

शुभाशुभफलैरेवमोक्ष्यसेकर्मबंधनैः ॥

सन्यासयोगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि

दोहा-भलेबुरेजेकर्महैं, तिनतेछुटिहैंमित ॥

जुगतयोगसन्यासकरि, मोमिलिहोनिहिचिंत

हे अर्जुन ! ऐसा करनेसे कर्म बंधनरूप शुभ अशुभ फलोंसे बच जाओगे और संन्यास योगमें युक्त होकर मुक्ति पा, मुझको अवश्य पाओगे ॥ २८ ॥

समोऽहंसर्वभूतेषुनमेद्वेष्योऽस्तिनप्रियः ॥

येभजंतितुमांभक्त्यामयिते तेषुचाप्यहम्

दोहा-हौसबठौरसमानहौं, मेरेप्रीतनद्रोह ॥

मोकोसेवतभक्तजे, तिनसोंमोको मोह ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! मैं संपूर्ण प्राणियोंमें समान रूप हूँ, न कोई मेरा बैरी है, न कोई मेरा प्यारा है, जो मुझको कोई भक्तिपूर्वक भजता है वह मुझमें है और मैं उसमें हूँ ॥ २९ ॥

अपिचेत्सुदुराचारोभजतेमामनन्यभाक्

साधुरेवसमंतव्यःसम्यग्व्यवसितौहिसः ॥

दोहा-दुराचारमोकोभजै, वहैअनन्यकैभाय ॥

ताकोलुमसाधुगिनौ, सबनिश्चयकेदाय ॥ ३० ॥

यदि कोई अत्यन्त दुराचारी मनुष्य भी हो और वह औरोंकी भक्ति न करके केवल मेरीही उपासना करे वह साधुही है और उसीने सब बातोंका अच्छे प्रकार निश्चय करलिया है ॥ ३० ॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छात् ॥

कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

दोहा-वेगिहोइ धर्मात्मा, शांतिलहै बहुभाय ॥

अर्जुन निश्चै जानितू, नहिं मो भक्त न साय ॥ ३१ ॥

वह अनन्य भक्त शीघ्रही दुराचारीसे धर्मात्मा हो जाता है और वह निरंतर शान्त रहता है. हे कौंतेय ! इस बातको अच्छे प्रकारसे जानले कि मेरे भक्तका नाश कभी नहीं होता है ॥ ३१ ॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परांगतिम्

दोहा-अर्जुन सेवत मोहिजो, सोयाजो निहिस्वोय ॥

नारिशूद्र अरु वैश्य पुनि, ताहि परम गति होय ॥

हे पार्थ ! कोई कैसाही पापात्मा क्यों न हो, चाहे स्त्री हो, वा वैश्य हो, वा शूद्र हो, वह दायि मेरा आश्रय ले तौ उत्तम गतिको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

समीक्षा-“ यहाँ श्रीकृष्णजीने इस बातपर बल दिया है कि जो पुर्व प्रारब्ध कर्मसे निर्दित कर्म करनेवाले हों चाहे स्त्रियें हों चाहे वैश्य हों वा शूद्र हों वहभी परमात्मा परायण होनेसे शुद्ध होजाते है, स्त्री, वैश्य तथा शूद्र को कृष्णमहाराजने जन्मसे दुष्ट नहीं माना है । यदि ऐसा होता तो अज्ञात कुल गोत्र सत्य काम जावाल और विदुर महाराज ब्रह्मविद्या पढकर और मैत्रेयी, कात्यायनी आदि स्त्रियें विदुषी बनकर कैसे पूर्वकालके ऋषि मंडलमें आदर और प्रतिष्ठा पालेते ” ॥ गीतार्थभाष्य.

किंपुनर्ब्राह्मणाः पुण्याभक्तां राजर्षयस्तथा ॥

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम-

दोहा-द्विजपुनीत अरु भक्तवर, राजऋषिनि सुखमाय

सुख अनित्यया लोकको, मोहि भजो चितलाय ३३

हे अर्जुन ! जो फिर पुण्यात्मा ब्राह्मण हैं भक्त राजर्षि हैं, उनका तौ कहना ही क्या है ! अर्थात् वे तौ मोक्ष पाते ही हैं इस लिये हे अर्जुन ! अनित्य सुखरहित, इस लोकको पाकर तू मेरा भजन कर

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मानं मस्कुरु ॥

मामैवैष्यसि युक्तवैवमात्मानं सत्परायणः

दोहा-मोको भजि भजिन म्रव्है, मोही मैं मन राखि

यही युक्ति तू मोहि मिलि, प्रेमन सौं अभिलाखि ॥

अपनी ईश्वरता कही, अचरज कैसे भाय ॥

भक्ति विभौ करि कै कृपा, कह्यो नवमस सुझाय ॥

राजगुह्यविधाय है, राजगुह्ययह योग ॥

वरनी आनंद राम यह, प्रभु की पूजा जोग ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! तू अपना मन सुझमें लगा, मेरा ही भक्त बन, मेरी ही पूजा कर, सुझे ही नमस्कार कर, मेरे ही मैं तत्पर हो ऐसे अपनी आत्माको मुक्त करनेसे सुझको पाओगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें यह दिखाया गया है कि जब पापी मनुष्य अपने अंतःकरणको शुद्ध करके सर्वथा पापोंका त्याग करके परमात्माकी भक्ति करना प्रारंभ करता है, तभीसे उसको यह पूर्ण विश्वास रखना चाहिये कि ईश्वर मेरा अवश्य उद्धार करेंगे । (देखो अ० ९ श्लो० ३०) ।

और जो उत्तम श्रेणी के भक्तजन केवल परमात्माके ध्यानमेंही मग्न रहनेके कारण अन्य लौकिक कार्य नहीं कर सकते उनके लिये योग क्षेमकी चिन्ता परमात्मा ही करते है। (देखो अ० ९ श्लो० २२)
 ऐसा दृढ विश्वास उत्तम श्रेणीके भक्तोंके लिये ही दिलाया गया है । अन्य साधारण मनुष्योंके लिये नहीं ।

(क) अप्राप्त वस्तुको प्राप्त करना “ योग ” कहलाता है ।

(ख) प्राप्त वस्तुकी रक्षा करना “ क्षेम ” कहलाता है ।

जो लोग पाप कर्मोंमें रत रहते हुए केवल लोकबंधना (लोगों को ठगना) के निमित्त धर्मका बाह्य आडम्बर रखते हैं ऐसे धर्म-ध्वजा जन परमात्माकी कृपाके कभी पात्र नहीं बनसके (देखो अ० ९ श्लो० १२) ।

सारांश यह कि जो मनुष्य मन वचनसे सच्चे बनकर पाप कर्मोंको एकमात्र त्यागकर परमात्माकी शरणमें आते हैं वह शीघ्रही परमात्माकी कृपाके पात्र बन जाता है । (देखो अ० ९ श्लो० ३१)

यही इस अध्यायका सार है ॥

[पृष्ठ १८१ से आगे]

[२८] प्राय २ में हिन्दू (आर्य) सभाएं स्थापित की जायें, उनमें स्वयंसेवक अर्थात् “ जातिसहायक ” उत्पन्न किये जायें, जो विपत्ति के समय में काम आसके और उन सभाओं में नीच धंधा करने वाले शूद्रोंसे लेकर पवित्र धंधा करने वाले

ब्राह्मणों पर्यंत सम्मिलित होकर हिन्दू (आर्य) जातिका संगठन करें, जिससे कि दुःसखे समयमें मिलकर काम कर सकें । परस्पर विरोधके कारण पृथ्वीराज और जयचंद भारतवर्षके नाश करने के उदाहरण हैं ।

जिस भारतवर्षमें बारहसौ वर्ष पूर्व एकभी मुसलमान नहीं था. वहां हमारेही घरेलू झगडों के कारण मुसलमान लोग आगये । हमने ही उनको यहाँ बुलाकर यहाँका राज्य सौंप दिया और राज्यस्थापित रखनेमें भी हमही सहायक बने रहे, जिसका फल यह हुआ कि, हमारे भाइयोंमें से ही छः करोड मुसलमान बन कर हमारे धर्म विरोधी हो रहे हैं ।

[२९] नीच धंधा करने वाले हिन्दू (आर्य) लोगोंको धर्मसे परिचित करनेके लिये उपदेशकोंका प्रबन्ध किया जाय जिससे वह लोग भिन्नधर्मी न हो सकें और क्योंरवह लोग मलीन धंधा छोड़ते जायें जैसे २ ही उनके साथ छूआ छूत छूटती जानी चाहिये और उनके पठाने के लिये विद्यालयभी आवश्यकानुसार खोल दिये जायें ।

[३०] नीच अर्थात् मलीन धंधा करनेवाले हिन्दुओं [आर्यों] के लिये आवश्यकानुसार उनके बीच में देवालय बना दिये जायें और जब वह पवित्र होकर शुद्ध यज्ञोंको धारण करके देवालयांमें आयें, तो किसी भी देवालय में आने से उनको न रोका जाय क्योंकि वह हमारे स्वधर्मी हैं, श्रीरामचंद्रादि परमेश्वरके अवतारोंने और धर्मग्रंथोंने उनको दूसरे वर्णों के समान गिना है । परमेश्वरको तो निम्न लिखित गुणवाला मनुष्य प्रिय है चाहे वह किसी वर्णका क्यों न हो; यथा:

श्लोक-यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति । शुभाशुभ परिचर्यागं भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ गी. अ. १२ । श्लो० ७१॥

अर्थ-जोकि इष्ट वस्तु को प्राप्त होकर प्रसन्न नहीं होता है, अनिष्ट वस्तुको प्राप्त होकर न द्वेष करता है, न शोक करता है, न इच्छा करता है और शुभाशुभका भ्रम न करके सदा ईश्वरभक्तिके कामों में लगा रहता है ऐसा भक्त मुझको प्रिय है ।

समीक्षा-न कि अपने को जन्मसे उत्तम मानने वाला ईश्वर को प्रिय हो सक्ता है ।

[३१] भारतवर्षकी सब हिन्दू [आर्य] जातिका एक पहराव होना चाहिये, यदि सब वस्त्र एक प्रकारके न हो सकें तो सिरका वेप तो एकप्रकारका अवश्य होना चाहिये यथा टोपी और पगडी । वह वेप जातीय व्यवहारों और सभाओंमें अवश्य दृष्टि गोचर होना चाहिये । आजकल भारतवर्षके मुसलमान लोगोंने भी तुर्कीटोपी को अपना जातीय सिरकावेप बना लिया है, तो क्या हमको अपना एकवेप नहीं बनाना चाहिये ।

[अपूर्ण]

अथ दशमोऽध्यायः ॥



॥ श्रीभगवानुवाच ॥

भूयएवमहाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥

यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया

दोहा-दुरीवातमोसोंबहुरि, सुनुअर्जुनचितलाय ॥

है प्रसन्नतोसोंकहौं, तेरेहितकोभाय ॥ १ ॥

हे महाबाहो ! मेरी औरभी उत्तम उत्तम बात सुन मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूं इस लिये तेरी भलाईके लिये कहता हूं ॥ १ ॥

नमे विदुःसुरगणाःप्रभवं न महर्षयः ॥

अहमादिहि देवानांमहर्षीणांचसर्वशः ॥२॥

दोहा-देवऋषीनहिंजानहीं, मोउतपत्तिहिमीत ॥

देवऋषिनअरुसवनको, हौंहीआदिपुनीत ॥

मेरे जन्मको देवता वा महर्षि कोईभी नहीं जानते हैं क्योंकि मैं संपूर्ण देवता और संपूर्ण ऋषियोंसे पहिले हुआ हूं और वे सब मुझहीसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥

योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरम् ॥

असंमूढःसमर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥

दोहा-अजंअनादिजगदीशपुनि, मोकौलखतजुकोय

सबमेंज्ञानीवहबडौ, पापानि डारतधोय ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो सुझे अज, अनर्दि और संपूर्ण लोकोंका ईश्वर जानते हैं वे मनुष्योंमें मूढतारहित हैं और संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं

बुद्धिज्ञानमसंमोहः क्षमासत्यंदमःशमः ॥

सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥ ४ ॥

दोहा-बुद्धिज्ञानशमदमक्षमा, अव्याकुलताहोय ॥

सुखभवदुखऔभावभय, औरअभयताजोय

हे अर्जुन ! बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, लय, भय और अभय ॥ ४ ॥

अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोऽयशः ॥

भवन्तिभावाभूतानामत्तएवपृथग्विधाः ॥

दोहा-तोष अहिंसा दानतप, समजसअजसौजान

जीवनकेसबभावए, मोतेहोतसमान ॥ ५ ॥

अहिंसा, समता, संतोष, तपस्या, दान, यश, अपकीर्ति ये सब प्राणियोंके पृथक् पृथक् भाव सुझहीसे होते हैं ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥

मद्भावामानसा जाता येषालोकइमाःप्रजाः ॥

दोहा-सातौऋषिमुनिचारिमनु, मोमनतैजुददोत

सबलोकनमाहींभरे, हैं इनहीकेगोत ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! वसिष्ठादि सात महर्षि, सनकादिक चार आदि ऋषि तथा चौदह मनु ये सब मेरे मनसे प्रकट हुए हैं, इन्हींसे यह संपूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई है ॥ ६ ॥

एतांविभूतियोगंचममयो वेत्ति तत्त्वतः ॥

सोऽविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः ७

दोहा-मेरीयोगविभूतिको, तत्त्वज्ञानजोलेत ॥

निश्चलयोगहिसोलहै, रहतजुयाहीहेत ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी इस विभूतिको तत्वसे जानते हैं वे निश्चलयोगसे युक्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥

इति मत्वा भजंते मां बुधाभावसमन्विताः

दोहा-मैंहौंईश्वरजगतको, मोहीतेसबहोय ॥

ज्ञानवंतयहजानिकै, मोहीसेवतसोय ॥ ८ ॥

मैंही सबका उत्पत्ति कारण हूं और मुझहीसे सबकी प्रवृत्ति होती है यह जानकर विवेकी पुरुष मेरा स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतः परस्परम् ॥

कथयंतश्चमांनित्यंतुष्यंति च रमंति च ॥ ९

दोहा-प्राणचित्तमोमेंधरत, बोधपरस्परदेत ॥

मेरेचरितनिकहतनित, प्रीतिपरमसुखलेत ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! वे अहर्निशि मुझहीमें चित्त लगाये रहते हैं और अपने प्राणोंको मुझहीमें अर्पण किये रखते हैं, आपसमें एक दूसरेसे मेराही उपदेश करते हैं, मेरीही चर्चा करते हैं, इस प्रकार नित्य संतुष्ट रहते हैं और आनन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! जो मुझे अज, अनादि और संपूर्ण लोकोंका ईश्वर जानते हैं वे मनुष्योंमें मृदुताराहित हैं और संपूर्ण पापोंसे छूट जाते हैं

बुद्धिज्ञानमसंमोहः क्षमासत्यंदमःशमः ॥

सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥ ४ ॥

दोहा-बुद्धिज्ञानशमदमक्षमा, अव्याकुलताहोय ॥

सुखभवदुःखऔभावभय, औरअभयताजोय

हे अर्जुन ! बुद्धि, ज्ञान, अव्याकुलता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख; दुःख, उत्पात्ति, लय, भय और अभय ॥ ४ ॥

अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोऽयशः ॥

भवन्तिभावाभूतानामत्तएवपृथग्विधाः ॥

दोहा-तोष अहिंसा दानतप, समजसअजसौजान

जीवनकेसबभावए, मोतेहोतसमान ॥ ५ ॥

अहिंसा, समता. संतोष, तपस्या, दान, यश, अपकीर्ति ये सब प्राणियोंके पृथक् पृथक् भाव मुझहीसे होते हैं ॥ ५ ॥

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ॥

मद्भावामानसा जाता येषांलोकइमाःप्रजाः ॥

दोहा-सातौऋषिमुनिचारिमनु, मोमनतैजुउदोत

सबलोकनमाहींमेरे, हैं इनहीकेगोत ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! वसिष्ठादि सात महर्षि, सनकादिक चार आदि ऋषि तथा चौदह मनु ये सब मेरे मनसे प्रकट हुए हैं, इन्हींसे यह संपूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई है ॥ ६ ॥

एतांविभूतियोगंचममयो वेत्ति तत्त्वतः ॥

सोऽविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः ७

दोहा-मेरीयोगविभूतिको, तत्त्वज्ञानजोलेत ॥

निश्चलयोगहिसोलहै, रहतजुयाहीहेत ॥ ७ ॥

जो पुरुष मेरी इस विभूतिको तत्वसे जानते हैं वे निश्चलयोगसे युक्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥

इति मत्वा भजन्ते मां बुधाभावसमन्विताः

दोहा-मैंहोईश्वरजगतको, मोहीतेसबहोय ॥

ज्ञानवंतयहजानिकै, मोहीसेवतसोय ॥ ८ ॥

मैंही सबका उत्पत्ति कारण हूँ और सुझहीसे सबकी प्रवृत्ति होती है यह जानकर विवेकी पुरुष मेरा स्मरण करते हैं ॥ ८ ॥

मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयन्तः परस्परम् ॥

कथयन्तश्चमानित्यंतुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९

दोहा-प्राणचित्तमोमेंधरत. बोधपरस्परदेत ॥

मेरेचरितनिकहतनित, प्रीतिपरमसुखलेत ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! वे अहर्निशि सुझहीमें चित्त लगाये रहते हैं और अपने प्राणोंको सुझहीमें अर्पण किये रखते हैं, आपसमें एक दूसरेसे मेराही उपदेश करते हैं, मेरीही चर्चा करते हैं, इस प्रकार नित्य संतुष्ट रहते हैं और आनन्दमें मग्न रहते हैं ॥ ९ ॥

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥

ददामिवुद्धियोगंतयेन मामुपयांतिते ॥ १० ॥

दोहा--सेवतमोकोतेसदा, भक्तियोगकेभाय ॥

भलीबुद्धिमोसोलहत, रहतजुमोमेंआय १० ॥

हे अर्जुन! जो इस रीतिसे निरन्तर लगे रहते हैं और प्रीतिपूर्वक मेरा भजन करते हैं उनको मैं ऐसी बुद्धि देता हूँ जिससे वे सुखे प्राप्त होते हैं ॥

तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः ॥

नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता

दोहा--तमअज्ञानहिदूरकरि, दयावंतमेंहोत ॥

करहूंतिनकेहीयमें, ज्ञानदीपउद्योत ॥ ११ ॥

हे अर्जुन! ऐसेही पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आत्मभावमें स्थित जो मैं हूँ सो प्रकाशमान ज्ञानरूप दीपकसे उनके अज्ञानसे उत्पन्नहुए अंधकारको नष्ट कर देता हूँ ॥ ११ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमंभवान् ॥

पुरुषंशाश्वतंदिव्यमादिदेवमजंविभुम् १२

दोहा--पारब्रह्मपवित्रतुम, परमानंदकेधाम ॥

अविनाशीअजपुरुषहो, आदिदेवतुमनाम १२

यह सुन अर्जुन कहने लगा कि--हे श्रीकृष्ण! आप पखल्य हो, परम तेजोमय हो, परम पवित्र हो, नित्य पुरुष हो, दिव्य हो, आदिदेव हो, अज हो, विभु हो ॥ १२ ॥

आहुस्त्वामृषयःसर्वेदेवर्षिर्नारदस्तथा ॥

असितोदेवलोव्यासःस्वयंचैवब्रवीषिमे ॥१३॥

दोहा-सब ऋषि इहि विधिकहत हैं, नारद देवल जान
व्यास असित तुम हूँ कहत, तातै लीनै मानि ॥१३॥

हे कृष्ण ! सब ऋषि तथा देव ऋषि नारद, असित, देवल और
व्यास ये सब आपको परम पुरुष, अज, विशु कहते हैं और आ-
पभी स्वयं अपने ताँई ऐसाही बताते हो ॥ १३ ॥

सर्वमेतदृत मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥

नहितेभगवन्नव्यक्तिंविदुर्देवानदानवाः

दोहा-जो कुछ तुम मोसों कहत, मानत हौं सत भाया ॥

दानव देवन जानहीं, तुम प्रगटे को दाय ॥ १४ ॥

हे केशव ! जो कुछ आप कहते हैं और जो कुछ ये सब ऋषि गण
कहते हैं, इन सबको मैं सत्यही मानता हूँ क्योंकि-हे भगवन् !
देवता न दानव आपकी उत्पत्तिके कारणको जानते हैं ॥ १४ ॥

स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम ॥

भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते ॥ १५ ॥

दोहा-आपुनिकौं आपु हिलखौ, तुम पुरुषोत्तम देव
जीवन उपजावत हरत, पालत हो अधिदेव ॥१५॥

हे पुरुषोत्तम ! हे भूतेश ! (प्राणियोंके ईश्वर) हे भूतभावन !
(संपूर्ण प्राणियोंके नियन्ता) हे देवनके देव ! हे जगत्पते ! आपही

अपनेको जानते हो आपको दूसरा कोई नहीं जानता है ॥ १५ ॥

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्याह्यात्मविभूतयः ॥

याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्यतिष्ठसि

दोहा—निजविभूतिमोसों कहो, प्रभु की चित को चाव

जो विभूति श्रीकृष्णसा, रही जगत में छाये ॥ १६ ॥

हे श्रीकृष्ण! आपकी जो जो दिव्य विभूति हैं सो संपूर्ण मेरे साझने
काहिये, जिन विभूतियों के द्वारा आप इन लोकों में व्याप्त होकर स्थित हो

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वांसदापरिचिंतयन्

केषु केषु च भावेषु चित्येऽसि भगवन्मया ॥

दोहा—ध्याम तुमारो करत प्रभु, जानौ कैसे तोहि ॥

कौन पदारथ में लखौं, सो समझावो मोहि ॥ १७ ॥

हे योगी श्रीकृष्ण! आपका निरन्तर ध्यान करता हुआ मैं आपको
किस तरह जानूँ! हे भगवन् आपका ध्यान किन किन भावों में
करना योग्य है? ॥ १७ ॥

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ॥

भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥

दोहा—योगविभूति दुआपनी, कहिये मोसों देव ॥

मोको तृपति न होत है, सुनत अमरिस भेव ॥ १८ ॥

हे जनार्दन! आपकी प्राप्तिका उपाय योगैश्वर्य और विभूति
विस्तार पूर्वक मुझे सुनाइये, इस अमृतरूप आपकी वाणी के सुनते
सुनते मेरा मन तृप्त नहीं होता है ॥ १८ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

हंतते कथयिष्यामि दिव्याह्यात्मविभूतयः
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे

दोहा—अर्जुन तु मसों कहत हों, निज विभूति विस्तारि

मुख्यजितीतेई कहत, हिय के दृग्नि निहारि ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! मेरी जो दिव्य विभूति है, उनमें मुख्य मुख्य तुझे सुनाता हूँ, क्योंकि मेरी संपूर्ण विभूतियों के विस्तार का अन्त नहीं है। इससे प्रधान प्रधान सुनाता हूँ ॥ १९ ॥

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥

अहमादिश्च मध्यं च भूतानां मंत एव च ॥ २० ॥

दोहा—सब जीवन के ही मैं, मोहिं आत्मा जानि ॥

आदि अंत अरु मध्य हों, मोहि सब न में मानि ॥

हे गुडाकेश ! (जितेन्द्रिय अर्जुन) संपूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में रहनेवाला मैं संपूर्ण प्राणियों का अन्तर्यामी हूँ, मैं ही उनका आदि, मध्य और अवसान हूँ अर्थात् सबका उत्पन्न करनेवाला, पालनेवाला और संहार करनेवाला मैं ही हूँ ॥ २० ॥

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरं शुभान्

मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥

दोहा—आदित्य न में विष्णु हों, ज्योतिन में रवि देखि

वायुन मांझ मरीचि हों, नक्षत्र न शशिलेखि ॥ २१ ॥

हे अर्जुन ! बारह आदित्यों में विष्णु नाम आदित्य मैं हूँ, प्रकाश-

मान् ज्योतियोंमें अंशुमान् सूर्य मैं हूं, उनचास मस्तगणोंमें मरीचि-
नाम वायु मैं हूं, तारागणोंमें मैं चंद्रमा हूं ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः
इंद्रियाणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना

दोहा-सामवेदहो वेदमें, इंद्र अमरगणमां हिं ॥

जीवनमेंहो चेतना, मन इंद्रिनकैमां हिं ॥ २२ ॥

हे अर्जुन ! वेदोंमें सामवेद मैं हूं, देवताओंमें, इंद्र मैं हूं इंद्रियोंमें
मन मैं हूं और प्राणियोंमें चेतनाशक्ति मैं हूं ॥ २२ ॥

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्

दोहा-रुद्रनमें शंकर जुहा, यक्षनमां हिं धनेश ॥

पावकहो ही वसुनमें, सैलसुमेरुसुदेश ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! रुद्रोंमें शंकर मैं हूं, यक्षराक्षसोंमें कुबेर मैं हूं; आठ
वसुओंमें अग्नि मैं हूं, पर्वतोंमें सुमेरु मैं हूं ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यमां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्
सेनानीनामहं स्कंदः सरसामस्मि सागरः ॥

दोहा-देवपुरोहितमुख्यहो, मोहिं बृहस्पतिमानि ॥

षण्मुखसेनापतिनमें, सरमें सागर जानि ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! पुरोहितोंमें मुख्य बृहस्पति मुझकोही जान, सेनाप-
तियाम स्कन्द मैं हूं, सरोवरोंमें समुद्र मैं हूं ॥ २४ ॥

महर्षीणांभृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरम् ॥

यज्ञानांजपयज्ञोऽस्मिस्थावराणांहिमालयः

दोहा-हौंजुमहर्षिमांहिभृगु, वरननमेंओंकार ॥

यज्ञनमेंजपयज्ञहौं, स्थावरहिमआधार ॥२५॥

महर्षियोंमें भृगु मेंही हूं, बाणीमें एक अक्षर ओंकार में हूं, यज्ञोंमें जपयज्ञ में हूं, स्थावरोमें हिमालय में हूं ॥ २५ ॥

अश्वत्थःसर्ववृक्षाणांदेवर्षीणांचनारदः ॥

गंधर्वाणांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः॥

दोहा-वृक्षनमेंपीपरजुमें, ऋषिमेंनारददेव ॥

गंधर्वनमें चित्ररथ, सिद्धिकपिलमेंभेव ॥२६॥

संपूर्ण वृक्षोंमें पीपल मैं हूं, देवर्षियोंमें नारद मैं हूं, गंधर्वोंमें चित्ररथ मैं हूं, सिद्धोंमें कपिल मुनि में हूं ॥ २६ ॥

उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवम् ॥

ऐरावतंगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपम् २७

दोहा-अश्वनमेंउच्चैःश्रवा, गजऐरावतनाम ॥

हौंहीनृपहौंनरनमें, पीपतसवकोंकाम ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! घोड़ोंमें मुझे अमृतसे उत्पन्न उच्चैःश्रवा जान, हाथियोंमें ऐरावत और मनुष्योंमें राजा ऐरीही विश्रुति है ॥ २७ ॥

आयुधानामहंवज्रंभेनूनामस्मिकामधुक्

प्रजनश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः

दोहा-हथियारनमेंवज्रही. कामधेनुहैगाय ॥

कामप्रजाकरमाझहों, वासुकिसर्पनराय ॥२८॥

आयुधोंमें वज्र मैं हूँ, गौओंमें कामधेनु मैं हूँ, उत्पन्न करनेवाला
कामदेव मैं हूँ और सर्पोंमें वासुकि मैं हूँ ॥ २८ ॥

अनंतश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहम्
पितृणामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहम्

दोहा-नागनिमांहिअनंतहों, वरुणजुहोंजलजंतु ॥

पितरनमेंहोंअर्यमा, यमहोंसंयमवंतु ॥ २९ ॥

हे अर्जुन ! नागोंमें शेषनाग मैं हूँ, जलचरोंमें वरुण मैं हूँ, पित-
रोंमें अर्यमा मैं हूँ, शासन करनेवालोंमें यम मैं हूँ ॥ २९ ॥

प्रल्हादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहम्
मृगाणांचमृगेंद्रोहंवैनतेयश्चपक्षिणाम् ३०

दोहा-दैत्यनमें प्रल्हादहों, प्रेरनहारोकाल ॥

सिंहजुहोंसबमृगनमें, पंछिनमेंरिपुव्याल ॥३०॥

हे अर्जुन ! दैत्योंमें प्रल्हाद मैं हूँ; गणना करनेवालोंमें काल मैं
हूँ, मृगोंमें सिंह मैं हूँ और पक्षियोंमें गरुड मैं हूँ ॥ ३० ॥

पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहम् ॥

झषाणांमकरश्चास्मिस्रोतसामस्मिजान्हवी

दोहा-बेगवानमेंपवनहों, शस्त्रधारिनमेंराम ॥

जलजंतुनमेंमकरहों, नदीगंगअभिराम ॥३१॥

पवित्र करनेवालोंमें पवन मैं हूँ, शत्रुधारियोंमें राम मैं हूँ, मछलियोंमें मगर मैं हूँ, नदियोंमें गंगा मैं हूँ ॥ ३१ ॥

सर्गाणामादिरंतश्चमध्यं चैवाहमर्जुन ॥

अध्यात्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहम्

दोहा—सबकैआदिरुअंतहों, मध्यमोहिकोंमान ॥

तत्वबोधवादीनमें, होंअध्यात्मज्ञान ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! सृष्टिका आदि, मध्य और अंत में ही हूँ विद्याओंमें अध्यात्मविद्या मैं हूँ, वादियोंमें सिद्धांत में हूँ ॥ ३२ ॥

अक्षराणामकारोऽस्मिद्वंद्वःसामासिकस्यच

अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥

दोहा—अक्षरमाहिअकारहों, द्वंद्वसमासनजानि ॥

होंहीअक्षयकालहों, धातासबमेंमानि ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! अक्षरोंमें अकार मैंही हूँ, समासोंमें द्वन्द्व समास मैं हूँ, अक्षय काल मैं हूँ चारोंओर मुखवाला सबका भरणपोषण कर्त्ता मैं हूँ ॥

मृत्युःसर्वहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यताम् ॥

कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा

दोहा—सबकोंहोंहीसंहरतु, औरउपावनहार ॥

श्रीकीरतिसरस्वतिक्षमा, धृतिमतिहीनिरधार

हे अर्जुन ! सबका संहारकर्त्ता, मृत्यु मैं हूँ, सबका उत्पन्न करनेवाला मैं हूँ, स्त्रियोंमें कीर्ति, श्री, वाणी, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा मैं हूँ ॥ ३४ ॥

बृहत्सामतथासाम्नांगांयत्रीछंदसामहम् ॥

मासानांमार्गशीर्षोऽहमृतूनांकुसुमाकरः ॥

दोहा—महासामहोंसाममें, गायत्रीहोंछंद ॥

मारगसिरहोंमासमें, रितुवसंतसुखकंद ॥३५॥

हे अर्जुन! सामवेदके मंत्रोंमें बृहत्साम मैं हूँ, छन्दोंमें गायत्री छन्द मैं हूँ, मासोंमें मार्गशीर्षमास मैं हूँ, ऋतुओंमें वसन्त ऋतु मैं हूँ ॥३५॥

घृतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम्

जयोस्मिव्यवसायोस्मिसत्त्वंसत्त्ववतामहम्

दोहा—छलांघृतबलतेजहूँ, विजयिनमेंजयजानि ॥

उद्यमउद्योगीनमें, सत्त्वसात्त्विकिनमानि ॥३६॥

छलियोंमें जूआ, तेजस्वियोंमें तेज; विजयकर्ताओंमें जय, उद्यमियोंमें व्यवसाय और सत्त्ववालोंमें सत्त्व मैं हूँ ॥ ३६ ॥

समीक्षा—यहां घृतसे अभिप्राय दिव्य नीतिसे है. अर्थात् राजधर्ममें जो राजाओं द्वारा वरती जानेवाली राज नीति है वह भी उन २ पुरुषोंके कर्मानुसार सुझसेदी हुईही जान.

वृष्णीनांवासुदेवोऽस्मिपांडवानांधनंजयः

मुनीनामप्यहंव्यासःकवीनामुशनाकविः

दोहा—यदुकुलमें मैं कृष्णहों, पार्थपांडवनमांहि ॥

मुनिनमांझहोंव्यासमुनि, गनोशुक्रकवितांहि ॥

हे अर्जुन! वृष्णिवंशियोंमें वासुदेव मैं हूँ, पांडवोंमें धनंजय अर्थात्

अर्जुन मैं हूँ, मुनियोंमें व्यास मैं हूँ और कवियोंमें शुक्राचार्य मैं हूँ ॥
 दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीषताम
 मौनंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम्

दोहा-दंडवंतमेंदंडहों, नीतिवंतकोनीति ॥

ज्ञानिनमेंहीज्ञानहों, मौनदुरावनरीति ॥ ३८ ॥

हे अर्जुन ! दंड देनेवालोंमें दंड मैं हूँ; जीतनेकी इच्छा करनेवा-
 लोंमें नीति मैं हूँ. गुप्त करनेवाले उपायोमें मौन मैं हूँ और तत्त्वज्ञानि-
 योमें ज्ञान मैंही हूँ ॥ ३८ ॥

यच्चापिसर्वभूतानांबीजंतदहमर्जुन ॥

नतदस्ति विनायत्स्यान्मयाभूतंचराचरम्

दोहा-सबजीवनकोबीजहों, अर्जुनमोकोजानि ॥

थिरचरयासंसारमें, मोविनकछुनहिंमानि ३९

हे अर्जुन ! संपूर्ण प्राणियोंमें उत्पन्न करनेका बीज श्रुत कारण
 मैंहीहूँ; चराचर प्राणियोंमें ऐसा कोई नहीं है. जिसमें मैं नहीं हूँ अ-
 र्थात् मैं सबमें हूँ ॥ ३९ ॥

नांतोऽस्तिममदिव्यानांविभूतीनांपरंतप

एषतूद्देशतः प्रोक्तोविभूतेर्विस्तरोमया ॥

दोहा-मेरीदिव्यविभूतिको, अंत न जान्योजाय ॥

यहतोथोरोसोकहों, मोविभूतिकेभाय ॥४०॥

हे परंतप ! मेरी दिव्य विभूतियोंका अन्त नहीं है; न कोई

वर्णन कर सका है और जो कुछ मैंने अपनी विभूतियों का वर्णन किया है वह संक्षिप्त है ॥ ४० ॥

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमन्नृजितमेववा ॥

तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोऽशमंभवम् ॥

दोहा—जोकहुयासंसारमें, काहुगुणअधिकाय ॥

सांसबमेरातेजहै, दीनोतोहिबताय ॥

हे अर्जुन ! संसारमें जो जो वस्तु ऐश्वर्यवान् कान्तिमान् और श्रेष्ठ मान हैं उन सबको तू मेरे तेजसे उत्पन्न हुई मगझ ॥ ४१ ॥

अथवाबहुनैतेनकिंनतेनतवार्जुन ॥

विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत्

दोहा—बहुतकहातोमोंकहों, अर्जुनवानबनाय ॥

मवजगअपनेअंशते, मैराख्योठहराय ॥

चितइंद्रिन्केवशपन्थो, जोध्यावैअनुभूति ॥

सकलईशखिलखिये, दशमेंकहीविभूति ॥१॥

यहविभूतिप्रभुकीबिरन, विनवैआनन्दराम ॥

मोहिमहाप्रभुकीजिये, चिदानंदसुखधाम ॥२॥

अथवा हे अर्जुन ! इन सब बातोंके भिन्न भिन्न जाननेसे तेरा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा; तू इतनाही ज्ञान ले कि मैंने इस मय्युक्त जगत्को अपने एक अंशसे धारण कर रक्खा है ॥ ४२ ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें परमात्माकी विभूतियोंका विशेष रूपसे वर्णन किया गया है. जिससे मनुष्योंको ज्ञान हो जाय कि परमात्मा

की भक्ति और उपासना से उपरोक्त विभूतियोंमें से भक्त और उपासक जन जिस २ विभूतिकी इच्छा करके उसके लिये प्रयत्न करे तो उस २ विभूतिको प्राप्त करता है ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-
र्जुनसंवादे विचारदर्पणं दोहासहितभाषाटीकायां
विभूतियोगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें परमात्माकी विभूतियोंका वर्णन किया गया है अर्थात् भक्तजनोंको यह समझाया गया है कि इस संसारमें जितने भी आश्रय जनक और मनोहारी पदार्थ तुम देखो उनको देखकर उनमें मोहित मत होओ, प्रत्युतः यह विचार करो कि यह सब पदार्थ सर्व शक्तिमान् परमात्माने अपनी अद्भुत सामर्थ्य द्वारा प्रकृति (माया) के परमाणुओंसे रचे हैं, अतः अनित्य हैं। बुद्धिमानोंको अनित्य पदार्थोंमें न फँसकर उसी सर्वशक्तिमान् परमात्माकी भक्तिमें ही तत्पर होना चाहिये। परमात्मा की भक्तिसे ही स्थायी और नित्य एकरस आनंद प्राप्त होसकता है न कि इन अनित्य पदार्थों की प्राप्तिसे। यहाँ इस अध्यायका सारांश है।

[पृष्ठ १९६ से आगे]

[१२] देशकी हिन्दू [आर्य] समाजों, पंचायतों और विद्वन्मंडलीयोंको चाहिये कि प्रजाकी उत्थतिके लिये समय-पर राजाओं द्वारा उत्तम-नियम प्रजाकी कुरीतियों को दूर करनेके लिये बनवायें। राजाओंकी सेवामें प्रार्थन, पत्र उक्त नियमोंके मनाने और देशमें प्रचलित करनेके निमित्त भोजनेका पुरुषार्थ बग़ल करते रहें। एक दिन अवश्य सफलता प्राप्त होगी। राजाओंको भी चाहिये कि प्रजायें जोर-कूरी-तिथे देखें उनको बलपूर्वक हटाते आर्य, जैसा कि बड़ोदा महाराजने बालविवाह की कुरीति बलपूर्वक हटादी और जोधपुर महाराजने प्रजा का विवाहादि समयोंपर अतिव्यय करना हटा दिया, जिससे प्रजा बड़ी सुखी हो रही है।

[३५] हम लोगों को चाहिये कि, दुर्भिक्षके समय में भारत वर्षके सम्राट्, राजाओं और महाराजाओंसे प्रार्थना करें कि, भारतवर्षका अन्न यूरोप आदिदेशोंको, अर्थात् इस देशसे बाहर नहीं जाने पावे। अन्न बाहर चलेजाने से भारतवासी भूखों मरजाते हैं। यहाँ की प्रजा इतनी दरिद्र होगई है कि पचास वर्षपहिले जहाँ, राजासे लेकर प्रजातक सब की वार्षिक आय मिलाकर प्रत्येक मनुष्यके पीछे ३६) छत्तीस रुपया थी, वही आय अब प्रत्येक मनुष्यके पीछे २४) चौबीस रुपया वार्षिक रहगई है। साथही यह दुर्दशा होगई कि स्वायत्तपदार्थ भी पहिलेसे कई गुण महँगे होगये हैं, जिसका फल यह हुआ कि, यहाँ के सातकरोड़ मनुष्योंको दिन में एक बारही भोजन मिलता है और वे मनुष्य यह नहीं जानते कि, पेट भरके खाना किसको कहते हैं। उपरोक्त बातें प्रमाणोंद्वारा विद्वानों ने सिद्ध करदिखाई हैं।

[३४] गाजा, भांग, मदिरा, अहिफेन (अफीम) और अन्य २ मादक (नशीले) पदार्थों के प्रचार को कड़ाके नियमों द्वारा रूकवा देना चाहिये।

[३५] स्थानपर गोचर भूमि छोड़ी जानी चाहिये। राजाओंको चाहिये कि गौरक्षाके लिये पूराने यत्न करें, क्योंकि गौ जैसा उपकारी और पवित्र दूसरा पशु नहीं है। जैसा गुण गौके दूधमें वैद्यकशास्त्र में लिखा है, वैसा गुण किसी भी पशुके दूधमें नहीं है। वैसीही सर्वोत्तम गुण गौके घृत, दधि और तक्र [छाछ] में लिखे हैं। इसी प्रकार गोमूत्र और गोमय [गोबर] में भी बहुत गुण हैं। अधिक क्या कहें भारतवर्षकी प्रजाका जीवन घृत, दूध पर ही निर्भर है, जिस प्रकार गौ जातिकी बिनाश इस समय हो रहा है यदि इसी प्रकार होता रहा तो थोड़े कालमें ही घृत, दूध नामकी भी नहीं रहेंगे। भारतवर्षमें आजकल एक लाख गौ नश्य मारी जाती हैं; यह बप रूकना चाहिये; देशी राजाओंसे प्रार्थना की जाय कि वह लोग अपने २ राज्य से गौ जातिकी बाहर नहीं जाने दें। सुनाजाता है कि नरेश शिरोमणि वर्तमान धीकानेर नरेश महाराज श्रीगंगासिंहजी बहादुर ने यह प्रबन्ध अपने राज्य में कर रक्खा है।

[३६] भारतवर्ष के धनिक जमींदारों, तालुकेदारों और राजा महाराजाओं को चाहिये कि, अपनी २ भूमियोंमें अपने व्ययसे वैज्ञानिक रीति द्वारा खेती कराएं। भूमिकी आय बढ़नेसे देश को और उनको भारी लाभ होगा। दीन और दरिद्र कृषकों की सब प्रकारसे सहायता करें, इसीमें देशका भला होसका है।

[३७] स्वदेशकी बनी वस्तुओं, यथा कपड़ा आदिका सबको व्यवहार करना चाहिये। स्वदेशी शिल्पी लोगों और कलकारखाने वालोंको सहायता देनी चाहिये। देशी राजाओं को अपने २ राज्यों में कलकारखाने खोलने चाहिये, जिससे देशका व्यापार उत्कृष्ट होकर देश में धन और सम्पत्ति बढ़े। [अपूर्ण]

अथ एकादशोऽध्यायः ।

॥ अर्जुन उवाच ॥-

मदनुग्रहायपरमंगुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ॥

यत्त्वयोक्तंवचस्तेनमोहोऽयंविगतोमम १

दोहा-मोऊपरकीन्हीदया, अध्यात्म प्रगटाय ॥

वचनतुहारोसुनतही, मोहगयोजुनसाय ॥ १ ॥

भगवान्की बिभृतियोंका वर्णन सुन अर्जुनने कहा कि-हे श्री-
कृष्ण ! आपने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह करके जो महागूढ़ यह
अध्यात्मज्ञान सुनाया है, इससे मेरा सब मोह दूर हो गया है ॥ १ ॥

भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ॥

त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययम्

दोहा-जीवनकीउत्पत्तिसुनि, औरप्रलयकीरीति

कहीजुतुमविस्तारसों, निजमहात्मकीनीति ॥

हे श्रीकृष्ण ! मैंने प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयका वृत्तांत आपके
मुखसे विस्तारपूर्वक सुना और आपका अक्षय माहात्म्यभी सुना ॥

एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानंपरमेश्वर ॥

द्रष्टुमिच्छामितेरूपमैश्वरंपुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

दोहा-योंहीहोंज्योंकहतहों, हरितुहारोभेव ॥

देख्योचाहतहोंअबै, विश्वरूपजोदेव ॥ ३ ॥

हे परमेश्वर ! जैसा आपने अपना वर्णन किया आप वैसेही हैं, हे पुरुषोत्तम ! मैं ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज इन छः गुणोंसे युक्त आपके रूपका दर्शन किया चाहता हूं ॥ ३ ॥

मन्यसेयदितच्छक्यंमयाद्रष्टुमितिप्रभो ॥

योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥

दोहा—देखनयोगोमाहिजौ, जानतहौयदुराय ॥

अविनाशीनिजरूपतौ, दीजैमोहिदिखाय ॥४॥

हे कृष्ण ! जो आप यह समझतेहौ कि—मैं आपका वह रूप देख सकता हूं. हे योगेश्वर ! आप मुझे अपने इस अविनाशी रूपका दर्शन दीजिये ॥ ४ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोऽथसहस्रशः ॥

नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच

दोहा—अर्जुनअबतूदेखिले, शतसहस्रममरूप ॥

बहुतमांतिहैदिव्यजो, नानावरणअनूप ॥ ५ ॥

अर्जुनकी बात सुन भगवान् बोले—हे अर्जुन ! तू मेरे सैकड़ों, सहस्रों रूपोंको देख, ये मेरे रूप अनेक प्रकारके हैं, दिव्य हैं, अनेक वर्ण और अनेक आकृतियोंके हैं ॥ ५ ॥

पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा

बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥

दोहा-देखिरुद्रआदित्यवसु, अश्विनिसुतमोमाहिं
: औअचरंजकरूपजे, पहिलेदेखेनाहिं ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! (मेरे देहमें) आदित्य, वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार
और मरुद्गणोंको देख और उन उन आश्चर्ययुक्त बातोंको देख जो
तैने पहिले कभी नहीं देखी हैं ॥ ६ ॥

इहैकस्थंजगत्कृत्स्नं पश्याद्यसचराचरम् ॥

ममदेहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥

दोहा-एकठौरममदेहिले, थिरचररहेसमाय ॥

देख्योचाहतजोकछू, साँईदेउदिखाय ॥ ७ ॥

हे गुडाकेश ! इस मेरे देहमें चराचर संपूर्ण जगत्को एकही-स्था-
नपर इकट्ठा देखले, औरभी जिन जिन बातोंको तू देखना चाहता
है वे सबही देखले ॥ ७ ॥

नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ॥

दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ८

दोहा-इननयनोंनहिंदेखिये, देउं दिव्यदृगतोहिं ॥

योगेश्वरसंयुक्तजो, जैसेदेखेंमोहिं ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! तू अपने नेत्रोंसे मेरे रूपको न देख सकैगा- इससे मैं
तुझे दिव्य नेत्र देता हूँ इनसे मेरे षड्युगसंपन्न रूपको देख ॥ ८ ॥

॥ संजयउवाच ॥

एवमुक्त्वाततोराजनमहायोगेश्वरोहरिः ॥

दर्शयामासपार्थायपरमंरूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥

दोहा-हेराजनयोंबोलिकै, यांगेश्वरहरिराय ॥

विश्वरूपअर्जुनप्रती, अद्भुतदियोदिखाय ॥९॥

अब संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि-हे राजन् ! यह कहकर महा-योगेश्वर श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना परम ऐश्वर्य रूप दिखाया ॥ ९ ॥

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥

अनेकदिव्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥

दोहा-बहुआननलोचनबहुत, देखेअचरजहोत ॥

भूषितनानाभूषणनि, शस्त्रअनेकउदोत ॥ १० ॥

उस रूपमें अनेक मुख और अनेक नेत्र है, अनेक अद्भुत अद्भुत ऐश्वर्य है, अनेक दिव्य आभूषण हैं, अनेक प्रकारके दिव्य आयुध हैं ॥ १० ॥

दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् ॥

सर्वाश्चर्यमयंदेवमनंतंविश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥

दोहा-दिव्यहारदिव्यहिवसन, दिव्यसुगंधलगाय

॥ अनंतदेवमुखजिततितै, सबअचरजकेभाय ॥

हे धृतराष्ट्र ! वह रूप दिव्य माला और दिव्य वस्त्रधारी है, अनेक प्रकारके चन्दनादि सुगंधित पदार्थोंसे अवलिप्त है वह रूप सब प्रकारसे आश्चर्योंत्पादक, प्रकाशयुक्त और अन्तरहित है उसमें चारों ओर जिधर देखो उधर मुख हैं ॥ ११ ॥

दिविसूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥

यदिभाःसदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः

दोहा-सहसकरं विकाशमें, पूरि रहे सब ज्योति ॥

दीपतिता प्रभु की लखैं, तऊ न समता होति ॥ १२ ॥

जो आकाशमें सहस्र सूर्यों का प्रकाश एक साथ हो जाय तौ भी उस विश्वरूप भगवान् की कान्तिके समान कदाचित् ही हो सकता है अर्थात् सहस्र सूर्यों का प्रकाश भी उनकी कान्तिके समान नहीं है ॥

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥

अपश्य देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

दोहा-भिन्न भेद जे जगतमें, देखे सब इक ठाउँ ॥

देवदेव की देहमें, अर्जुन किते गिनाउँ ॥ १३ ॥

तब अर्जुन ने उस देवदेव के शरीरमें एक ही स्थान पर अनेक प्रकारसे स्थित संपूर्ण जगत देखा ॥ १३ ॥

ततः सविस्मया विष्टो हृष्टरो माधनं जयः ॥

प्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलि रभाषत ॥ १४ ॥

दोहा-ताको तब अचर जभयो, रोमहर्ष के दाय ॥

ता देवहि परनाम करि, बोल्यो चित को चाय ॥ १४ ॥

तब उस विश्वरूप का दर्शन करके अर्जुन को बड़ा विस्मय हुआ, शरीर के रोमांच खड़े होगये और वह सिर झुका हाथ जोड़ श्रीकृष्ण से कहने लगा ॥ १४ ॥

पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वास्तथा भू-
तविशेषसंघान् ॥ ब्रह्माण्मीशं कमलासन-

स्थमृषींश्चसर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५॥

दोहा—देखतहोंतवदेहमें, सवाथिरचरसुरसिद्ध ॥

कमलासनऋषिंशुनि, सबैनाममुमृद्ध ॥ १५ ॥

हे कृष्ण ! मैं आपके देहमें संपूर्ण देवताओंको तथा संपूर्ण ऋषियोंको तथा संपूर्ण दिव्य स्रष्टाओंको देखता हूँ ॥ १५ ॥

अनेकबाहुदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्व-
तोऽनंतरूपम् ॥ नांतं न मध्यंनपुनस्तवादिं
पश्यामिविश्वेश्वर विश्वरूपम् ॥ १६ ॥

दोहा—बहुतबाहुउदरोंबहुत, मैंदेखोंबहुशीस ॥

अंतआदिमधियहनहीं, तुमअनंतजगदीस ॥

हे विश्वेश्वर ! हे विश्वरूप ! आपके देहमें सब जगह मुझे अनेक श्रुआ अनेक उदर, अनेक मुख, अनेक नेत्र और अनन्त रूप दिखाई देते हैं, आपका आदि, मध्य वा अन्त कहीं भी दिखाई नहीं देता है ॥ १६ ॥

किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिं सर्वतो
दीप्तिमंतम् ॥ पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यं समं-
तादीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७॥

दोहा—मुकुटसीसकरचक्रगद, रूपराशिभगवान् ॥

दृगनिर्चोद्यचितवतलगत, होंरविअनलसमान

॥ भगवन् ! मुझे ऐसा दिखाई देता है कि-आप किरीट, गदा और

चक्र धारण कर रहे हैं, आप तेजःपुंज हैं, चार्गे ५० से आप दीप्तिमान हैं, आपका अग्नि और सूर्यके समान ऐसा प्रकाश है कि--देखनेसे आँखें चकाचौधमें पड़ती हैं, आपके अपरिमित रूप दिखाई देते हैं।
**त्वमक्षरंपरमंवेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं
 निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता स-
 नातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥**

दोहा-अक्षरहोतुमही परम, होसब जगतनिधान ॥
 अविनाशीरक्षकधरम, उत्तमहोअनुमान ॥ १ ॥
 जान्यो चाहत है जिते, जिनके जाननयोग ॥
 तुमहि सनातनहो सदा, कहत विवेकी लोग ॥ १८ ॥
 हे कृष्ण! सुसुश्रुजनोंसे जानने योग्य आपही अक्षर पावह्य हो, इस संसारके परम आधार स्वरूप आपही हो, आपही सनातनधर्मके रक्षक विनाशरहित हो- आपही सनातन पुरुष हो; यह मेरा मत है ॥ १८ ॥
**अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशि
 सूर्यनेत्रम् ॥ पश्यामित्वां दीप्तहुताशवक्त्रं-
 स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥**

दोहा-आदिअंतमधिरहिततुम, बहुश्रुजरविशशिनैन
 तुमरेमुखदीपतिअगनि, जगतप्रकाशतऐन ॥ १९ ॥
 हे कृष्ण! आपका आदि, मध्य व अन्त कुछ नहीं है, आपका पराक्रम अनन्त है, आपकी श्रुजा असंख्य हैं, सूर्य और चंद्रमा आपके नेत्र हैं

प्रज्वलित अग्निके समान आपका मुख है, अपने तेजसे इस संपूर्ण संसारको आप तप्त कर रहे हैं आप ऐसे सुझको दिखाई देते हैं १९
 द्यावापृथिव्योरिदमंतरंहिव्यासंत्वयैकेन-
 दिशश्चसर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लो-
 कत्रयंप्रव्यथितंमहात्मन् ॥ २० ॥

दोहा-गगनभूमिमधिसर्वदिशि, व्यापैतुमइकठैजु ॥
 अद्भुतरूपसुउग्रलखि, प्रविशितलोकसवैजु ॥

हे कृष्ण ! हे महात्मन् ! आकाश और पृथ्वीके बीचमें जो यह बड़ा भारी अन्तरिक्ष अर्थात् पोल है इस सबमें आप अकेलेही व्याप्त हो रहे हैं, संपूर्ण दिशाओंमें भी आपही व्याप्त हो रहे हैं आपके इस प्रचंड अद्भुत रूपको देखकर यह त्रिलोकी व्यथित हो रही है ॥ २० ॥

अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्भीताः प्रां-
 जलयो गृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वामहर्षिसि-
 द्धसंघाः स्तुवंतित्वांस्तुतिभिः पुष्कलाभिः

दोहा-पैठततौमें देवगण, विनयकरतभयमानि ॥

ऋषिअरुसिद्धसमाजहू, तेऐकरतबखानि ॥ २१ ॥

हे कृष्ण ! ये देवताओंके समूह भयके मारे आपके शरण आये हैं किन्तुनेही भयभीत होकर दूर खड़े खड़े हाथ जोड़े हुए आपकी प्रार्थना करते हैं ये महर्षि और सिद्धोंके झुंडके झुंड स्वस्ति वचन करके अनेक प्रकारकी स्तुतिसे आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥ २१ ॥

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्याविश्वेऽश्विनौ
मरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसं-
घावीक्ष्यंतेत्वांविस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥

दोहा—रुद्रसिद्धआदित्यवसु, अश्विनिविश्वेदेव ॥

साध्ययक्षगंधर्वसुर, मरुतनपावेभेव ॥ १ ॥

पितरउष्मपा नामजे, दैत्यविरोचनआदि ॥

एसवविस्मैपाइकै, देखततोहिअनादि ॥ २२ ॥

हे कृष्ण ! एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य अष्टवसु, साध्यनामक देवता, विश्वेदेव, दो अश्विनीकुमार, उनचास मरुद्गण, ऊष्मपा नामक पितर और गंधर्व, यक्ष, देवता तथा सिद्धोंके समूह ये सब विस्मित होकर तुम्हें देखते हैं ॥ २२ ॥

रूपंमहत्तेबहुवक्त्रनेत्रंमहाबाहो बहुबा-
हूरुपादम् ॥ बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालंदृष्ट्वालो-
काःप्रव्यथितास्तथाहम् ॥ २३ ॥

दोहा—रूपवडोबहुमुखनयन, भुजपदअरुउदरोंजु

देखिभयानकदाढबहु, विथितलोकअरुहोंजु ॥

हे कृष्ण ! हे महाबाहो ! आपके असंख्य मुख और नेत्र हैं, असंख्य भुजा, उरु और चरण हैं, आपके असंख्य उदर हैं और असंख्य दाढ़ोंसे आपका रूप बड़ा कराल दिखाई देता है. इस रूपको देखकर सब लोक डर गये हैं और मैंभी डरके मारे व्याकुल हो रहा हूँ ॥ २३ ॥

नभः स्पृशं दीप्तमनेकवर्णव्यात्ताननंदीप्त-
विशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वा हित्वां प्रव्यथितांतरा-
त्मा धृतिं न विंदामिशमंच विष्णो ॥ २४ ॥

दोहा—पायपुटमिआकाशशिर. दीरघदृगमुखधाय ॥
ऐसेतुमको देखिकै, धीरजगयो पलाय ॥ २४ ॥

हे विष्णो ! यह आपका देह इतना बड़ा है कि—आकाशको स्पर्श करता है, बड़ा प्रकाशमान है, अनेक वर्णोंसे युक्त है, उसमें बड़ा विस्तीर्ण मुख है, प्रज्वलित दंढे बड़े नेत्र हैं, इस रूपको देखकर मेरा अन्तरात्मा बड़ा व्याकुल होगया है और किसी प्रकारसे भी धीरज और शान्ति ग्रहण नहीं करता हूँ ॥ २४ ॥

दंष्ट्राकरालानि च तं मुखानि दृष्ट्वैव कालानल-
सन्निभानि ॥ दिशो न जाने नलभे च शर्म प्र-
सीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥

दोहा—कालअगनिसमदादृत्तव, नो देखे भयभीति
दिसभूलीमुखदृगयो, अबकीजैप्रभुप्रीति ॥ २५ ॥

हे देवेश ! हे जगन्निवास ! कालानलके सदृश बड़ीबड़ी विकराल दंढवाले आपके मुखोंको देखकर मैं ऐसा भयभीत होगया हूँ कि मैं दिशाओंका ज्ञान नहीं रहा है. मैं सुझमें शान्ति प्राप्त होती है. इससे हे भगवन् ! आप कृपया प्रसन्न हजिये ॥ २५ ॥

अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राःसर्वेसहैवावनि
पालसंघैः॥भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथाऽसौ
सहास्मदीयैरपियोधमुख्यैः ॥ २६ ॥

दोहा-पूतसबै धृतराष्ट्रके, सबनृपतिनकेसंग ॥

कर्णद्रोणभीषमजिते, यांधाहैमोअंग ॥ २६ ॥

हे कृष्ण ! धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक सब पुत्र सम्पूर्ण गजाओंके समूहोंके साथ आपके सुखमें प्रवेश करते दिखाई देते हैं. भीष्म द्रोणाचार्य और सूतपुत्र कर्ण आपके सुखमें प्रवेश कर रहे हैं और हमोगभी शिरुंही. धृष्टद्युम्नादिक बड़े बड़े मुख्य योधा आपके सुखमें प्रवेश करते दिखाई देते हैं ॥ २६ ॥

वक्राणितेत्वग्भाणाविशंतिदंष्ट्राकराला-
निभयानकानि ॥ केचिद्विलग्नादशनांतरे-
पुसंदृश्यंतेचूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

दोहा-तुगततिहारेबदनमें, सबैपरतहैंधाय ॥

कोऊनाहनतगदले, कोउरहेलपटाय ॥ २७ ॥

ये सब आपके कराल दाढ़ोंवाले मुखोंमें जल्दी जल्दी प्रवेश कर रहे हैं. इनमेंसे कितनोंहोंके सिंग चूर्ण होगये हैं और वे आपके दांतोंमें उलझ रहे हैं ॥ २७ ॥

यथानदीनांबहवोऽबुवेगाःसमुद्रमेवाभि-

मुखाद्रवंति ॥ तथातवांमर्नरलोकवीरा-
विशंतिवक्राण्यभिविज्ज्वलंति ॥ २८ ॥

दोहा-ज्योंसरिताबर्पाक्रतुहि, परतसिंधुमेंजाय ॥

त्योन्तपतेरेवदनमें, सबैपरतहैंआय ॥ २८ ॥

हे कृष्ण! जैसे नदियोंकी अनेक शाखा समुद्रहीकी ओर दौडती हैं.
वैसेही ये नरवीर तुझारे जाज्वल्यमान सुखोंमें शीघ्रतासे प्रवेश कर रहे हैं.

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशंति नाशा-
य समृद्धवेगाः ॥ तथैव नाशाय विशंति
लोकास्तवापि वक्राणि समृद्धवेगाः ॥ २९

दोहा-ज्योंपतंगपरिदीपमें, लहतआपनोनास ॥

तैसेसबन्तपपरतहैं, तेरे मुखकेपास ॥ २९ ॥

हे कृष्ण ! जैसे अत्यन्त वेगवती पतंग अपने नाशके लिये बड़े
वेगसे जलती हुई अग्निमें घुसी चली जाती है. ऐसेही ये सब लोक
अपने नाशके लिये आपके मुखमें घुसे चले जा रहे हैं ॥ २९ ॥

ललितह्यसे ग्रसमानः समताल्लोकान्समग्रा-
न्वदनैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्य जगत्स-
मग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपंति विष्णो ॥ ३०

दोहा-लीलतहौतिनकोजुलै, रसनासोंलपटाय ॥

कांतिरावरीजगतको, देततापबहुभाय ॥ ३० ॥

हे कृष्ण ! आप अपने प्रज्वलित मुखोंसे संपूर्ण लोकोंको चारों-
ओरसे ग्रसतेहुए चाटे जाते हो अर्थात् आप सब दृश्यमान पदार्थों
का भक्षण कर रहे हो, और आपकी उग्रकांति सब जगत्को अपने
तेजसे परिपूरित करके तप्त कर रहे हो ॥ ३० ॥

**आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु
ते देववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवं-
तमाद्यं नहि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ३१**

दोहा—उग्ररूपतुमकौनहौ, मोसोंकहियेदेव ॥

जान्योँचाहतहोँअबै, तुमचरितनकोभेव ॥३१

हे कृष्ण ! आप ऐसे उग्र रूपवाले कौन हैं ? सो कहो, मैं आपको
वारंवार नमस्कार करता हूँ, मैं आपकी प्रवृत्ति अर्थात् आपकी
कुछभी बात नहीं जानता हूँ, इससे मैं आप आदि पुरुषके विषयमें
जानना चाहता हूँ, हे देवश्रेष्ठ ! आप कृपा करके मुझे बतलाइये ३१

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

**कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्स-
माहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽपि त्वां न भवि-
ष्यंति सर्वेयेऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः**

दोहा—कालरूपवहैहोतहोँ, सबकोँ मारनहार ॥

तोविनुसबयोधानकोँ, भखिजैहोँनिरधार ३२

हे अर्जुन ! मैं लोकक्षयकारी प्रवृद्ध काल हूँ, मैं यहां इन लोकोंका
संहार करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ, ये बड़े बड़े योधा जो सेनाओंमें

खड़े हुए हैं, इनको जो तू नहीं मारेगा तौभी ये तौ मारेद्वेगें ॥३२॥

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा श-
त्रून् भुक्त्वा राज्यं समृद्धम् ॥ मयैवैते निहताः
पूर्वमेव निमित्तमात्रं भवसव्यसाचिन् ३३

दोहा-तातेउठिरणजीतले, लैकीरतिअरुराज ॥

मैंहनिराखेहैंनृपति, सबऐतेरेकाज ॥ ३२ ॥

इससे हे, अर्जुन! तू कमरकस खड़ा होजा, और शत्रुओंको जीतकर
कीर्ति प्राप्तकर इस समृद्धराज्यको भोग, ये तौ सब मुझसे पहिलेही
मारेहुए हैं, हे सव्यसाचिन् ! तू तो केवल निमित्तमात्र होजा ॥३३॥

द्रोणंचभीष्मंचजयद्रथंचकर्णतथाऽन्यान-
पियोधवीरान् ॥ मयाहतांस्त्वंजहिमांव्य-
थिष्ठायुद्धयस्व जेतासि रणे सपत्नान् ३४

दोहा-भीष्मद्रोणअरुजयद्रथहिं, करणआदिजेऔर
मेरेमारेमारतू, शत्रुयुद्धइकठौर ॥ ३४ ॥

हू अर्जुन! द्रोण, भीष्म, जयद्रथ कर्ण तथा औरभी बड़े बड़े शूरवीर
योधा मुझसे मारेहुए हैं तू इन मेरे मारेहुओंही को मार, दुखी होनेकी
कोई बात नहीं है, उठकर लड़, तू रणमें अवश्य शत्रुओंको जीतैगा ॥

॥ संजय उवाच ॥

एतच्छ्रुत्वावचनंकेशवस्यकृतांजलिर्वेप-

मानःकिरीटी ॥ नमस्कृत्वाभूयएवाहकृष्णं
सगद्गदंभीतभीतःप्रणम्य ॥ ३५ ॥

दोहा—बचनसुनेश्रीकृष्णके, कांपीअर्जुनदेह ॥

तबप्रभुकोपदलागिकै, बोल्योबचनसनेह ॥३५॥

अब संजय धृतराष्ट्रसे कहते हैं कि हे राजन् ! केशवकी ऐसी ऐसी
बातें सुनकर अर्जुन कांपने लगा हाथ जोड़ बार बार नमस्कार करता
था और डरके मारे व्याकुल हो फिर नमस्कार कर गद्गद वाणीसे
कृष्णसे कहने लगा ॥ ३५ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

स्थानेहृषीकेशतवप्रकीर्त्याजगत्प्रहृष्य-
त्यनुरज्यतेच ॥ रक्षांसिभीतानिदिशोद्रव-
न्तिसर्वेनमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

दोहा—सबजगकोयहजगतहै, रहैतुमहिअनुरागि॥

सिद्धनवततोकोसदा, राक्षसजातजुभागि ॥३६॥

हे हृषीकेश ! आपका प्रभाव अति अद्भुत और कीर्ति अतुलनीय
है इसीसे यह सब जगत् हर्षित होताहै, और आपमें अनुराग करता
है राक्षस भयभीत होकर दिशाविदिशाओंमें भागे फिरते हैं और सं-
पूर्ण सिद्धोंके समूह आपको नमस्कार करते हैं यह योग्यही है, इसमें
कोई आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ३६ ॥

कस्माच्चतेननमेरन्महात्मनृगरीयसेब्रह्म-

णोऽप्यादिकर्त्रे ॥ अनन्तदेवेशजगन्निवास
त्वमक्षरंसदसत्तत्परंयत ॥ ३७ ॥

दोहा—क्यों न नवै तुमको सबै, ब्रह्माके करतार ॥

जगतई शअक्षर अनंत, तुम सब ते हो पार ॥ ३७ ॥

हे महात्मन् ! हे अनन्त ! हे देवेश ! हे जगन्निवास ! तुमको सब-
लोक नमस्कार क्यों न करे, क्योंकि आप तौ ब्रह्मासे भी बड़े हैं और
सबके आदिकर्त्ता हैं तथा सत् और अमत् के मूल कारणरूप अक्षर
अर्थात् अविनाशी हैं इससे सबका आपको नमस्कार करना योग्य ही है।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य
परं निधानम् ॥ वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च द्या
मत्त्वया तत्तं विश्वमनन्तरूप ॥ ३८ ॥

दोहा—पुरुष पुरातन आदिहो, तुमही जगत निधान ॥

तुम यह सब जग विस्तार्यो, जानत तुमही ज्ञान ॥

हे कृष्ण ! आप आदिदेव और पुराणपुरुष हो, इस संपूर्ण विश्वके
आपही लयस्थान हो, इस संपूर्ण विश्वके ज्ञाता आप हो, जो कुछ
जानने योग्य वस्तु है सो आपही हो, परं धाम अर्थात् मोक्षस्थान भी
आपही हो यह संपूर्ण विश्व आपके अनन्त रूपसे व्याप्त है ॥ ३८ ॥

वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्र
पितामहश्च ॥ नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्तं ॥ ३९ ॥

दोहा—वायुप्रजोपतिअग्नि यम वरुण पितामहचंद्र ॥

बारवारसहसनि सतनि, प्रणवततोहिमुकुंद ॥

हे कृष्ण । वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा और ब्रह्माके पितामहभी आपही हैं इससे आपको सहस्रबार नमस्कार है और फिरभी आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥ ३९ ॥

नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोऽस्तुतेसर्वतए
वसर्व ॥ अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्व-
समाप्नोषिततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥

दोहा—आगेतेतुमकोनवत, पाछेहूजुअनंत ॥

सर्वदिशानितुमकोनवत, अमितप्रबलभगवंत
हे सर्वेश्वर । आपके सम्मुखसे नमस्कार है पीछेसे नमस्कार है,
चारों ओरसे नमस्कार है, आप अनन्तवीर्य और अनन्त पराक्रमसे
युक्त हो सबमें व्यापक हो इसीसे आप सर्व हो ॥ ४० ॥

सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्णहेयादवहे-
सखेति ॥ अजानता महिमानं तवेदं म-
याप्रमादात्प्रणयेनवापि ॥ ४१ ॥

दोहा—मित्रजानिजोमैंकही, सोसुनियेहो देव ॥

जानौकहाजुबावरो, तवमहिमाकोभेव ॥ १ ॥

हे यादव हे कृष्ण हे, सखाकह्यौं अनजानि ॥

अथवाकह्योसनेहसों, क्षमियेसेवकमानि ॥

मैं आपको अपना सखा जानकर जो आपसे हे योंदव ! हैं कृष्ण !
हे सखा ! यह दिखाईसे कहा करताथा इसका यह कारण था कि मैं
आपकी इस महिमाको नहीं जानता था, यह मेरा बड़ा प्रमाद था
अथवा स्नेहके वशीभूत हो (अर्थात् आपको अपना मामाका बेटा
नातेदार समझकर) मैं आपसे ऐसा कहा करताथा ॥ ४१ ॥

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसिविहारशय्या-
सनभोजनेषु ॥ एकोऽथवाऽप्यच्युततत्स-
मक्षंतत्क्षामयेत्वा महमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

दोहा-भोजनशयनविहारमें, कियो अनादरमाय ॥

तेजुक्षमासवकीजिये, प्रभुजूकेशौराय ॥ ४२ ॥

हे अच्युत ! खेलनेके समय, सोनेके समय, बैठनेके समय, वा
भोजन करते समय एकान्तमें अथवा बहुत लोगोंके सन्मुख जो मैंने
आपकी हैंसी की हो और इस प्रकारकी हैंसीसे आपका अनादर किया
हो सो मैं आपसे क्षमा कराता हूँ. आपका प्रभाव अप्रमेय है अर्थात्
उसका किसी प्रकार परिमाण नहीं हो सकता है ॥ ४२ ॥

पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपुज्य-
श्वगुरुर्गरीयान् ॥ नत्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः
कुतोऽन्योलोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥

दोहा-पिताजुतुमसंसारके, तुमहीगुरुहो ईश ॥

तुमपटतरकोऊनहीं, अधिककोउजगदीश ॥

हे अपरमितप्रभावशालिन् ! आप इस चराचर जगत्के पालनकर्ता

पिता हों, आपही पूज्य हो और महान् गुरुहो, तीनों लोकमें आपकी बराबर कोई नहीं है फिर आपसे अधिक और कैसे कोई हो सकता है॥

तस्मात्प्रणम्यप्रणिधायकार्यं प्रसादयेत्वा-

महमीशमीढ्यम् ॥ पितेव पुत्रस्य सखेव स-

ख्युः प्रियः प्रियायार्हासि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥

दोहा-अस्तु तियोग्य सुईशहौ, क्षमो दोषजो मोहि॥

ज्यो पित सुतको पति प्रियहि, मित्र मित्रको जोहि

हे कृष्ण ! आप ईश्वर हो, आपही स्तुतिके योग्य हो ऐसे आपको मैं साष्टांग दंडवत् करता हूँ आप मुझपर प्रसन्न हूँ जिये, हे देव ! आप मेरे अपराधोंको सहन कर ऐसे क्षमा कर सकते हो, जैसे पिता पुत्रके, मित्र मित्रके और पति अपनी स्त्रीके अपराधोंको सहन कर क्षमा कर देता है॥

अदृष्टपूर्वत् पितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्य-

थितं मनो मे ॥ तदेव मे दर्शय देवरूपं प्रसीद

देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥

दोहा-पहिलो रूप दिखाइये, हौं जीऊं वाजोइ ॥

रूपानि रखय हरावरो, मोहिं हर्ष भय होइ ॥ ४५ ॥

हे कृष्ण ! आपका ऐसा अद्भुत रूप पहिले कभी नहीं देखा था इस अद्भुत रूपको देखकर मेरा मन बड़ा हर्षित हुआ है और भयके मारे मेरा मन व्याकुल हो रहा है इससे मुझको वही अपना पहिला रूप दिखाइये. हे देवेश ! हे जगन्निवास ! आप मुझपर प्रसन्न हूँ जिये ॥ ४५ ॥

किरीटिनं गदिनंचक्रहस्तमिच्छामि त्वां-
द्रष्टुमहं तथैव ॥ तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनस-
हस्रबाहोभवविश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

दोहा—सुकुटविराजैसीसपर, गदाचक्रतुवहाथ ॥

इहिविधि मोहिदिखाइये, प्रभुहोतुमजगनाथ ॥३॥

चारिभुजाधरिप्रगटवहै, मोकोदरशनदेहु ॥

तवमूरतिजुअनँतहैं, मेरोवासोनेहु ॥ ४६ ॥

हे सहस्रबाहो ! हे विश्वमूर्ते ! मैं आपका वही किरीट सुकुट युक्त गदाचक्रधारी रूप देखना चाहता हूँ अतएव वही पहिलासा चतुर्भुज रूप धारण करलीजिये ॥ ४६ ॥

समीक्षा—यहां चतुर्भुजरूपसे यह अभिप्राय है कि आप धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारों पदार्थोंको स्वयं रखते हुये, भक्तजनोंको उनकी प्राप्तिका मार्ग बताकर उनकी प्राप्तिमें सहायिक बन सके हो-

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मयाप्रसन्नेनतवार्जुनेदंरूपंपरंदर्शितमात्म-
योगात् ॥ तेजोमयंविश्वमनन्तमाद्यंयन्मे-
त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

दोहा—तोहिंदिखायोरूपमें, अतिप्रसन्नचितहोया ॥

आदिअंतसोंतेजमय, देखिसकैनहिंकोय ॥४७॥

यह बात सुनकर भगवान् बोले—हे अर्जुन ! मेरा यह तेजोमय,

विश्वरूप, अनन्त और आद्य परमरूप है, यह तेरे सिवाय अबतक किसीने भी नहीं देखा है, तुझपर अत्यन्त प्रसन्न होकर आत्मयोगसे तुझे दिखाया है (इसे देखकर तू क्यों डरता है ?)

नवेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्नचक्रियाभिर्नत-
पोभिरुग्रैः ॥ एवरूपःशक्यअहंनृलोकेद्र-
ष्टुंत्वदन्येनकुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

दोहा—वेदयज्ञअध्ययनतप, क्रियाकरतपुनिदान ॥

ऐसेमेरेरूपको, तो विनुलखै न आन ॥ ४८ ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! मेरे इस रूपको तेरे सिवाय कोई वेदाध्ययन, यज्ञसाधन, दान, अग्निहोत्रादिक कर्म, वा उग्र तप करके देखना चाहै, तो नहीं देखसकता है ॥ ४८ ॥

मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्टारूपंधोर-
मीदृङ्ममेदम् ॥ व्यपेतभीःप्रीतमनाःपु-
नस्त्वंतदेवमेरूपमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

दोहा—रूपभयानकदेखिकै, तू जनि हियहि डराहि

अबभयकोतूदूरिकरि, मेरेरूपहिचाहि ॥ ४९ ॥

घोररूपदेखौविथा, पावैजनिपुनिमोय ॥

लखिपहिलोईरूपयह, परसननिरभयहोय ॥ ४९ ॥

हे अर्जुन ! मेरे इस घोर रूपको देखकर तू क्यों व्यथित होता है. व्याकुल मत हो और अपनी मूढताको छोड़दे. निडर होकर प्रसन्न चित्तसे मेरे इस पहिले रूपको फिर देख ॥ ४९ ॥

॥ संजय उवाच ॥

इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्श-
यामास भूयः ॥ आश्वासयामास च भीतमे-
नं भुत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

दोहा—अर्जुन सो ऐसे कह्यो, पहिलो वपु प्रगटाय ॥

समाधान बह्विधिकियो, भयते लियो बचाय ॥

अब संजय कहते हैं कि—हे धृतराष्ट्र ! श्रीकृष्णने अर्जुनसे यह कह अपना पहिला चतुर्भुज रूप फिर दिखाया और उस महात्माने अपना पहिला सा शान्तरूप फिर धारण कर डरे हुए अर्जुनका आश्वासन किया ॥ ५० ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन ॥

इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥

दोहा—रूप अनूप मतुमधन्यो, तारूपहिको देखि ॥

प्रकृतिलह्यो मैं आपुनी, भयो सुचेत विशेषि ॥ ५१ ॥

तब अर्जुन कहने लगा कि—हे जनार्दन ! आपका यह शान्तिमय मनुष्य रूप देखकर अब मैं सावधान होगया हूँ और मेरा जी ठिकाने आगया है, सब भय जाता रहा है ॥ ५१ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम ॥

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ५२

दोहा—देख्यो परतन रूप यह, जो देख्यो तैं मित्त ॥

तास्वरूप को देवता, देख्यो चाहत नित्त ॥ ५२ ॥

भगवान् बोले—हे अर्जुन । जो मेरा अत्यन्त दुर्दर्श रूप तैंने देखा है इस रूप को देखने को देवता भी सदा तरसते रहते हैं ॥ ५२ ॥

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ॥

शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥

दोहा—दान यज्ञ तप विधिकिये, मोहि न देखै कोय ॥

विन श्रम पारथ तू अबै, मो को रह्या जु जोय ॥ ५३ ॥

हे अर्जुन । जैसा मेरा रूप तुमने देखा है ऐसे मेरे रूप को कोई वेदाध्ययन, तपस्या, दान वा यज्ञादि कर्मद्वारा नहीं देख सकता है ॥ ५३ ॥

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन

ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

दोहा—भक्ति अनन्य जु जो करै, सो देखै या भाय ॥

नीके जाने मोहि सो, मोमें रहै समाय ॥ ५४ ॥

हे अर्जुन । हे परंतप । मेरा जो ऐसा विश्वरूप है इसको मनुष्य अनन्य भक्ति द्वारा जान सकते हैं वा देख सकते हैं और तत्त्वज्ञान-द्वारा इसमें लीन हो सकते हैं ॥ ५४ ॥

मत्कर्मकृन्मत्परमो भद्रक्तः सङ्गवर्जितः ॥

निर्वैरः सर्वभूतेषु यः समासेति पाण्डव ॥ ५५ ॥

दोहा—मो निमित्त कर्म न करै, सजै भक्ति तजि और ॥

बैरनका हूँ सोंकरे, मोमें लहै सुठौर ॥ ५५ ॥
 वेदयज्ञतपकोटितें, कबहुन देख्यो जाय ॥
 विश्वरूप भगवानसो, भक्ताहिं दियो दिखाय ॥ १ ॥
 एकादश अध्यायमें, विश्वरूपको भेव ॥
 कह्यो कृष्ण समझाई कै, लखि अर्जुन की सेव ॥ २ ॥
 विश्वरूप नीके वरनि, इहिविधि आनंदराम ॥
 पायो प्रभु पूरन परम, उरमें धरि घन श्याम ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई मनुष्य मेरी ही प्रीति के लिये लौकिक वा वैदिक कर्म करते है; सुखीको अपना पुरुषार्थ मानते हैं, सुखीमें भक्ति रखते है; सब सांसारिक संगोले सुख मोड चुके हैं; सम्पूर्ण प्राणिमात्रसे बैर छोड़ प्रीति रखते हैं, वेही सुखको प्राप्त हो सकते हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
 श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां
 विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

समीक्षा—इस अध्यायमें अर्जुन को विश्वदर्शन करानेका वर्णन है। विश्वदर्शन के ज्ञान से अर्जुनको यह पूर्ण विश्वास हो गया कि कठिन से कठिन कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो मरमात्माकी शक्ति से परे हो अतः परमकल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्योंको मरमात्माके अनन्य भक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। यही इस अध्यायका सारांश है।

[पृष्ठ २१२ से आगे]

[३८] हमारे देश में यह बड़ी कुप्रथा पढ़ गई है कि संतान नहीं होनेपर सम्पत्ति एक नवयुवक को दत्तक पुत्र बनाकर दे जाते हैं और प्रायः इस बात

कोई भी ध्यान नहीं रखता जाता कि वह नवयुवक धर्मात्मा, देशभक्त और पूर्ण विद्वान् ही सकेगा या नहीं। इसका भयंकर परिणाम बहुत जगह तो यह देखने में आता है कि, वह नवयुवक उस सम्पत्तिको नष्ट भ्रष्ट कर देता है और अपनेको तथा अपने कुटुम्बवालोंको कलंकित बना देता है। इस लिये हमको चाहिये कि, यदि अपने कुटुम्बमें कोई योग्य और धर्मात्मा पुरुष अपना भाई या उसकी संतानमेंसे हो, तो सम्पत्ति का कुछ भाग उस को देकर शेष सम्पत्ति किसी उच्चम जातीय संस्था में लगा दें।

एकही मनुष्यको अपनी सम्पत्ति देनेकी जगह किसी जातीय संस्थाके एक से अधिक मनुष्योंको सम्पत्ति सौंपकर जाना अधिक उच्चम और श्रेष्ठ कार्य है।

हम लोगों को यहभी चाहिये कि, अपने २ पुण्य सम्बन्धी कामों को मिलकर विचार के साथ करें। किसी एक सभा द्वारा यह रुपया व्यय किया जायगा तो बहुत उपयोगी कामोंमें लग सकेगा।

यह ध्यान रहे कि मनुष्यकी दशा सदा एकसी नहीं बनी रहती है; आज जो धनिक है कल दैवयोगसे वही निर्धन होसका है। अतः हमको चाहिये कि अपनी उच्चम दशामें ही अपना बहुतसा रुपया जातीय संस्थाओंमें लगा दें, इससे बड़ा भारी लाभ यह होगा कि हमारी हीन दशामें हमारी संतानोंको इन्हीं जातीय संस्थाओं द्वारा ज्ञान और विद्या प्राप्तिमें पूर्ण सहायता मिलसकेगी जिससे यह पुनः अपनी पूर्व उच्चम दशाको प्राप्त करलेंगे। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन जातीय संस्थाओंको रुपये की सहायता देना एक प्रकारका अपना ही स्वार्थ है।

[३९] प्राचीन मंदिरोंका जीर्णोद्धार होता रहना चाहिये, चाहे वह किसीके बनाये हुए हों और नये मंदिर बनाने वालोंको चाहिये कि अनेक देवोंके नाम से मंदिर न बनवाकर श्रीविष्णु भगवान् के अवतारों [श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण महाराज आदि] और शिव तथा देवीके नामसे बनवायें। छोटे देवताओं की मूर्तियाँ इन्हीं प्रधान देवोंकी मूर्तियोंके साथ रहें यथा रामचंद्रजीके मंदिरमें हनुमानजीकी प्रतिमा और शिवजीके मंदिरमें श्रीगणेशजी की और देवीके मंदिरमें भैरवकी प्रतिमा रहे। स्मरण रखना चाहिये कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवी यह सब एक ही परमेश्वर के अनेक नाम हैं, कोई उसको देवी के नाम से माता करके पूजता है और कोई विष्णु, शिवादि के नामसे पिता करके पूजता है; इस लिये एक परमेश्वर को छोड़ कर अन्य क्षुद्रदेवोंके नाम से मंदिर न करावें। गीतामें लिखा है:-

श्लोक—अंतवत्सु फलं तेषां तद्भवत्यल्प मेधसा । देवान् देवयजो यांति यज्ञकायांति मामपि ॥ गी. अ. ७ श्लो० २३ ॥

(अर्थ) देवता आदिको जो पूजने वाले हैं वह अल्प बुद्धि वाले मनुष्य हैं, क्योंकि उनकी मति से प्राप्त फल अल्पवाला है। देवताओंकी पूजनवाले देवताओंको और भेरभक्त मुक्तोंको प्राप्त होते हैं।

जिब हिन्दू [आर्य] जाति के क्षुद्र देवताओं का पूजना इतना तुच्छ कहा है तो मुसलमानों के पीर पैगंबरों को तो भूत्कर भी न पूजे, क्योंकि गीता ही में लिखा है—
 श्लोक—याति देवव्रता देवान् पितॄन्याति पितृव्रताः । भूतानि याति भूतेभ्यः याति
 मयाजिनोऽपिमाम् ॥ गी. अ. ९ श्लो० २५ ॥

अर्थ—देवताओं को पूजने वाले देव होते हैं पितरोंका ध्यान करने वाले पितर और भूत पिशाच को पूजने वाले मरकर भूत पिशाच, अतः पीर पैगंबरों को पूजने वाले भरकर “यवन प्रेत” होने इसीप्रकार मुसलमान, ईसाईमत के धर्म और व्यवहारों को हिन्दू (आर्य) लोग न माने नैसा कि मोहम्मद पर साजियोंको पूजना या उनको अपने व्यय से बनवाना इत्यादि

[अपूर्ण]



अथ द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्युपासते ॥

येचाप्यक्षरमव्यक्तंतेषांकेयोगवित्तमाः॥१॥

दोहा-जेसेवततुमकोसदा, करिकर्मनकेसाज ॥

अक्षरब्रह्महींजेभजति, बडोकौनकहिराज ॥१॥

यह सुन अर्जुन पूछने लगे कि-हे भगवन जो निरन्तर भक्तिमें लयलीन होकर सदा आपके सगुण विश्वरूपकी उपासना करते हैं वे उत्तम हैं? अथवा जो आपको अक्षर अविनाशी अव्यक्त मानकर आपकी उपासना करते हैं वे उत्तम हैं? इन दोनोंमें कौन उत्तम हैं॥१॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

मय्यावेश्यमनोयेमांनित्ययुक्ताउपासते॥

श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्ततमामताः ॥२॥

दोहा-जोमोमेंमनराखिकै, सेवतसेवकभाय ॥

बहुश्रद्धासोंजोभजत, सोसबतेअधिकाय ॥२॥

श्रीकृष्ण बोले-हे अर्जुन ! जो निरन्तर भक्तियोगसे युक्त होकर केवल मुझही में मन लगा कर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करते हैं वेही मुझको श्रेष्ठ मालूम होते हैं ॥ २ ॥

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥

सर्वत्रगमचिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवम् ॥३॥

दोहा-जो ध्यावत है अक्षरहिं, जो नहिं प्रगटस्वरूप ॥

व्यापी मायाते परे, अचल अचिंत्य अरूप ॥ ३ ॥

जो मुझे, अक्षर (अविनाशी), अनिर्देश्य (जो कहनेमें न आवै) अव्यक्त (इन्द्रियोंसे अगोचर), सर्वत्रग (सर्वत्रविद्यमान), अचिन्त्य (जो ध्यानमें न आवै), कूटस्थ (मायाप्रपंचका आधारस्वरूप), अचल (व्यापाररहित) और ध्रुव (नित्य और स्थिर) जानकर उपासना करते हैं ॥

संनियम्येंद्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥

ते प्राप्नुवंति मामेव सवभूहिते रताः ॥ ४ ॥

दोहा-सब इंद्रिय को रोकिकै, सब को लखै समान ॥

सब जीवन को हित करत, मोहि मिलै कर ज्ञान ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! अपने सब इन्द्रिय समूहोंको वशीभूत करके संपूर्ण प्राणियोंके हितमें रहनेवाले और सबको समान बुद्धिसे देखनेवाले जो मेरे ऊपर कहे हुए रूपकी उपासना करते हैं वे ही मुझे प्राप्त होते हैं ॥

क्लेशोऽधिकतरस्तेषां मव्यक्ता सक्तचेतसाम् ॥

अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

दोहा-तिन्हें क्लेश बहुत होत हैं, ब्रह्म लगायो चित्त ॥

रूप रेख जाके न सो, दुख सो लहियत मित्त ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! जिनका चित्त मेरे अव्यक्तरूपमें आसक्त है, उनको क्लेश बहुत होता है क्योंकि देहधारियोंको अव्यक्तकी उपासना करना बहाना करके है ॥ ५ ॥

येतुसर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यसत्पराः॥
अनन्येनैवयोगेनमाध्यायंतउपासते ॥६॥

दोहा-जेसवकर्मनिकरतहैं, अर्पतमोकोजानि ॥
ध्यावतकेवलभक्तिसों, बहुउपासनाठानि ॥६॥
हे अर्जुन ! जो मेरे भक्त हैं, वह मुझमें तत्पर होकर संपूर्ण कर्मोंको मेरे निमित्त अर्पण करते हैं और अनन्य योगद्वारा ध्यान करतेहुए मेरा स्मरण करते हैं ॥ ६ ॥

तेषामहंसमुद्धर्तामृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामिनाचिरात्पार्थमय्यावेशितचेतसाम्
दोहा-मृत्युसहितभवउदधिते, ताकोकरतउधार॥
मोमेंचितराप्यौजुउन, बहुभाइननिरधार ॥७॥
हे अर्जुन ! जो केवल मुझहीमें मन लगाकर मेरी उपासना करते हैं उनको मैं शीघ्रही इस मृत्युरूप संसारसागरसे बचा लेताहूँ ॥ ७ ॥
मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिनिवेशय ॥
निवसिष्यसिमय्येवअत ऊर्ध्वैनसंशयः ॥८॥

दोहा-तातेअर्जुनबुद्धिमन, मोहीमनतूंगापि ॥
याआगेमोदेहमें, वसिहैंयहअभिलापि ॥८॥
हे अर्जुन ! इससे तू अपना मन मुझमें लगा दे, अपनी बुद्धि मुझहीमें सन्निवेशितकर, जब तू अपना मन और बुद्धि मुझमें लगा देगा तब तू निश्चय अनन्त कालतक मुझहीमें निवास करेगा ॥८॥

अथचित्तंसमाधातुंनशक्नोषिमयिस्थिरम्।
अभ्यासयोगेनततोमाभिच्छासुंधनंजय ॥

दोहा-जोतुंमोमेंनहिंसकत, चितअपनोठहराय ॥

करअभ्यासमोमिलनको, मोहिनिस्तरध्याय ॥

हे धनंजय ! जो तुम अपने चित्त स्थिरताके साथ मुझमें नहीं लगा सकते हो तौ इन चंचल चित्तों विषयोंसे वारवार रोककर अभ्यासद्वारा मेरी प्राप्तिकी इच्छा करते रहौ ॥ ९ ॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसिमत्कर्मपरमोभवा।

सदर्थमपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि

दोहा-जोअभ्यासनकरिमकै, कर्मसमर्थोमोहिं ॥

मेरेकर्मनिकरतहूं, सिद्धिहोइगीतोहिं ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! जो तू अभ्यास करनेमेंभी समर्थ न हो तो मेरी प्रसन्नताके कर्मोंको कर, मेरी प्रसन्नताके कर्मोंको करनेसेभी तुझे सिद्धि प्राप्त होजायगी ॥ १० ॥

अथैतदप्यशक्तोसिकर्तुमद्योगमाश्रितः ॥

सर्वकर्मफलत्यागंततःकुर्यतात्मवान् ॥

दोहा-यहैनजोतूकीरसक, मोसरनहिंअनुराग ॥

सबैकर्मकेफलनको, अर्जुनदेतूत्याग ॥ ११ ॥

जो तू यहभी न करसकै तौ अपनी इन्द्रियोंको वशीभूतकर एक मात्र मेरा आश्रय लेकर संपूर्ण कर्मोंके फलकी वासनाको त्याग दे ॥

श्रेयोहिंज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्विज्ञानं विशिष्यते
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनंतरं ॥

दोहा—ज्ञानभलो अभ्यासते, ताते ध्यान विशेषि ॥

फलत्यागे ताते भलो, ताते शांति हिलेखि ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानमें ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे कर्मफल का त्याग श्रेष्ठ है, कर्मफलके त्याग करनेपर शीघ्र ही चित्तको शान्ति मिलजाती है ॥ १२ ॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ॥

निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

दोहा—द्वेषन का हूँ सों करै, मित्र भाइ करुणा जु ॥

अहंकार ममता तजै, दुख सुख सम क्षमता जु ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो माणिमात्रसे द्वेष नहीं रखते हैं, स+से मैत्रीभाव रखते हैं सबपर करुणा करते हैं, जो समता और अहंकार रहित हैं जो सुखको समान जानते हैं उन पर मैं शीघ्र कृपा करता हूँ ॥ १३ ॥

संतुष्टः सततं योगीयतात्मा दृढनिश्चयः ॥

अय्यर्पितमनो बुद्धिर्यो मद्भक्तः समेप्रियः ॥

दोहा—सदार है संतोष सों, मन राखै निज हाथ ॥

प्राण बुद्धि मो मे धरै, वह प्यारो मो साथ ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य जितना मिलजाय उसीपर संतोष करता है, निरन्तर योगमें लीन रहता है, अपने आत्माको यम नियम द्वारा वशीभूत रखता है, जो मेरे विषय दृढ निश्चय रखते हैं, जो मन और

बुद्धिको सुझाहीमें लगा देते हैं, ऐसे मेरे भक्तजन मुझे प्यारे लगते हैं॥
 यस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः
 हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयःसचमेप्रियः॥१५॥

दोहा-वहकाहूसोंनहिं डरै, भयऔरहि नहिं देय ॥
 हर्षक्रोधदोऊतजै, सो मोको हरिलेय ॥
 भयउद्वेगहीं तजैसब, कहूंमानिनहिंलेत ॥
 जोऐसो मो भक्तहै, तासोंमेरोहेत ॥ १५ ॥

जिससे कोई प्राणी उद्वेग वा त्रास नहीं पाता है और जो स्वयं किसी प्राणीसे उद्वेग वा त्रास नहीं पाता है, जो हर्ष, क्रोध, भय और उद्वेगसे रहित है वह मेरा अत्यन्त प्यारा है ॥ १५ ॥

अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः॥
 सर्वारंभपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः॥

दोहा-चाहनकाहूकीकरै, रहै पुनीतसुदास ॥
 सबआरंभनकोतजै, रहैजुमेरेपाम ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! जो मेरा भक्त किसी वस्तुकी चाहना नहीं करता है, जो अपने मन, वचन और कर्मसे पवित्र रहता है, जो चतुर है, जो शत्रु मित्रसे रहित है, जिसको किसी प्रकारकी मानसिक व्यथा नहीं है, जिसने सब प्रकार के उद्यम त्याग दिये हैं वही मुझे अत्यन्त प्रिय है

योनहृष्यतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति ॥
 शुभाशुभपरित्यागीभक्तिमान्यःसमेप्रियः॥

दोहा-प्रियपायेहरपैनहीं, अप्रियलहैनदुःख ॥

सोचकांक्षानहिंकरै, तजि शुभ अशुभ विमुख ॥

ऐसो वहै कै जो पुरुष, भक्तिवंत जो होय ॥

अर्जुन मेरे अधिक वह, सुप्रियता को जोय ॥१७॥

हे अर्जुन ! जो प्रिय वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता है, अप्रिय वस्तु से द्वेष नहीं करता है, जो इष्ट वस्तु को नष्ट होने पर शोच नहीं करता है, अनमिलकी चाह नहीं करता है, शुभ अशुभ का परित्याग कर देता है वही भक्त मेरा प्रिय है ॥ १७ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ॥

शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥

दोहा-शत्रु मित्र को सम लखै, सहै मान अपमान ॥

शीत उष्ण सुख दुख सहै, संग करै नहिं आन ॥१८॥

हे अर्जुन ! जो शत्रु मित्र को समान जानता है जो मान अपमान को तुल्य समझता है, जो सर्दी, गर्मी तथा सुख दुख में समभाव से रहता है और किसी में आसक्त नहीं होता है वही मुझे प्रिय है ॥ १८ ॥

तुल्यनिंदास्तुतिमौनी संतुष्टो येन केनचित्

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः

दोहा-स्तुतिनिंदा एकसी, गहै मौन संतोष ॥

गृह न करै थिर मति रहै, लहै भक्तिसौ मोष ॥१९॥

हे अर्जुन ! जो निन्दा स्तुति को समान जानता है, थोड़ा धौलता है, जो कुछ मिल जाय उसमें संतुष्ट रहता है, जो किसी एक जगह में

घर बसकर नहीं रहता है जिसकी बुद्धि चलायमान नहीं है वही भक्तिमान् पुरुष मेरा प्रिय है ॥ १९ ॥

येतु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ॥
श्रद्धधानामत्परमाभक्तास्तेऽतीवमेप्रियाः

दोहा-धर्मामृतजोमैंकह्यो, ताहिजुसवैकोय ॥

श्रद्धायुतमेरोभगत, मोहिसुप्यारोहोय ॥ २० ॥

दुःखरूप अव्यक्तगति, औरविधनबहुमान ॥

तबैबारहेंध्यायमें, भक्तिकहीभगवान् ॥ १ ॥

निर्गुनसगुनउपासना, इनमें कान विशेषि ॥

वरनीआनंदरामयह, अधिकभक्तिअवरोखि ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई श्रद्धापूर्वक मेरे परम भक्त इस यथोक्त धर्मा-मृतरूप भक्तियोगकी उपासना करते हैं वेही मुझे अत्यंत प्रिय हैं २०

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्माविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृ-

ष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां

भक्तियोगोनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समीक्षा-परमात्माके जो भक्त होते हैं उनके क्या लक्षण होते हैं. यह सब विषय इस बारहवें अध्यायमें वर्णन किया गया है और इस अध्यायमें सगुण और निर्गुण उपासनाकाभी भेद दिखाया गया है. सगुण उपासना करने वालोंको लौकिक सुखोंके साधन धन, सम्पत्ति आदि मिलते हैं और निर्गुण उपासना करने वालोंको सर्व श्रेष्ठ सुक्ति फलही मिलता है इसलिये निर्गुण उपासना बड़ा कठिन और दुस्साध्य है, क्योंकि धनसम्पत्तिको लात मारने वाले विरलही भक्त होसके हैं ।

[पृष्ठ २३८ से आगे]

[४०] मंदिरों में जो आय होती है, वह अच्छे कामों में लगाई जाय। यथा-विद्यालय, महाविद्यालय आदि उत्तम संस्थाओं का खोलना और साथ ही विद्वानों को पुरस्कार दिलाना, जिससे वह उत्साह पूर्वक नई २ विद्याओं की खोज करते रहें; जैसा कि अमेरिका और यूरोप देशों के विद्वान कर रहे हैं। कुरीतिसंडन पर मंदिरों में विद्वानों के व्याख्यान होने चाहिये और गीता आदि धर्मग्रंथों की कथायें कराई जायें। ऐसा प्रबंध भी किया जाय कि पूजारी और महंत लोग मंदिरों के द्रव्य को अपने निजके कामों में न लगा सकें। दृष्ट पूजारी और महंतों को मंदिरों में से निकलवा देना चाहिये। मंदिरों की आयव्यय का लेखापडताल पंचायती के लोगों के हाथ में रहना चाहिये, क्योंकि मंदिरों में द्रव्य देनेवाले मनुष्यों का यह अभिप्राय नहीं होता कि—उनकी दी हुई संपत्तियां पूजारी गुसाईं और महंत लोगों के भोग में आयें। दूसरी बात यह भी है कि महंतों, पूजारियों और गुसाईं लोगों के पास रुपया रहना उनकी आत्मा के लिये भी हानिकारक है; देश के लिये तो प्रत्यक्ष में ही है।

[४१] भारतवर्ष के राजाओं को और प्रजा के प्रतिनिधियों को चाहिये कि मंदिरों के पूजारी और महंतों के पास जो अगणित द्रव्य पड़ा है उसको प्रजा के उपयोगी २ और उत्तम २ कामों में लगाने का उपाय करें। ठाकुरजी को समय २ पर, भोग लगाना, जगाना, सुलाना, रोगी बनाकर औषधि देना और वस्त्र आभूषणादि पहिराना आदि कामों पर जो निरर्थक अगणित रुपया लगाया जाता है वह सर्वथा रोक देना चाहिये। परमात्मा सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक है और भक्ति से प्रसन्न होनेवाला है न कि वस्त्रादि पर व्यय करने से। भक्ति पूर्वक जल, पुष्प, धूप आदि चढ़ाकर हाथ जोड़ने और दंडवत प्रणाम करने से जितना वह प्रसन्न होता है उतना द्रव्य नष्ट करके आभूषणादि लेकर प्रसन्न नहीं होता। आभूषणादि बहुमूल्य वस्तुओं से तो पूजारी और महंत लोगों को प्रसन्न करना है न कि परमात्मा को।

मंदिर भी एक जातीय संस्था है न कि—पूजारी लोगों की हाट [दुकान]। मूर्तियों के लिये वस्त्राभूषण बाहर के न रहें, केवल मूर्तियों के साथ ही खुदे हुए और रंग दिये हुए रहें, परमेश्वर भक्ति प्रिय है वस्त्र आभूषण प्रिय नहीं। यदि सुवर्ण रत्नादि और आभूषण हमारे मंदिरों में नहीं होते तो महामुद्गजनवी द्वारा हमारे मंदिरों की दूट और उनका निरादर नहीं होता और आज कल भी मंदिरों में चोरों का भय बना ही रहता है, इसलिये इन के आभूषण उसी वस्तु के खुदे रहने चाहिये जिस वस्तु की वह मूर्ति हो, यथा—काष्ठ, पाषाण, चातुर्मादि।

ऊपर से वस्त्राभूषण पहिनाना व्यर्थ है, क्योंकि उसमें चोरों का भय रहता है और निरर्थक व्यय भी होता है ॥

[४२] विधर्मी लोग अर्थात्-मुसलमान, ईसाई लोग यदि हमारे देवाल्योंमें प्रेम से आजायें तो उनको दर्शन करनेसे न रोका जाय क्योंकि जिन मूर्तियोंको हमने परमेश्वर के अवतारों का चिन्ह मान रखा है उनको किसीके दर्शन से अपवित्र का होजाना मानना विद्वानों की दृष्टिमें क्लृपणता और मूर्खता का चिन्ह है ।

जैसाकि प्रोफेसर ड्यूसन [देवसेन] "मेरी भारतवर्षयात्रा सम्बन्धी स्मरणश्रुतियाँ" नामकी पुस्तकके पृष्ठ १४६ में लिखतेहैं कि:-

"हम रामके बड़े मन्दिरके समीप पहुंचे । मैंने अन्दर जाना चाहा, परन्तु मुझे बड़ी असम्यक्तासे अन्दर जानेसे रोकदिया । मैंने संस्कृतभाषामें उनको (पूजारीलोगोंको) बहा कि "मैंने रामायणका अभ्यास किया है; यद्यपि मैं भारत-वासी नहीं, तथापि मैं बहुत अधिक मनुष्योंकी अपेक्षा, बीर रामके प्रति अपनी आदरपूर्वक भाँके प्रगटकरनेका अधिक अधिकार रखताहूँ" । मेरा यह सब समझाना निष्फल हुआ स्यात् इसका कारण यह था, कि वह संस्कृत भाषामें मेरा कथन नहीं समझ सके । अन्तमें मैं क्रुद्ध होगया और उनके विरोधमें बहुतसी बातें कहीं; अन्त में उन आतिथ्यसत्कार रहित मनुष्योंको "क्रुद्धोस्मि" (मैं क्रुद्ध हूँ) कहता हुआ लौट आया ।

समीक्षा-पाठक विचारसक्ते हैं क्या यह आश्चर्य और शोककी बात नहीं है कि एक विदेशी सम्य विद्वान दूरसे कष्ट उठाकर भक्तिपूर्वक हमारे मन्दिरमें आवे और उसको मूर्तिके दर्शन कराना तो दूरहा मन्दिरकी देहलीके अन्दरतक नहीं घुसनेदे साय मैं विचित्रता यह कि अधिकांश मन्दिरोंमें वस्त्रधारोंके अवसर पर पवन भङ्गों और यावनी वेश्या गाना बजाना करने को मूर्तिके सामने बैठे या सड़े रहसकें ।

और इससे अधिक लज्जाकी बात क्याहोसकीहै कि एक विदेशी पुरुष जो संस्कृत को जानते हुए रामायण का ज्ञाता होकर श्रीरामचन्द्रजी के ससे श्रुणोंका भक्त होकर अपने हृदय का भाव संस्कृत में प्रगट करे और पूजारीजीमहाराज, जिन्होंने वेद और परमेश्वरके अवतारों की मूर्तियोंको अपना कहनेका ठेका ले रक्खाथा । संस्कृत भाषा में होनेके कारण, उस भावको समझेही नहीं । बलिहारी है । हमारी इस हीन दशा पर और इस अविद्या पर ।

[४३] वर्तमान समयके तीर्थस्थानोंको सुधारनेकी बड़ी आवश्यकता है । तीर्थ-स्थानोंपर लोग जाते तो हैं शक्ति और ज्ञान प्राप्ति करने के लिये; परन्तु शोकहै कि शक्तिके स्थानमें मूर्ख पंडों, साक्षियों, और भित्तारियोंसे पीछा छुटाना कठिन हो जाता है । गंगा आदि तीर्थस्थानों पर कर्मकाण्ड करानेका ठेका जो पंडोंने अपने हाथमें ले रक्खा है वह सर्वथा धर्मशास्त्र और युक्ति विरुद्ध होजाओ विद्वान और धार्मिक ब्राह्मण हैं वही कर्मकाण्ड कराने के अधिकारी हैं, नकि मूर्ख और प्रमादी

पंडे । परन्तु इसमें भूल हमारी ही हैं; यदि हम सुपात्रों को दान देने लगजायें तो थोड़े ही दिनों में तीर्थवासी ब्राह्मण, पंडे सच्चे पंडित बनजायें; परन्तु धार्मिकों की बात है कि—हमारे अधिकांश भाई समझाने पर भी नहीं समझते और कुपात्रोंके बहकावमें आकर उपदेश देनेवालोंको ही नास्तिक, दुष्ट आदि कहकर उनका उपदेश नहीं मानते और न अपनी बुद्धिसे ही काम लेते हैं ।

“कहे भली माने बुरी, यही मूढकी रीतारज्जब कोटी गारकी ज्यों धोये त्यों कीच” । तीर्थोंपर जाने वालोंको चाहिये कि उन्हीं पंडोंसे कर्मकाण्ड करानेकी अभिलाषा न रखें, जिन के पास कि उनके बाप दादोंके नाम मिलें; किन्तु विचार यह होना चाहिये कि जो भी उत्तम विद्वान और धार्मिक ब्राह्मण मिलें उन्हींसे कर्मकाण्ड करायें । इस प्रकार कर्मकाण्ड कराने का फल यह होगा कि विद्वानों का ही सत्कार होनेसे तीर्थवासी ब्राह्मण, पंडे विद्वान और धार्मिक होनेका प्रयत्न करने लगेंगे ॥

हमारा इस लेखसे यह प्रयोजन नहीं है कि लोग तीर्थयात्रा ही न करें, परंच तीर्थयात्रा करें तो वहाँपर विद्वान और धर्मात्मा ब्राह्मणों, पंडों [पंडितों] द्वारा ही कर्मकाण्ड करायें

[अपूर्ण]



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

॥ अर्जुन उवाच ॥

प्रकृतिं पुरुषञ्चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ॥

एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ १ ॥

दोहा-प्रकृतिकवन अरु पुरुषको, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कहाया ॥

यह जानन की लालसा, ज्ञान ज्ञेय यदुराय ॥ १ ॥

अब अर्जुन कहते हैं कि-हे केशव ! मैं प्रकृति और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञान ज्ञेयको जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥

एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ २ ॥

दोहा-क्षेत्र कहत या देहको, अर्जुन ज्ञानी लोय ॥

जानत है जो देहको, सो क्षेत्रज्ञ जु होय ॥ २ ॥

अर्जुनका प्रश्न सुन श्रीकृष्ण बोले कि-हे अर्जुन ! यह शरीर संसार रूपी सस्यके उपजनेकी भूमि है, इससे यह क्षेत्र कहलाता है और जो मनुष्य इसे जानता है उसको इसके जाननेवाले क्षेत्रज्ञ कहते हैं ॥ २ ॥

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ ३ ॥

दोहा-क्षेत्रज्ञ मोको जानतू, बसत सबनकी देह ॥

यहै ज्ञान को जानिबो, मेरो मत है एह ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ जो संसारी जीव है उसे और परमात्मा जो मैं हूं सो मुझे भी जानौ. और मेरे मतमें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका जो ज्ञान है सोही मोक्षका कारण और सर्वोत्तम है. इस ज्ञानके बिना सब व्यर्थ हैं ॥ ३ ॥

तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारिय तश्च यत् ॥

स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ४ ॥

दोहा-क्षेत्र तहांते है भयो, जो है जैसे भाय ॥

जो विकार यामांझ है, कहूं संक्षेप सुनाय ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! वही क्षेत्र जिसका मैं पहिले नाम ले चुका हूं वह जिस जड़ पदार्थसे बना हुआ है और जिन दर्शनादि स्वभावोंसे युक्त है और जैसे इच्छादिक धर्मोंसे युक्त है और जैसे इन्द्रियादिक विकारोंसे युक्त है और जैसे प्रकृति पुरुषके संयोगसे उत्पन्न हुआ है और जैसे स्थावर जंगमादि भेदोंसे नानारूपका है और क्षेत्रज्ञ भी जैसे स्वरूप और अचिंत्य ऐश्वर्य के प्रभावसे युक्त है सो सब मैं संक्षेपसे कहता हूं तू सावधान होकर सुन ॥ ४

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥

ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ५ ॥

दोहा-ऋषिन कहै बहु भांति जे, और न हूं यों माखि ॥

हेतुवा दनिह चौ जु करि, कहाउ पनि पद साखि ॥

हे अर्जुन ! यह क्षेत्रक्षेत्रज्ञका स्वरूप वसिष्ठ पाराशरादि ऋषियोंने योगशास्त्रादिद्वारा धारणा करके अनेक प्रकारसे वर्णन किया है, अनेक प्रकारके नित्यनैमित्तिक और काम्य कर्मके उपदेश कर्ता ऋ

सामादि वेदोंन जिसका स्वरूप अनेक रीतिसे निरूपण किया है, तथा ब्रह्मके प्रतिपादन करनेवाले व्यासकृत ब्रह्मसूत्रोंद्वारा देतु मान, निश्चित बातोंसे जिसका स्वरूप वर्णन किया गया है उसे भी संक्षेपसे कहता हूँ ॥

महाभूतान्यहंकारोबुद्धिरव्यक्तमेवच ॥

इन्द्रियाणिदशैकंचपंचचैन्द्रियगोचराः ॥६॥

दोहा—महाभूतअहंकारबुधि, अरुमायाहूजानि ॥

एकादशइंद्रीविषय, शब्दादिकहूमानि ॥ ६ ॥

पंचमहाभूत अहंकार, बुद्धि अर्थात् महत्तत्त्व, अव्यक्त अर्थात् मूलप्रकृति, दस कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय, एक मन और पांच इन्द्रियोंके विषय येही क्षेत्र स्वरूपके चौबीस तत्त्व कहे गये हैं ॥ ६ ॥

इच्छाद्वेषःसुखदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥

एतत्क्षेत्रंसमासेनसविकारमुदाहृतम् ॥७॥

दोहा—इच्छासुखदुःखचेतना, द्वेषधीरताएहि ॥

यहमैंकह्योसंक्षेपसों, क्षेत्रजानितूलेहि ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! जो चौबीस तत्त्व कहे हैं वे और इच्छा, द्वेष, सुख दुःख, संघात अर्थात् शरीर, चेतना अर्थात् ज्ञानात्मक अन्तःकरणकी वृत्ति, धृति अर्थात् धीरज इन सबसे यह क्षेत्र बना है, यह सब मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है ॥ ७ ॥

अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिराजिवम्

आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः

दोहा-क्षमासरल अरुदंभतजि, हिंसादम अभिमान ॥

गुरुसेवा संयम करन, थिरता सोच प्रधान ॥ ८ ॥

अब क्षेत्रज्ञ के जानने के साधनों को विस्तारपूर्वक कहते हैं, हे अर्जुन! अमानित्व (मान की इच्छा न करना) अदंभित्व (दंभ न करना) अहिंसा (प्राणिमात्र को पीडा न पहुंचाना) शान्ति (क्षमा) आर्जव (सरल स्वभाव रखना) गुरुसेवा, पवित्रता, आत्मा को निग्रह में रखना ॥ ८

इंद्रियार्थे पुवैराग्य मनहंकार एव च ॥

जन्म मृत्यु जरा व्याधि दुःख दोषानुदर्शनम्

दोहा-विषयन सों वैरागधरी, तजे रहै अहंकार ॥

जन्म मृत्यु सुख व्याधि जरा दुःख दोषन निरधार ॥

इन्द्रियों के रूप रस गंधादि विषयों में वैराग्य उत्पन्न होना; अहंकार न होना; पैदा होना; मरना बुढ़ापा; रोग और दुःख इनके दोषों को बारबार विचारना ॥ ९ ॥

असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु ॥

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

दोहा-नेहन पुत्र कलत्र सों, ता दुःख दुःखी न होय ॥

चित्त में धरै समानता, बुरे भले को खोय ॥ १० ॥

पुत्र, स्त्री, घर तथा धनादिकों में आसक्ति न होना, तथा स्त्री पुत्र दिकों के सुख दुःख में सुख दुःख न मानना, और चाही वा अनचाह जैसी वस्तु (दैवसंयोग से) आ मिले इसमें चित्त को सावधानी में समान रखना ॥ १०

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ ११ ॥

दोहा—अटलभक्तिमोमेंधरे, सबको आतमजाने ॥
रहै सदा एकांतमें, तजै सभासनमानि ॥ ११ ॥

मुझ परमेश्वररूपमें अनन्य योग अर्थात् सर्वत्र आत्मदृष्टिसे एकान्त भक्ति होना, एकान्त स्थानमें रहना और सांसारिक विषयोमें लीन मनुष्यके संगमें अरुचि ॥ ११ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

दोहा—अध्यात्मज्ञानहि धरै, तत्त्वज्ञानको देखि ॥

यह सब जो कलुमें कह्यो, यहै ज्ञान अवरै खि ॥ १ ॥

त्वं पदार्थसोधन करै, देखै मोक्ष विशेषि ॥

यहै ज्ञान इनते अवर, अज्ञानौ कर लेखि ॥ १२ ॥

अध्यात्मज्ञानमें सदा नित्यभाव और तत्त्वज्ञानका विषय जो मोक्ष उसको सर्व श्रेष्ठ मानना, ये 'अमानित्व' से लेकर 'तत्त्वार्थदर्शन' तक क्षेत्रज्ञज्ञानके बीच साधन कहे हैं और इससे विपरीत मान, दंभ आदि अज्ञान हैं ॥ १२ ॥

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्ना सदुच्यते ॥ १३ ॥

दोहा—वह अमृत समजानिबो, जाते मुक्ति जु होय ॥
कारन कारज तै परै, नाहि ब्रह्म को जोय ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो जाननेके योग्य वस्तु है सो मैं तुझसे कहता हूँ, जिसके जाननेसे मनुष्य सुक्ति पाता है, (वह जाननेके योग्य पदार्थ कैसा है ?) कि उसका आदि नहीं है, परब्रह्म है, वह न सत् है न असत् है अर्थात् न विधि कह सकते हैं न निषेध ॥ १३ ॥

**सर्वतःपाणिपादंतत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्
सर्वतःश्रुतिमह्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति १४**

दोहा—सर्वत्राहि करचरणसिर, त्योंहीमुखदृगकान॥
व्यापिरह्यो सबजगतमें, मोहिंदसौदिसजान ॥

हे अर्जुन ! यह परब्रह्म सब ओर हस्त और पांव वाला है, उसके सब जगह नेत्र, शिर और मुख हैं, उसके सब जगह कान हैं और सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त हो रहा है अर्थात् चराचरात्मक है, अनन्त शक्तियोंसे युक्त है ॥ १४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासंसर्वेन्द्रियविवर्जितम्॥

असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच॥ १५॥

दोहा—सबविषयनतेहैरहित, सबताकौ आभास॥
संगाबिनासबकौकरै, निर्गुणगुणनप्रकास॥ १५॥

वही नेत्रादि सब इन्द्रियां और रूपादि विषयोंमें व्याप्त है और उनमें अनेक प्रकारसे भासता है, तथा सब इन्द्रिय विषयोंसे रहित है अर्थात् उनके बिनाभी सबको जाननेकी सामर्थ्य रखता है, संगरहित है सबका आधारस्वरूप है, सत्त्वादि गुणोंसे रहित है तथा उन गुणोंका भोक्ता है ॥ १५ ॥

बहिरंतश्चभूतानामचरंचरमेवच ॥

सूक्ष्मत्वात्तद्विज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत ॥

दोहा-जंतुजितेचरहूअचर, अंतरबाहिरसोय ॥

सबतैदूरसुनिकटहै, सूक्ष्मलखैनकोय ॥ १६ ॥

वही संपूर्ण चराचर प्राणियोंके भीतरबाहर है जैसे सुवर्ण कंकण कुण्डलादिमें भीतर और बाहर वर्तमान है स्वयं चराचर स्वरूप है, अत्यन्त सूक्ष्मरूप होनेसे वह जाननेमें नहीं आसक्ता है इससे अज्ञानियोंसे अमित दूर है और ज्ञानियोंके अत्यन्त निकट है ॥ १६ ॥

अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचस्थितम् ॥

भूतभर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥

दोहा-तामेंभेदनकछुनहीं, सबमेंरज्जुविभाग ॥

उपजावतनासतसबनि, पालतकारिअनुराग ॥

हे अर्जुन ! वह संपूर्ण प्राणियोंमें कारणरूपसे अभिन्न है परन्तु भिन्नके समान स्थित है, संपूर्ण प्राणियोंका पोषक है, सबका संहारकर्त्ता है और सबका रचनेवाला है ॥ १७ ॥

ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते

ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्यधिष्ठितम् ॥

दोहा-ज्योतिनहूँकीज्योतिहै, अंधकारतेपार ॥

ज्ञानजानिवोहीयमें, सबकेहैनिरधार ॥ १८ ॥

जो सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि ज्योतिष्मान पदार्थ हैं उनकाभी

प्रकाशक है अर्थात् ये सब उसीके तेजसे चमकते हैं, इसीलिये तम जो अज्ञान उससे परे है अर्थात् वहां अज्ञानका लेशमात्रभी नहीं है, ज्ञानस्वरूप है, ज्ञेय अर्थात् जाननेके योग्य हैं, प्रथम कहेहुए अदंभित्वादि ज्ञानके साधनोंसे पाया जाता है और प्राणिमात्रके हृदयमें नियन्तारूपसे स्थित है ॥ १८ ॥

इतिक्षेत्रंतथाज्ञानंज्ञेयंचोक्तंसमासतः ॥

मद्भक्तएतद्विज्ञायमद्भावायोपपद्यते ॥ १९ ॥

दोहा-क्षेत्रतथाअनुभवजुमें, तोकोंदयोबताय ॥

इनकोजानैजोभगत, लहैजुमोपैमाय ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार मैंने क्षेत्र, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनोंका वर्णन संक्षेपसे तेरे सन्मुख किया है इसीको वसिष्ठादि ऋषियोंने विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, इसे जानकर मेरा भक्त मेरे भावको प्राप्त होजाताहै

प्रकृतिंपुरुषंचैवविद्व्यनादीउभावपि ॥

विकारांश्चगुणांश्चैवविद्विप्रकृतिसंभवान् ॥

दोहा-मायापुरुषअनादिहै, अर्जुनदोऊजानि ॥

गुणविकारसबजेभये, मायाहूतेमानि ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! प्रकृति और पुरुष इन दोनोंको अनादि जानौ क्योंकि ईश्वर अनादि है और उसकी प्रकृतिभी अनादि है और पूर्णपुरुषका अंश है इससे पुरुषभी अनादि है तथा देह इन्द्रिय आदि विकार और सुख दुःख मोहादिक गुण उन सबको प्रकृतिसेही उत्पन्नहुए मान २०

कार्यकारणकर्तृत्वेहेतुःप्रकृतिरुच्यते ॥

पुरुषःसुखदुःखानांभोक्तृत्वेहेतुरुच्यते ॥

दोहा—कारजकारणकर्तृत्वं, मायाइनकोहेतु ॥

दुखअसुखकेभोगको, वहैपुरुषगहिलेता ॥२१॥

हे अर्जुन! कार्य जो शरीर और कारण जो इन्द्रियां इनके कर्तृत्वमें प्रकृतिही हेतु कही गई है और सुखदुःखोंका भोगनेवाला पुरुष कहा गया है यह कपिलादिक ऋषियोंने कहा है इसका भावार्थ यह है कि यद्यपि प्रकृति अचेतन है इससे स्वतः कोई काम नहीं कर सकती है और पुरुष अविकारी है इससे स्वतः भोग नहीं सकता है, तथापि पुरुषके निकट होनेपर प्रकृतिकर्ता है और प्रकृतिके निकट होनेसे पुरुष भोक्ता है ॥ २१ ॥

पुरुषःप्रकृतिस्थोहिभुंक्तेप्रकृतिजान्गुणान्
कारणंगुणसंगोऽस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥

दोहा—पुरुषजवहिप्रकृतिभजत, तबहिकरतगुणभोग
ऊँचनीचजनमहिलहत, जानिगुननकेयोग ॥२२॥

हे अर्जुन ! वह पुरुष प्रकृतिका कार्य जो देह उसमें तदात्मरूपसे स्थित हो प्रकृतिसे उत्पन्न सुखदुःखादि गुणोंको भोगता है. इससे यह पुरुष जो अच्छी वा बुरी योनियोंमें जन्म लेता है उसका मूल-कारण प्रकृतिके गुणोंका संगही है ॥ २२ ॥

उपद्रष्टाऽनुमंताचकर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥

परमात्मेतिचाप्युक्तोदेहेऽस्मिन्पुरुषःपरः

दोहा—परमआत्मादेहतै, न्यारोजानतलोय ॥

साक्षीभर्ताभोगता, ईश्वरनिर्गुणहोय ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! इस देहमें यह पुरुष वर्तमान रहकर देखनेवाला

अर्थात् साक्षीभूत है, अनुमति (सलाह) देनेवाला है, पोषण करनेवाला है, भोगनेवाला है- महेश्वर अर्थात् ब्रह्मादिकोंकाभी ईश्वर है और परम आत्माभी कहा गया है ॥ २३ ॥

यएवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ॥

सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥

दोहा-जो कोउ ऐसे लखै, पुरुष प्रकृति गुण भाय ॥

सो कैसे जग भरे है, बहुरि न उजै आय ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो इस रीतिसे पुरुषको जान लेता है और गुणों सहित प्रकृति को जान लेता है वह सर्वथा संसारमें वर्तमान रहने पर भी फिर जन्म नहीं लेता है ॥ २४ ॥

ध्यानेनात्मनि पश्यंति केचिदात्मानमात्मनः ।

अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

दोहा-देह मांझ आतम लखै, कोऊ काये ध्यान ॥

सांख्य याग अरु कर्म करी, लखत दोन हूँ जान ॥

हे अर्जुन ! किननेही मनुष्य मनसे ध्यान करके अपनेहीमें आत्माको देखते हैं, किननेही सांख्ययोग अर्थात् प्रकृति पुरुषके विवेकसे देखते हैं और किननेही कर्मयोगसे देखते हैं ॥ २५ ॥

अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपपासते ॥

तेऽपि चातितरंत्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥

दोहा-जे ऐसे नहिँ जानहीं, सुनि और न पै लेत ॥

मम उपासना करत हैं, भव भय मृत्यु तरेत ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! कितनेही ऐसे हैं जो सांख्ययोग वा कर्म-योगको नहीं जानते हैं वे दूसरोंसे सुनकरही उपासना करते हैं वेभी श्रद्धापूर्वक उसके श्रवणमें तत्पर होकर इस संसारसागरसे तर जाते हैं ॥ २६ ॥

यावत्संजायते किंचित्सत्त्वं स्थावरजंगमम्
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ २७

दोहा—जिते जीव या जगतमें, स्थावरजंगम होत ॥

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञमें, सबैलहत उद्योत ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! जो कुछ स्थावरजंगम प्राणिमात्र उत्पन्न होते हैं, उनकी उत्पत्ति क्षेत्रक्षेत्रज्ञके संयोगसे जान लेना ॥ २७ ॥

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ॥

विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति

दोहा—परमेश्वर सब जगतमें, बैठ्यो एक समान ॥

तिन्हैं न सत बिनसे नहीं, सो जानै सो जान

हे अर्जुन ! जो सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान भावसे स्थित परमेश्वरको देखते हैं और भूतोंके नष्ट होने परभी जो आत्मा को अविनाशी देखता है वही देखता है ॥ २८ ॥

समं पश्यन्निह सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ॥

हे अर्जुन ! ईश्वर सब स्थानोंमें समान भावसे स्थित है, ऐसीही दृष्टिसे जो ईश्वरको समान मानता है वह आपही अपने आत्माको नष्ट नहीं करता है. तबही वह मोक्षको प्राप्त होता है और जो ऐसी दृष्टिसे नहीं देखता है वह देहात्मदर्शी अपनी आत्माको नष्ट करता है और मरनेके पीछे प्रकाशरहित अंधकारमें प्रवेश करता है ॥ २९ ॥

प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥

यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥

दोहा-मायाकृतजूकर्मको, जीवअकर्ताजोय ॥

जानतजोयाभेदको, लषतआतमासोय ॥३०॥

हे अर्जुन ! पुरुष जो संपूर्ण कर्मोंको प्रकृतिके किये हुए मानता है और आत्माको उन कर्मोंका कर्ता नहीं मानता है अर्थात् आत्मा देहाभिमानसेही कर्मोंका कर्ता है वास्तवमें आप किसी कर्मका कर्ता नहीं है वह मोक्ष पाता है ॥ ३० ॥

यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥

ततएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेतदा ॥ ३१ ॥

दोहा-प्रलयसमैंप्राणीनको, प्रकृतिलीनरिषिलोय

बहुरिप्रकृतितेविस्तरै, लखैसुब्रह्महिहोय ॥३१॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष स्थावर जंगम सब प्राणियोंके लुदे लुदे भेदोंको प्रलयकालमें ईश्वरकी शक्तिरूप एकही प्रकृतिमें स्थित मानता है और उसी प्रकृतिमें सब प्राणियोंके विस्तारको मानता है, तब वह ब्रह्मस्वरूप होजाता है ॥ ३१ ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥

दोहा—आदिअंतसोरहितहै, निरगुणआत्मसोय ॥

देहमांझयद्यपिरहै, करै नलिपताहोय ॥ ३२ ॥

हे कौन्तेय ! यह परमात्मा अनादि और निर्गुण है इससे विनाश रहित है क्योंकि जो आदिसहित और गुणोंसे युक्त होता है वह नाशवान् है इसलिये देहमें वर्तमान होनेपर भी न कर्म करता है न कर्मफलमें लिप्त होता है ॥ ३२ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥

सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मानोपलिप्यते ॥

दोहा—ज्यों अकाशसूक्ष्मवत्सै, सबमें परसतनाहिं ॥

त्योंही देहगतमें, लिप्त न देहनिमां हिं ॥ ३३ ॥

हे अर्जुन ! जैसे आकाश सब जगह व्याप्त है परन्तु सूक्ष्म होनेके कारण कहीं लिप्त नहीं होता है, इसी तरह संपूर्ण देहमें स्थित आत्मा भी देहके गुणोंमें लिप्त नहीं होता है ॥ ३३ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारतम् ॥ ३४ ॥

दोहा—ज्यों प्रकाश एकै करत, सब जग सूरज देव ॥

त्योंही सब की देहमें, परमात्मको भेद ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! जैसे एक ही सूर्य इस संपूर्ण भूमंडलको प्रकाशित

करता है, उसीतरह क्षेत्री अर्थात् जीव संपूर्ण क्षेत्र अर्थात् देहको प्रकाशित करता है ॥ ३४ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञानचक्षुषा ॥

भूतप्रकृतिमोक्षंचयेविदुर्यातितेपरम् ॥

दोहा—क्षेत्रऔरक्षेत्रज्ञको, भेदलखैजोकोय ॥

भूतप्रकृतितेमोक्षको, जानैमुक्तसुहोय ॥ ३५ ॥

भगतजगततैंउद्धरो, कहेकृष्णएबैन ॥

तेहिकारणमैंयहकह्यो, तत्वज्ञानसुखदेन ॥ १ ॥

तत्वज्ञानउपदेशबिनु, मृत्युतरैनहिंकोय ॥

तातैंकह्योविवेकयह, प्रकृतिपुरुषकोजोय ॥ २ ॥

सबजगसोंअनुरागकरि, आनन्दविमलविवेक

क्षेत्रक्षेत्रज्ञकोयोगहै, वरन्योतत्वविवेक ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो ज्ञानचक्षुओंसे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अंतर भली प्रकार जानते हैं और पहिले वहीहुई प्रकृतिसे मोक्षका उपायरूप धारणादि जानते हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ३५ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-

र्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां क्षेत्रक्षेत्रज्ञ-

निर्देशयोगोनाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समीक्षा—पूर्वके बाहर अध्यायोंमें कर्मकांड और भक्तिकांडका वर्णन होकर अब शेषके छः अध्यायोंमें ज्ञानकांडका वर्णन किया जायगा । बुद्धिमानों को उचित है कि स्वयं ज्ञानवान होते हुए

अपने मूर्ख भाइयोंको भी विद्वान और ज्ञानी बनाए। आजकल प्रायः यह देखा जाता है कि, लोग रातदिन यही वहाँ करते हैं कि 'देश की उन्नति करो' जिसका अर्थ यही है कि देशवासियोंको विद्वान्, बुद्धिमान, स्मृद्धिमान और बलवान बनाओ। देशका क्या उन्नत होना है वह तो जड़ पदार्थ है। देशसे अभिप्राय किसी देश विशेषके वासीयोंसे ही होता है। परंतु भारतवर्षमें आजकल बहुधा यह देखने में आ रहा है कि देश की उन्नति चाहनेवाले विद्वान्, अपने मूर्ख भाइयों से मिलना, बातचीत करना और उनके बीचमें बैठना अपनी योग्यताको या अपनी मानप्रतिष्ठाको खो बैठना समझते हैं। जबतक उनमें मिलजुलकर विद्वान लोग उनको शिक्षा और ज्ञान नहीं देंगे तबतक यह बात कैसे संभव है कि भारतवर्षके सौ पीछे पंचाननवे अपठित स्त्रीपुरुष विद्वान होकर देशके भले बुरेका ज्ञान प्राप्त कर सकें। गीताका उपदेशही है कि त्वम पश्यस्व मिलकर अपने बोध (ज्ञान) को बढ़ाओ (देखो गीता अ० १० श्लो० ९) अतः आशा है कि हमलोग समग्र गीताके तात्पर्यको रातदिनके श्रवण मनन द्वारा भलीभांति जानकर अपना और अपने अपठित भाइयोंका कल्याण करेंगे।

अध्याय तेरहसे अध्याय अठारहकी समीक्षा हम पाठकों परही छोड़ते हैं। अतः क्षमा प्रार्थी हैं। गीताका विषय अतिगंभीर है इसके आशयको समझनेके लिये जितना जितना अधिक प्रयत्न किया जाएगा उतना २ ही अधिक और नया २ अर्थका भान होता जाएगा। और यह भी ध्यान रहे कि गीतामें सब उपदेश अधिकारी, भेदसे दिये गये हैं। जहां गृहस्थोंको युद्धादिमें प्रवृत्त होकर शत्रुओं को मारनेका या दुष्ट प्राणियोंकी हिंसा करनेका उपदेश दिया गया है, वहीं वानप्रस्थी और संन्यासी लोगोंको प्राणीमात्र

की हिंसा करनेसे रोका है। इनके लिये दुष्ट-प्राणियोंके दिये कष्टोंको सहना और उनके अपराधोंके लिये उनको क्षमा करनेका उपदेश दिया गया है।

वानप्रस्थी, संन्यासी तथा ऋषिमाहात्माओंके लिये शास्त्रोंका ऐसा उपदेश प्राचीन कालसेही चला आता है यथा विश्वामित्र ऋषि स्वयं राक्षसोंको मारनेमें समर्थ होतेहुएभी शत्रुओंसे यज्ञकी रक्षाके लिये रामन्द्रजी को जो क्षत्री थे ले गये।

[पृष्ठ २४९ से आगे]

[४४] तीर्थस्थानोंपर जो बातें धर्मविरुद्ध देखने में आरही हैं, उनको सर्वथा हटानेकी चेष्टा कीजानी चाहिये, जैसा कि पुरीमें धर्ममार्ग समयके जगन्नाथजीके मंदिरको देखने से धुद्धिमात्र मनुष्यको बड़ाही दुःख होता है, क्योंकि मंदिरके शिखरपर महा अक्षील भ्रष्टतलिया रखी हुई हैं। उच्छिष्ट भात आदिका भोजन खाना पडता है। जिस मूर्तिको हम परमेश्वरके अवतारोंकी रूपसूचक मानते हैं वह भग्न हो और उसीको प्रत्येक वारहवें वर्ष असाध्य रोगी बनाकर मृतक बनाये और उसीके स्थानपर वैसीही दूसरी मूर्ति रखें, जिस क्रियाका नाम "कलेवरयात्रा" रक्खा है। विचार करनेकी बात है कि ऐसी २ बातें उपहास करानेवाली हैं और आश्चर्यजनक हैं। वहाके आचार्योंको चाहिये कि ऐसी कुप्रथाओंको रोककर शास्त्रानुसार कार्य करनेपर उत्तमही यज्ञके भागी बनें। ऐसे स्थानोंपर जाकर सब प्रकारकी हानि उठानेके अतिरिक्त और क्या लाभ उठाया जासक्ता है।

ऐसा प्रबन्ध अतिशीघ्र किया जाय कि धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंके विरुद्ध जिन २ तीर्थस्थानोंपर जो २ भ्रष्टाचार और पाखण्ड फैल रहे हों उनको सर्वथा हटाकर प्राचिनकालके सदृश "तीर्थस्थान" बनाये, जैसाकि अबभी कोई २ स्थान तीर्थ कहलानेके योग्य हैं; जहा जाकर अबभी शांति मिलती है; विद्वान और धार्मिक पंडितों और साधुओंके संगसे कई प्रकारके लाभ पहुंचते हैं। बहुतसे तीर्थस्थानोंके संबन्धमें तो भोले भाले यात्रियोंको ठगनेके लिये "तीर्थमाहात्म्य" बनगये हैं। इन बनावटी तीर्थमाहात्म्योंकी जगह सच्चे धर्मके ग्रंथ—गीता, उपनिषद्, वेदांत, योगदर्शन आदिकी कथायें होनी चाहियें ॥

तीर्थस्थानों पर विद्यालय और महाविद्यालय खुलने चाहियें, जिनके लिये यात्रियोंसे सहायता लीजाया करे, जिससे उनका दान और तीर्थयात्रा सफल हो

[४५] दरिद्र स्थिति के पुरुषोंको चाहिये कि दूरके तीर्थस्थानोंको न जाकर अपासके ही तीर्थस्थानों पर जावें क्योंकि परमेश्वरतो सबजगह है और भक्ति से प्रसन्न है, रेल्वे तथा जहाजी कम्पनियोंको करोड़ों रुपया खिराये का कुम्भादि मेलोंपर देकर और सब प्रकार का अकथनीय कष्ट उठाकर अपनेको अधिक दरिद्र बनाने की अपेक्षा यदि वह रुपया अपने कुटुम्बके भरणपोषणमें लगावें तो उनके गृहस्थाश्रम का सुखपूर्वक निर्वाह होगा ॥

[४६] बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि भूख नामघारीसाधुओं और ब्राह्मणोंको तीर्थयात्राके निमित्त रेल्वे तथा स्टीमर [जहाज] की टिकट न दिलावें; क्योंकि ऐसा करनेसे व्यर्थ धन का नाश होता है और न देशको ही वहाँ पर उनके जानेसे कुछ लाभ होता है।

विद्वान् साधु तीर्थों पर जाकर उपदेशकरें तो अवश्य देशको लाभ हो सक्ता है, परन्तु विद्वान् साधुओंको भी चाहिये कि जहाँतक बनसके वहाँतक रेल्वे और स्टीमरकम्पनियोंको देशका रुपया न देकर, पैदलही जैन साधुओंकी भौति यात्रा किया करें, जिससे ग्राममें लोगोंको साधुओंके उपदेशोंका लाभ हो और साधुओंको भी देशकी स्थितिका पूर्ण यथावत् ज्ञान प्राप्त होजाय ॥

[४७] भारतवर्षके भिन्न २ प्रांतोंमें "नवयुवक हिन्दू [आर्य] मण्डल" होने चाहियें, जिनके उद्देश्य निम्नलिखित हैं ।

[क] नवयुवकोंमें इसबातका प्रचार करना कि मादक पदार्थोंका सेवन न करें और सोलहवर्षसे पहले तमाखु सिगरेट न पीवें। अपने चरित्र उत्तम रखने को अपने पास घरोंमें अच्छीलिखित न रखें; कामोत्तेजक सेल तमाशोकदापि न देखें; आजकल राधाकृष्णकी आठमें कामोत्तेजक गीत, सेल, तमाशो, चित्र बहुत देखनेमें आरहे हैं; अतः ऐसी लीलायें कभी न होनेपावें।

वेश्याओंके यहां वदापि न जावें, यदि विवाहादि उत्सवोंपर कहीं वेश्या नाचकी बात हो तो जहाँतक होसके विवाह करानेवालोंसे अनुरोध करें कि—वह सर्वथा वेश्या नाच न होने दें, किन्तु अच्छे विद्वानों को बुलाकर धर्म विषय पर व्याख्यान दिलावें जिससे अत्यंत लाभ हो।

[ख] नवयुवकोंमें बलपराश्रम बढ़ानेके साधनों यथा—दंड, कसरत, कुटवाल, टेनिस, क्रिकेट, कबड्डी, घोडासवारी, दूरदौड़ना भागना, आदि खेलोंका प्रचार करना।

[ग] जहां कहीं अपने हिन्दू [आर्य] भाइयोंको सहायताकी आवश्यकता हो वहां सहायक बनें, यथा पानीकी बाढ आने तथा अग्निलगने आदि किसी आकस्मात् दुर्घटनाके समयमें ।

[घ] लोगोंमें विज्ञान फैलानेके निमित्त सप्ताहमें एकवार उपदेश देने या पढ़नेका प्रयत्न करना।

[६] भारतवर्षसे बाहर देशोंमें जानेवाले अपने भाइयोंकी दुर्दशाको साधारण लोगोंको बताना, कि वहापर कैसे २ भयानक अत्याचार विदेशियों द्वारा हो रहे हैं अतः हमको प्रयत्न करना चाहिये कि, हमारे भाई वहा कुली बनकर न जायें, उनके लिये यहाँ नृत्तिका प्रबन्ध किया जाय. और लोगोंको यहभी बताना कि इन भोले भाले लोगोंको बहकाने वाले हममेंसे ही नीच और लोभी पुरुष हैं. जहान लोगों को बहका कर भरती करनेवाले ऐसे पुरुषोंका पता लगे उनको धिक्कारने और इस कामसे हटानेका प्रयत्न करें; यदि वह न मानें तो उनके साथ सब प्रकारका व्यवहार बंद करवा देना चाहिये।

अफ्रिका आदि देशोंमें हमारे देशवासी कुलियोंको इतना कष्ट मिलता है कि वह थोड़ेही समयमें मर जाते हैं. इसी प्रकारके अन्य २ उत्तम कामोंको सोचना चाहिये, क्योंकि मनुष्यशरीरको धारण करनेका उद्देश्य अपना पेटही भरना नहीं है. जैसा कि लिखा है:-

[श्लोक] आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् । धर्मो हि तेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनो पशुभिः समानः ॥

(अर्थ) भोजन, निद्रा, भय, स्त्रीसंग, मनुष्यों और पशुओंमें समान हैं मनुष्योंमें विशेषता यही है कि—यह धर्म और अधर्मका ज्ञान रखते हैं परंतु पशु नहीं रखते इसलिये हमको परोपकारादि धर्मकार्योंमें सदा तत्पर रहना चाहिये

(७) हमारे नवयुवकोंको चाहिये कि विद्यालयमें पढ़ते समयही जीवनका अपना एक लक्ष्य बनावें. अर्थात् इसी समय इस बातका दृढ निश्चय भलीभांति सोचविचारके साथ करलें, कि मैं अमुक धंधा करताहुआ स्वतंत्रतासे अपने जीवनका निर्वाह करूंगा । यथा वैयक, डाकटरी, इंजिनियरी, वकालत, वैरिस्टरी, वाणिज्य, व्यापार, कृषि, धर्म और शिक्षाप्रचार इत्यादि अनेक प्रकारके जो उन्नतिकारक और स्वतंत्र धंधे हैं उनमेंसे एकको अपना मुख्य लक्ष्य बनाकर उसीमें पूर्ण निपुण होनेकी पूरी २ चेष्टाकरनी चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य किसी विद्यामें पूर्ण निपुण नहीं है उनको वह आदर और द्रव्यकी आय प्राप्त नहीं होसक्ती जोकि एक पूर्ण विद्वानको प्राप्त होसक्तीहै यदि इसी अवस्थामें इसबातका विचार न किया जायगा तो गृहस्थाश्रममें बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा । परार्थीन होकर अनेक मनुष्योंकी सेवा करनी होगी । “ विद्यार्थीजीवन ” आदि अनेक उत्तम २ पुस्तकें अभीसे पढ़नी चाहियें ।

(८) ऐसा प्रयत्नकरना कि एक “ हिन्दू (आर्य) धर्मप्रचारक मंडल ” स्थापित होजाय । इस मंडल द्वारा तीन प्रकारके उपदेशक नियत किये जाने चाहियें प्रथम उत्तम श्रेणी के उपदेशक, जो वेद वेदांग पारंग होनेके साथ कई भाषाओंके विद्वान हों और माध्वाचार्य विज्ञानसेभी पूर्ण ज्ञानकारहो प्राचीनकालमें तो हमारे विद्वान यथा “ सादित्य वर्षण ” के कर्ता, चौदह २ भाषा जानते थे, जबकी हमारे विद्वानोंको न्यूनसेन्यून चार पांच भाषा तो

अवस्थ जाननी चाहिये दूसरे मध्यम श्रेणी के उपदेशक जो किन्हीं अशोमें-उच्चम श्रेणी के उपदेशकोसे न्यून हों, तीसरे कनिष्ठ श्रेणी के उपदेशकों और मध्यम श्रेणी वालों से योग्यता में किन्हीं अशो में न्यून हों ॥

इन उपदेशकों द्वारा भारतवर्ष के भिन्न २ नगरों और ग्रामों में धर्म मंडन और कुरीति खंडन पर व्याख्यान दिलाये जावें । यथा लोगों को समझाया जावे कि आजकल जो होली के त्यवहार पर अपशब्दों का बोलना, मदिरा आदि मादक पदार्थों का खाना पीना, और अन्य २ प्रमादके कामों का करना वह सब हमारे धर्म शास्त्र के विरुद्ध है, ऐसी प्रमादमय बातों में लगने से शरीर मन और वाणी को अपवित्र करके इनकी शक्तियों को घटाने का महापाप लगता है, अतः इन घुरे पापके कामों को न करके धर्मके कामों में हमको लगना चाहिये, यथा व्याख्यान नोंका देना प्रेम पूर्वक मिलकर देश और जाति के हितकार्यों को शोचन इत्यादि ।

[अपूर्ण]



अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

परंभूयःप्रवक्ष्यामिज्ञानानांज्ञानमुत्तमम् ॥

यज्ज्ञात्वामुनयःसर्वेपरांसिद्धिमितोगताः॥

दोहा-परमज्ञानउत्तमसोई, तोकोंदेउँबताय ॥

जाहिजानिकैमुनिसबै, रहेमुक्तिकोपाय ॥ १ ॥

भगवान् बोले हे अर्जुन ! मैं संपूर्ण ज्ञानोंमें उत्तम ज्ञान फिर तेरे सन्मुख कहताहूँ, इसी ज्ञानके सहारेसे संपूर्ण मुनिजन इस जगहसे सर्वश्रेष्ठ मोक्षको प्राप्तहुए हैं ॥ १ ॥

इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥

सर्गेऽपिनोपजायंतेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २

दोहा-यहीज्ञानको सेइकै, मेरोलहोस्वरूप ॥

प्रलयसृष्टितिनकोंनहीं, परैनतेभवकूप ॥ २ ॥

जिस ज्ञानको मैं अब तुझे सुनाऊंगा उसीका आश्रय लेकर जो मुनि-गण मेरे साधर्म्यको प्राप्त होगये हैं, वे सृष्टि कालमें उत्पन्न नहीं होते हैं और न प्रलयकालमें दुःख भोगते हैं अर्थात् जन्ममरणसे रहित होगये हैं

ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्नगर्भं दधाम्यहम्

संभवःसर्वभूतानांततोभवतिभारत ॥ ३॥

दोहा-ब्रह्मप्रकृतिमोयोनिहै, तामेंगर्भहिराखि ॥

उपजावतसबसृष्टिहों, अर्जुनचितअभिलाखि॥

हे अर्जुन ! महत्तत्त्व अर्थात् प्रकृति मेरे योनि है इसीमें मैं गर्भ-
धारण करता हूँ उसी गर्भसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है ॥३॥

सर्वयोनिषुकौंतेयमूर्तयःसंभवंतियाः ॥

तासां ब्रह्म महद्यो निरहं बीजप्रदः पिता ४ ॥

दोहा-जो जो मूर्ति होत है, सब योनिन में आय ॥

तिन को ही ही बीज हौं, मैं ही पिता अरु माय ॥४॥

हे कौंतेय ! मनुष्यसे आदि लेकर यावन्मात्र स्थावर जंगम उत्पन्न
हुआ करते हैं उन सबकी योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान प्रकृति है और
बीज देनेवाला गर्भाधानका कर्ता पितास्वरूप मैं ही हूँ ॥ ४ ॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥

निबध्नंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

दोहा-सत्तरजतमजगुणभये, माया ही वे मानि ॥

तम में अव्यय जीव को, ते गुण बांधति आनि ॥

हे महाबाहो ! सत्तोगुण, रजोगुण और तमोगुण, प्रकृतिसे उत्पन्न
हुए, ये गुण अविनाशी जीवका इस देहमें बन्धन करते हैं अर्थात्
उसे दुःखसुखरूप बन्धनमें डालते हैं ॥ ५ ॥

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम् ॥

सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

दोहा-निर्मल अरु परकास करि, सत्तगुण शांति सुभाय
ज्ञानसंग सुखसंग सों, बाँधत जीवहि आय ॥ ६ ॥

हे अनन्ध ! उन तीनों गुणोंमेंसे सतोगुण निर्मल है और अनामय
अर्थात् रोगरहित शान्तिस्वरूप है इसीसे यह सतोगुण शान्तिके
कार्य सुख और प्रकाशके कार्य ज्ञानसे बांधता है अर्थात् मैं सुखी
हूं मैं ज्ञानी हूं इस प्रकार अहंकारसे जीवका बन्धन करता है ॥ ६ ॥

रजोरागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबन्धातिकौन्तेय कर्मसंगेन देहिनम् ॥ ७

दोहा—रजगुणरागस्वरूप है, तृष्णासंगको हेतु ॥

कामसंयुक्त रजोजीवको, ऐसे बंधन देतु ॥ ७ ॥

हे कौन्तेय ! रजोगुण उत्पत्ति तृष्णा और स्त्री, धन पुत्रादिकर्म आ-
सक्तिसे है इससे यह रागात्मक है अर्थात् सांसारिक विषयोंमें स्नेह करा-
नेवाला है तू ऐसा जानले, से यह रजोगुण जीवको कर्मोंकी आस-
क्तिमें बांधता है अर्थात् रजोगुणद्वारा मनुष्य कर्म करनेमें प्रवृत्त होता है

तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ॥

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबन्धातिभारत ॥

दोहा—होत जु तम अज्ञानतें, मोहित सब को हीय ॥

आलस्यनिद्राविकलता, इनसौ बांधत जीय

हे भारत ! तमोगुण अज्ञानसे उत्पन्न होता है इसलिये इसे संपूर्ण
प्राणियोंका मोहनेवाला जानौ, इसी हेतुसे यह प्रमाद, आलस्य
और निद्राद्वारा जीवको बांधता है ॥ ८ ॥

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ॥

ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ॥ ९ ॥

दोहा-सतगुणसुखसनमुखकरै, रजगुणकर्मनिलीन॥

तमगुणआलसयुतकरै, होतज्ञानसबछीन ॥ ९ ॥

हे भारत ! सत्वगुण जीवको सुखमें प्रवृत्ति कराता है. रजोगुण कर्म करनेमें प्रवृत्ति कराता है और तमोगुण ज्ञान को आच्छादित कर जीवको प्रमादमें लगाता है ॥ ९ ॥

रजस्तमश्चाभिभूयसत्त्वंभवतिभारत॥

रजःसत्त्वंतमश्चैवतमःसत्त्वंरजस्तथा ॥ १० ॥

दोहा-रजगुणतमगुणपेलिकै, रहैसत्वगुणपूरि ॥

सततमकोपेलैजुरज, तमतंसतरजद्वारि ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! जब रजोगुण और तमोगुण इन दोनोंको जीत कर सतोगुणकी अधिकता होतीहै, तब यह सतोगुण प्राणियोंको सुख और ज्ञान संयुक्त करताहै, इसी तरह रजोगुणभी सतोगुण और तमोगुणका पराभव करके तृष्णा आदि अपने कर्मोंमें प्रवृत्त करताहै इसीतरह तमोगुण सतोगुण और रजोगुणका पराभव करके अपने आलस्य और अज्ञानादि कार्योंमें प्रवृत्त करता है ॥ १० ॥

सर्वद्वारेषुदेहेऽस्मिन्प्रकाशउपजायते ।

ज्ञानंयदातदाविद्याद्विवृद्धंसत्त्वमित्युत ॥

दोहा-सबद्वारनतेदेहमें, जवहिप्रकासतज्ञान ॥

तबहिवद्व्योहैसत्वगुण, अर्जुनयहतूजान ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! जब इस देहमें नेत्रादि संपूर्णद्वारोंमें होकर प्रकाश अर्थात् रूपादिका यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है तब सतोगुणकी वृद्धि

जानी जाती है क्योंकि सतोगुणहीसे इन्द्रियां अपने यथार्थ काममें प्रवृत्त होती हैं ॥ ११ ॥

लोभःप्रवृत्तिरारंभःकर्मणामशमःस्पृहाः॥

रजस्येतानिजायंतेविवृद्धेभरतर्षभ ॥ १२

दोहा—बढतरजोगुणहैजबहि, नरशरीरमेंआय ॥

लोभकर्मउद्यमअशम, इनहिदेतप्रगटाय ॥१॥

कामविषैनितहीजव, अर्जुनहोतप्रवृत्त ॥

अरुलालचतेजानिये, बढ्योरजोगुणमित्त १२

हे भरतर्षभ ! जब रजोगुण बढता है तब लोभ, कार्यमें नित्यप्रति प्रवृत्ति, कर्मोंका आरंभ, चित्तमें अशान्ति और स्पृहा ये उत्पन्न होते हैं इन्हीं चिन्होंसे रजोगुणकी वृद्धि जानी जाती है ॥ १२ ॥

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्चप्रमादोमोहएवच ॥

तमस्येतानिजायंतेविवृद्धेकुरुनन्दन ॥ १३

दोहा—अर्जुनतबहीकरतहै, तमगुणआयप्रकाश ॥

आलसमोहअज्ञानता, मनमेंकरतविलास १३॥

हे कुरुनन्दन ! तमोगुणके बढनेपर ज्ञानका नाश, उद्यम हीनता, प्रमाद अर्थात् कर्तव्य कर्मोंसे विमुखता और मिथ्या पदार्थोंमें प्रीति ये सब उत्पन्न होते हैं अर्थात् जब ऐसे ऐसे कर्म मनुष्य करता है तब तमोगुणके बढनेके चिन्ह जाने जाते हैं ॥ १३ ॥

यदासत्त्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभूत ॥

तदोत्तमविदाल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते १४

दोहा-जो सतगुणकी वृद्धिमें, तजै जीवनि जे देह ॥
तो ज्ञानिन के लोकमें, जाइ करै सो गेह ॥ १४ ॥

हे अर्जुन ! जिस समय सतगुणकी वृद्धि होती है यदि उस समय प्राणी देह त्याग देवै तो वह उन निर्मल लोकोंको प्राप्त होता है जहां हिरण्यगर्भादिकी उपासना करनेवाले रहते हैं, अथवा आत्मज्ञानियोंके कुलमें उत्पन्न होता है क्योंकि-लोक शब्द 'शुवन' और 'जन', दोनों अर्थोंका वाचक है ॥ १४ ॥

रजसि प्रलयंगत्वा कर्मसंगिषु जायते ॥

तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

दोहा-रजगुणमें तजि जीवको, कर्मवंत घटि जाय ॥

तमगुणमें जो मरत है पशुन मांझ प्रगटाय ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! और जो प्राणी रजगुणकी वृद्धिमें मरता है वह उन मनुष्योंमें जन्म लेता है जो कर्मोंमें आसक्त हैं तथा जो तमोगुणकी वृद्धिमें मरते हैं वे मूढयोनि अर्थात् पशुओंमें जन्म लेते हैं ॥ १५ ॥

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलफलम्

रजसस्तु फलदुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥

दोहा-सुकृतकर्मते होत है, सात्त्विक फल अति सुच्छ

रजगुणको फल दुःख है, तम अज्ञान फल तुच्छ ॥ १६ ॥

सुकृत कर्मोंका फल सात्त्विक और निर्मल है, रजगुण संबंधी कर्मोंका फल दुःख है और तमोगुण संबंधी कर्मोंका फल अज्ञान है ये सब कपिलाचार्यादि ऋषियोंके वाक्य हैं ॥ १६ ॥

सत्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥

प्रमादमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच १७

दोहा-लोभरजोगुणतेभयो, सतगुणतेहैज्ञान ॥

तमगुणतेहैविकलता, मोहऔरअज्ञान ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! सतोगुणसे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है और रजोगुणसे लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुणसे असावधानता, मोह और अज्ञानकी उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वगच्छन्तिसत्त्वस्थामध्येतिष्ठन्तिराजसाः

जघन्यगुणवृतिस्थाअधोगच्छन्तितामसाः

दोहा-सात्विकऊंचेजातुहैं, राजसमध्यमलोक ॥

तामसजातअधोगतिनि, पावतबहुविधिशोक

हे अर्जुन ! जिसकी सतोगुणी वृत्ति है और सात्विक कर्म करते हैं वे सत्यलोकमें जाते हैं और मोक्षगामी हैं और जिनकी रजोगुणी वृत्ति है वे इस मृत्युलोकमें जन्म लेते हैं और अनेक प्रकारके जन्म-मरणादिकष्ट सहते हैं और जिनकी तमोगुणी वृत्ति है और नीच कर्म करनेमें प्रवृत्त रहते हैं वे अधोलोकको जाते हैं ॥ १८ ॥

नान्यंगुणेभ्यःकर्तारंयदाद्रष्टाऽनुपश्यति ॥

गुणेभ्यश्चपरंवेत्तिमद्भावंसोऽधिगच्छति ॥

दोहा-गुणहींकोकरतारकरि, जानेज्ञानीकोय ॥

मोहिलखैगुणतेपरे, मोमेंलीनसुहोय ॥ १९ ॥

जब द्रष्टा जो देखनेवाला विवेकी' पुरुष है वह सत्वादि गुणोंके अतिरिक्त किसी औरको कर्त्ता नहीं जानता है अर्थात् यह समझता है कि—ये सब कर्म गुणहीद्वारा होते हैं और गुणोंसे परे साक्षीरूप आत्माको जानता है वे मेरे रूपको प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥

गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥

जन्ममृत्युजराव्याधिविमुक्तोऽमृतमश्नुते

दोहा—देहकरतजोतीनगुण, तिनकोदेहछुत्यागि ॥

जन्ममृत्युतेदुखछुटे, रहैमुक्तिरसपागि ॥ २० ॥

यह देहधारी प्राणी देहसे उत्पन्न हुये इन तीनों सत्वादि गुणोंका उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधियोंसे छूटकर अमर होजाता है अर्थात् ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

कैलिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवतिप्रभो ॥

किमाचारःकथंचैताँस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥

दोहा—जोत्यागतहैतीनगुण, ताकोलक्षणकौन ॥

कैसेताकेआचर, तुममोसोंसुकहोन ॥ २१ ॥

यह सुन अर्जुनने पूछा कि हे प्रभो ! जो इन तीनों गुणोंका उल्लंघन करता है उसका लक्षण क्या है ? अर्थात् वह किन लक्षणोंमें पहिचाना जाता है, इसका आचरण कैसा है ? और किस तरह इन तीनों गुणोंका अतिक्रमण होता है ? ॥ २१ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

प्रकाशंचप्रवृत्तिंचमोहमेवचपाण्डव ॥

नद्वेष्टिसंप्रवृत्तानिननिवृत्तानिकांक्षति ॥

दोहा--मोहज्ञानअरुकर्मकाँ, जोजानैहियमाहिं ॥

बिनुपायेचाहतनहीं, लहिसुखपावैनाहिं ॥२२॥

यह सुनकर भगवान् बोले हे अर्जुन ! सतोगुण रजोगुण और तमोगुणके जो जो प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह ये तीन कार्य हैं इनके प्रवृत्त होनेपर जो इनके त्यागनेकी इच्छा नहीं करता है और निवृत्त होनेपर ग्रहणकी इच्छा नहीं करता है वही पुरुष गुणातीत है ॥२२॥

उदासीनवदासीनोगुणैर्योनविचाल्यते ॥

गुणावर्तन्तइत्येवयोऽवतिष्ठतिनेङ्गते २३

दोहा--उदासीनबैठारहै, सुखदुखचपलनहोय ॥

गुणसवकारजकरतहैं, योंजानैजोलीय ॥ २३ ॥

हे अर्जुन ! जो उदासीनकी तरह स्थित रहता है और सत्त्वादि गुणोंके सुखदुःखादिरूप कार्योंसे विचलित नहीं होता है और ऐसा जानता है कि ये गुण अपने अपने कार्योमें स्वतःही प्रवृत्त रहते हैं, जो पुरुष ऐसे रहते हैं और चलायमान नहीं होते वेही गुणातीत हैं ॥

समदुःखसुखःस्वस्थःसमलोष्ठाश्मकाश्चनः

तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः

जो सुख दुःखमें समान हैं, स्वस्थ अर्थात् मानसिकादि विकारोंसे रहित हैं जिनके कंकर पत्थर और सुवर्ण समान है जिसके प्रिय अप्रिय समान है जो धैर्यवान् है, जिनके स्तुति और निन्दा समान है. ऐसेही पुरुष गुणातीत हैं ॥ २४ ॥

**मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥**

दोहा—तुल्यमानअपमानअरु, मित्रशत्रुसममान
सर्वआरम्भनिजोतजै, गुणातीतकहिजान २५॥

हे अर्जुन ! जिसकी दृष्टिमें मान अपमान तुल्य हैं, और जो शत्रु मित्रको समान जानता है जो किसी कार्यको आरंभही नहीं करता है वह गुणातीत है ॥ २५ ॥

**मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥**

दोहा—मोकोजोदृढभक्तियों, सैवैचितकेचाय ॥

सोतीन्योगुनकोलहै, रहैब्रह्मको पाय ॥ २६ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई अनन्य भक्तिसे मेरा सेवन करता है वह इन तीनों गुणोंका उलंघन करके ब्रह्मभावको प्राप्त होजाता है ॥ २६ ॥

**ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ॥
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥**

के भी बाल भेत नहीं होते इसका कारण यही है कि वह बहुधा कुडुवा-तेलही काम में लाते हैं ॥

[४५] भारवाड प्रान्तमें बहुत जगह यह चाल पड़ती जा रही है कि, स्त्रियें घूँघट का प्रचार रखती हुई भी बारीक कपड़ोंको धारण करती हैं, जिससे उनका प्रायः सब अंग दिखाई देता है। घर वाले मनुष्योंको बड़ी लज्जा आती है; एक प्रकार की मानसिक निर्दलता के कारण वह कुछ बोल नहीं सके; परन्तु पढ़े लिखे और विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि, इस बुरीचालको तुरंत हटा दें। और यह भी चाहिये कि, भारवाडी जाति में जितनी भी प्रकार की कुरीतियाँ हैं, उन को हटाने के लिये एक सभा बनावें जिस का “भारवाडीसमाज सुधारक समिति” या दूसरा नाम रक्खा जाय।

यदि ऐसा न किया जायगा तो कलकत्ता आदि नगरोंमें, विदेशी लोगों की हंसी से हटना तो दूर रहा, हमारे ही बंगाली आदि हिन्दू (आर्य) भाईयों की हंसी से भी हटकारा नहीं मिलेगा। इसलिये भारवाडी समाज के बुद्धिमान् पुरुष इस ओर अवश्य ध्यान दें।

[४६] भारवाडप्रान्तमें बहुधा यह देसने में आरहा है, कि हमारे बहुत ब्राह्मणभाई यजमानोंको रुपया देनेका एक यंत्र समझकर विषाध्यन, योगसाधन आदि ब्राह्मणों के गुणोंको न धारण करके सुलफा, गंजा, भाँग आदि नशेके पदार्थोंका सेवन करके और तीतर, कघूतर, हिरण, मेंढा आदि पशुओंको पालकर अपने अमूल्य जन्मको धूपाही सो बैठते हैं। यह यजमान पुरोहितकी प्रणाली जिसप्रकार प्राचीनकालमें थी, उसी प्रकार होनी चाहिये, जैसे तीर्थस्थानों में घरू पंडोंका होना हानिकारक है, वैसेही योग्य तथा अयोग्य का विचार न होकर जन्मसेही यजमान पुरोहितोंका सम्बन्ध होनाभी हानिकारक है, इसलिये इस प्रथामें फेरफार होना अत्यावश्यक है।

[४७] भारतवर्षके प्राचीन कालका एक उत्तम और बृहत्, प्रामाणिक इतिहास बनाया जाय, जिससे सब लोगोंको विदित होजाय कि आजतक अर्थात् पौषशुक्ला पौर्णिमा, विज्रमीय सम्बत् चन्नीससौ सत्तर पर्यंत हिन्दू (आर्य) जातिको इस पृथ्वीपर निवास करते हुए अठतीस लाख तिरानवेसहस्र चौदहवर्ष होगये। साष्टिके आदिसेही समस्त भूमंडलपर यहाँके क्षत्री राजा राज्य करते रहे। युधिष्ठिर महाराज तक तो बराबरही क्षत्रियवंशी राजाओंका राज्य समस्त भूमंडल पर फैलाहुआ था, परन्तु उनके पश्चात्भी महाराज चन्द्रगुप्त तक भारतवर्षीय राजाओंका राज्य दूर तक रहा। चन्द्रगुप्त महाराज का राज्य जिसको अब दोसहस्र वर्षके आसपास

होगये सिंधलद्वीप (सिलोन) काबुल, वर्मादेश, श्याम और यवद्वीप [जावा] तक फैला हुआ था।

चंद्रगुप्तके पोते महाराज अशोकके पीछेही, भारतवर्षका राज्य और प्रताप भारतवर्षसे बाहरके देशोंमें नहीं रहा। उसी समय रूम, ग्रीस आदि देश स्वतंत्र राज्य बनगये और तभी से उन्होंने आर्यधर्मको भी छोड़ दिया और संसार में ईसाई, मुसलमान आदियतभी फैल गये जो संसारको केवल पाचसहस्र वर्षसेही उत्पन्नमानतेहैं, परंतु उनका ऐसा मानना विज्ञानवेत्ताओं द्वारा सर्वथा प्रमाण विरुद्ध सिद्धहोगया है।

विक्रम संभवत् १०४९ में महाराज पृथ्वीराज को उस मुहम्मदगोरीसे धारना पड़ा जिसको इन्दोने कईवार बकड र कर दयावश हो जीवदान दिया था।

हम यहा सुहमरूपसे उस आर्यवीरकी दशा और इस यवनके वर्तावका दिग्दर्शन करते हैं जिससमय पृथ्वीराज पराजित हुए शाहाबुद्दीन इनको गजनी अपने साथ लेगया वह केवल इस क्षत्रिय कुलकमल देवाकरको ही नहीं लगया था किन्तु भारतवर्षसे जितना धन वह लेजासका अपने साथ लेगया था। भारतभूमि वृ भिषात्री न हो तो कौनहो जिसके गर्भसे इसी प्रकार कितनेही वार जिन यवनोंने असह्य धन लेकर अपने देशोंको समृद्धशाली बनाया था, इन्हीमें एक यह गोरीभी था।

यदि वह इसवीर राजपूतसे वैसाही वर्ताव करता जैसा इसने उसके साथ किया था, तो भी ठीक होता परन्तु नहीं जब वह उनको गजनी लेगया तब वहा एक सुनसान कारागृहमें बंदकरके इनकी दोनों आंखोंमें तमलोद्दे की सलाई फिरवा दी, तबसे महाराज अंधे हो उसीमें अपने जीवनके दिन बिताते थे भारतवर्ष केवल वीरही नहीं उत्पन्न करता था बरन। धर्मवीर, और नीतिज्ञ भी इसने अनेक उत्पन्न किये थे इसमें श्री पुरुषोंका प्रेम यद्वातक था कि स्थिये पतिके मरनेपर उसके शवके स प्रेमके आवेशमें आफर भस्म हो जातीथी इसी प्रकार एक भिष दूसरे भिषके लिये तन, मन, धन अर्पण कर देताथा, देखा दुष्योधन और कर्णकी कैसा भिषता थी कि जबस इनकी भिषता हुई एक दूसरेके लिये तन, मन, धन अर्पण किये हुएथे, अपने भिषक शत्रुओं को अपनेही शत्रु समझते थे महाभारत जैसा रणरगम रचाया और दुष्योधन कर्णके बलपर ही था, केवल पाण्डवोंके आक्षेप परही कर्णको तिलकधारी राजा बनाया था।

इसी प्रकार की भिषता महाराज पृथ्वीराज और चंदकविमें थी चाहे पृथ्वीराज उनको अपना आश्रयी (आधीन) ही क्यों न समझते हों किन्तु यह कविवर उनको हृदयसे प्रेम करताथा; इसीलिये जब महाराज कैदमें होकर गजनी जानेलगे तो यह चंदकवि भी उनके प्रेमके बंधनमें बंधकर उनके साथ चला और गजनी पहुँचा; देखिये जिस क्षत्रियवीरने अपने इस शत्रुको कितनेही वार जीवदान दियाथा आज उसी यवन शत्रुने इनके साथ बड़ा कुत्सित वर्ताव कर अपनी कुनीतिका परिचय दिया।

परन्तु कहते हैं कि इन्हीं कविवर चंदकी सहायतासे पृथ्वीराज अंतमें अपना बदला लेसके थे।

भारतवर्षके सौभाग्य का तारा पृथ्वीराजके साथही अस्त हुआ और सैकड़ों

वर्ष अनेक धार्मिक विपत्तियों और बाधाओं सहनेसे पश्चात् सम्वत् १९१४ में यह भारतवर्ष राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरियाके हाथमें आया, तबसे लोगोंको अपनी उन्नति करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ ॥

श्रीमान् महाराज "स्वायंभुव" मनुसे लेकर महाराज युधिष्ठिर पर्यंतका इतिहास महाभारतादि ग्रंथोंमें लिखा है । हमको चाहिये कि सब स्थानोंपर महाभारत और रामायणकी कथाओंका प्रचार करायें और इनकी एक २ प्रति उत्तम भाषाटीकाओं सहित हमारे पुस्तकालयोंमें रखवायें जिससे सबलोग इनको देख सकें। इनकी 'उत्तम भाषाटीका आजकल लाहोरमें "हिन्दी [आर्य] प्रचारिणी कम्पनी" द्वारा बनवाई गई है और "भारतवर्षका प्राचीन इतिहास" नामकी एक छोटीसी पुस्तक प्रोफेसर रामदेवजीने बनाई है वह सबको मँगवाकर देखनी चाहिये, यह पुस्तक भी लाहोरसे मिल सकती है ॥

महाराज युधिष्ठिरके पश्चात् एकसौ सोलह कई प्रतापी राजा हुए हैं यथा—परीक्षित महाराज और महाराज चन्द्रयुस, महाराज अशोक; महाराज विभ्रम, जिनका सम्वत् अबतक चलता है; महाराज पृथ्वीराज, महाराज भोज जो इतने विद्याप्रेमी थे कि जिनके राज्य में सबसे लेकर रातक ३३ बड़े विद्वान और कवि होते थे यहातक कि लफड़हारे भी संस्कृत कवितामें ही बातचीत किया करते थे; महाराज रानाप्रतापसिंहजी जो मेवाड़ के राजा थे और जिन्होंने आजन्म कष्ट उठाकर भी अपनी कन्या यवनराजाको नहीं दी; छत्रपति शिवाजी, जिन्होंने मुसलमान बादशाह औरंगजेबको कई बार नीचा दिखाया, यहातक कि अंतमें मुसलमानी राज्य की जड़को खोखला करवाला, महाराज रणजीतसिंहजी जिनको पंजाबकेसरी भी कहते हैं । इत्यादि प्रसिद्ध २ वीर राजा हुये हैं ।

जब हम सब लोग आर्य राजाओंके इतिहास पढ़ेंगे तो स्वयं वीर, उत्साही और धार्मिक बननेकी चेष्टा करेंगे; जिससे भारतवर्षका गौरव और शरा बढ़ेगा।

यूरोपियन लोगोंने जो हमारे भारतवर्षका प्राचीन इतिहास लिखा है वह कई अंशों में ठीक नहीं है; जैसा कि प्रोफेसर रामदेवजीने अपने "भारतवर्षके प्राचीन इतिहास" में प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है ।

यूरोपियन लोगोंने जो मध्यएशियासे हमारा भारतवर्ष आना बताया है वह मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रंथोंसे विरुद्ध है हम तो साष्टिकालसे ही इस भारतकी पवित्रभूमिमें निवास करते आये हैं.

[भगवद्भित्तिपी अन्य विद्वानों के भारतोजतिविषयक विचार]

अब हम कुछ भारतवर्षी विद्वानोंके सुधार विषयक विचारोंको प्रगट करके अपनेइस लेख को समाप्त करते हैं ।

[क] "यह बतला देना आवश्यक है कि परोपकार करना प्रत्येक वर्णका कर्तव्य है। हर्वर्ट स्पेंसर इत्यादि पश्चिमीय विद्वानोंने भी हमारे देशकी वर्णव्यवस्था को बहुत उत्तम माना है। पूर्वकालमें चारों वर्णोंके बालक एक वर्ण होकर शुरूके संनिकट विचारध्यान करते थे। शुरूके कुलसे निकलनेपर वर्णव्यवस्थाके अनुसार गृहाश्रमी बनकर अपने २ कर्तव्यका पालन करते थे। ब्रह्मचर्याश्रममें ज्ञान, विज्ञानका अभ्यास किया जाता है, गृहस्थाश्रम में संसारका अनुभव प्राप्त होता है, वानप्रस्थाश्रममें तपसे ब्रह्मज्ञानको पाया जाता है और संन्यासाश्रममें ब्रह्मज्ञानका अनुभव तथा प्रचार करते हुए परमपिता की गोदको प्राप्त किया जाता है।"

"ब्राह्मण-वास्तवमें सम्पूर्ण जगत का स्वामी है। तप, ज्ञान, विद्या, स्वार्थत्याग, निर्भयता ब्राह्मणोंके प्रधान गुण हैं। वे बातें जिनमें नहीं हैं, उन्हें अपनेको ब्राह्मण नहीं कहलाना चाहिये। न्यायाध्यक्ष निस्पृह ब्राह्मणही होना चाहिये। जहां निस्पृहता और त्याग है वहीं सत्य और न्याय है। प्राचीन आर्योंमें न्यायाध्यक्ष और मंत्री ब्राह्मणही होते थे और इसीलिये पक्ष निष्पक्ष होकर दूधका दूध और पानीका पानी कर देते थे, परन्तु जयसे प्रातिष्ठा से धनक सम्बन्ध कर दिया गया, तभीसे न्यायाध्यक्ष लोग लालची होगये, यहाँतक कि छुल्लमछुल्ला घूस (रिश्वत) चलने लगी। प्राचीन कालमें, महाराज दशरथ के समान चक्रवर्ती राजा विश्वामित्र ब्राह्मणकी खड़े पैरकर प्रतिष्ठा करते थे। प्रधान मंत्री बशिष्ठ ब्राह्मण ही थे। राजा दशरथ सदा उनकी सम्मति की शीश झुकाते थे। श्रीरामचन्द्रजीके बनको जाने और दशरथके देहान्त होने पर भी राजविद्रोह नहीं हुआ। इसका कारण यही था कि राज्यके रक्षक सदा ब्राह्मण थे।"

"क्षत्रिय-समाज की बाहुके तुल्य है, यह सारे शरीरकी अपने बलसे रक्षा करता है। सारांश यह है कि क्षत्रियोंको शारीरिक बल, चातुर्य, राजनीतिज्ञता, प्रजाहितेपिता, युक्ति, शक्ति इत्यादि गुणों की आवश्यकता है।"

शरीरमें मेदे (पक्काशय) का जो काम है वही समाजमें वैश्य का काम है। वैश्यको चाहिये कि शिल्पशास्त्रके अनुसार सब पदार्थों को उपयोगी बनाकर सारे समाजकी आवश्यकताओं की पूर्ति करे। वैश्यके लिये अर्थशास्त्रका जानना भी बड़ा आवश्यक है। वास्तवमें ब्राह्मण से शिल्पशास्त्र, कृषिविज्ञान, अर्थविद्या जानकरही वैश्यों को व्यवसाय में पढ़ना चाहिये, तभी वे अपने काममें सफलता प्राप्त कर सकते हैं।"

"शूद्रों का काम सेवा करना है। उनसे यदि आप उचित रीति से काम लेंगे तो आपको सुख संतोष होगा, उन्हें आप यदि पीड़ित करेंगे तो स्वयं आपको भी कष्ट होगा। चलना जब कभी होगा तब पावों केही बलसे होगा। शिरसे या बाहुसे या पैरसे चलना कदापि नहीं होसका है। शूद्र वही है जिसमें मास्तिष्क [विचार] बल नहीं जो मूर्ख और अज्ञानी है। अतएव निर्बुद्धि मनुष्योंको शूद्र मानना चाहिये।"

आज कल वर्णव्यवस्था ठीक न होनेके कारण सब अंग अपना २ काम नहीं करते इसीसे अशांति है। पोषण २ सं० १९७० को वृन्दावनमें एक अनुभवी और

“जातिके सुधारकी बड़ी आवश्यकता है, पृथ्वीभरमें किसी न किसी रीतिसे जाति भेद तो सर्वत्र है, परन्तु यहाँ जैसा तो कहीं नहीं है अथवा विचारशील पुरुषोंकी इस बातमें सम्मति है कि न्यूनतम धकड़ी जातिके वह छोटे २ भेद, जो स्थान या धन्यके कारण हुए हैं, दूर न होंगे तो सुधारकी कोई आशा नहीं होसکتી। इस समयके जातिके भेद और उनके अवातर भेद जितने द्वेष और द्वेष के कारण है और बुद्धि और सुधारके मार्ग में जैसे प्रतिबन्धक हैं वह सब को प्रतीत है।”

“समुद्रयात्रा” वेदों और इतिहासों के समय में निषिद्ध नहीं था। अब यह बोन, चाहिये कि हर जाति के लोग अपनी २ एक सभा बनावे और उस जाति के जो मनुष्य समुद्रयात्रा करें और विदेशमें आचार व्यवहार को शुद्ध रखें तो वह जाति से न निकाले जावे ” ॥ धर्माविचार पृष्ठ १११ से ११७ ॥

समीक्षा—और जिन्होंने अपना आचार अष्ट कर लियाहोउनको प्रायश्चित्त कराके जातिमें लेंवें, हिन्दू (आर्य) जाति, संख्या में ऐसेही घट रही है, यदि प्रायश्चित्तहारा अपने भाइयोंको अपनेमें न सम्मिलित करेंगे तो वह शनैः २ विधर्मी बनते जाएंगे, जिससे हमको भविष्यमें बड़ी हानि होगी, इसलिये हिंदू (आर्य) जाति के नेताओंको इस बातपर ध्यान देना अत्यावश्यक है ॥ [पूर्ण]



अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥

छदांसियस्य पर्णानियस्तं वेदसवेदवित् ॥

दोहा-ऊरधजरशाखातरे, अविनाशी अश्वत्थ ॥

वेदपत्रजो जानई, सो जानै सब अर्थ ॥ १ ॥

वैराग्य बिना ज्ञान और भक्तिका होना बड़ा दुर्लभ है इमलिये इस अध्यायमें भगवान्ने वैराग्य सहित ज्ञानका उपदेश दिया है और यह कह चुके हैं कि “मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते” अर्थात् जो अनन्य भक्तिसे मेरी उपासना करते हैं वे मुक्त हो जाते हैं सो जबतक वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है तबतक न तौ अनन्य भक्ति होती है और न ज्ञानही होता है, इसीसे वृक्षके रूपकालंकारसे संसारके स्वरूपका वर्णन भगवान् करते हैं कि हे अर्जुन ! क्षर अक्षरसे भी ऊर्ध्व अर्थात् सबसे ऊँचे और सबसे उत्कृष्ट पुरुषोत्तम भगवान् इसके मूल हैं इससे इस संसारको ऊर्ध्वमूल कहते हैं अर्थात् इम संसारकी जड़ ऊपरकी है, इसमें नीचेकी ओर कार्यवाही उपाधिरूप हिरण्यगर्भादिक तथा मनुष्यसे कीट पतंग पर्यन्त सब वृक्ष । शाखा हैं इसीसे इसे अधःशाख कहते हैं यह संसाररूप अश्वत्थ वृक्ष अविनाशी है क्योंकि बार बार नष्ट होकर फिर बनजाता है इससे इसका नाशही नहीं है, वेद इसके पत्ते हैं अर्थात् वैदिक कर्मोंके कानेसे यह संसार चलता है और जैसे वृक्षके पत्तोंकी छायामें आश्रय लेकर संसारी मनुष्य त्रितापसे सुरक्षित होजाते हैं जो इस संसार वृक्षके ऐसे रूपको जानता है वही वेदको जानता है ॥ १ ॥

अधश्चोर्ध्वप्रसूतास्तस्यशाखागुणप्रवृद्धा-
विषयप्रवालाः ॥ अधश्चमूलान्यनुसंतता-
निकर्मानुबन्धीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

दोहा-गुणसींचीसाखावढी, विषयापल्लवभाय ॥

जरफैलीकर्मनबँधी, मनुजलोकमेंआय ॥ २ ॥

संसार वृक्षकी ये शाखा सतोगुणादि रूप जलसे सींचे जानेके कारण ऊपर और नीचे चारों ओर फैलती चली गई हैं इनमें इन्द्रियोंके शब्दरूप रसादि विषय नई कोपलोंके समान हैं अर्थात् जो सात्विक कर्म करते हैं वे देवता और देवताओंसे भी उत्तम योनियोंको प्राप्त करके ऊर्ध्व लोकोंमें निवास करते हैं और जो नीचकर्म करनेवाले हैं वे पशुआदि नीच योनियोंमें पड़कर अधोलोकमें निवास करते हैं और मनुष्य लोकमें भी अच्छे बुरे कर्मोंके अनुसार मूल फैले हुए हैं अर्थात् जो जैसा कार्य करता है उसीके अनुसार वह सुख दुःखादिको भोगता है ॥ २ ॥

नरूपमस्येहतथोपलभ्यतेनान्तोनचादि-
नचसंप्रतिष्ठा ॥ अश्वत्थमेनं सुविरूढमू-
लमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्वा ॥ ३ ॥

दोहा-आदिअंतनहिंजानिये, स्थानरूपनहिंजाहिं ॥

दृढअसंगहथियारले, दुसहमूलतरुटाहिं ॥ ३ ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य इस संसारमें रहते हैं वे इस वृक्षके यथार्थ

रूपको नहीं जान सकते हैं कारण यह है कि, इसका मूल उपरको है और शाखा नीचेको हैं. इससे ऊपर नीचेका ज्ञान अल्प बुद्धिवाले मनुष्योंको नहीं होसकता है, इसका आदि अंत जाननेमें नहीं आसकता है और न इसकी स्थितिका कोई अनुमान करमकता है ऐसे इस दृढ मूलवाले वृक्षका छेदन महा कठिण है क्योंकि इसकी जड़ बड़ी विस्तृत और गहरी हैं अहंकार और ममताका त्यागही एक ऐसा दृढ कुठार है जिससे इस संसारका छेदनकर पार हो सकते हैं ॥३॥

ततः पदं तत्परि मार्गितव्यं यस्मिन् गतान-
निवर्तन्ति भूयः ॥ तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये
यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥

दोहा—चाहिकरेता ठौरकी, फिरै नताको पाय ॥

सृष्टि भई जा पुरुषते, ताकी शरण जु आय ॥ ४ ॥

तदनन्तर सांसारिक मूल कारण स्वरूप ईश्वरपदकी खोजकरना उचित है उस पदको प्राप्त होकर फिर संसारमें आवागमन नहीं होता है (उस पदके दृढ़ होनेका उपाय है) कि जिस पदसे इस पुरातन संसारकी प्रवृत्ति हुई है उसी आदिपुरुषकी शरणमें जाकर अनन्य भक्ति करै ॥४॥

निर्मानमोहाजितसङ्गदोषा अध्यात्मनि-
त्याविनिवृत्तकामाः ॥ द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख
दुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ५

दोहा—कामसंग अरु मोहतजि, अध्यात्मरति होय ॥

सुखदुखतजिता कौल है, अविनाशी पद जोय ॥५॥

उस पदकी प्राप्ति के लिये दूसरा उपाय कहा जाता है कि वे मनुष्य जिनके मानोपमान वा मोह नहीं है, जिनके स्त्रीपुत्र धन आदिकी आसक्ति जाती रही है, जो दिन रात अध्यात्मज्ञानमें लीन रहते हैं, जिनकी सब सांसारिक वामना दूर हो गई है, जो सुख दुःख, शीत उष्ण, हानि लाभ आदि द्वन्द्वोंसे छूट गये हैं ऐसेही ज्ञानीजन उस अव्यय पदकी पाते हैं ॥ ५ ॥

नतद्भासयतेसूर्योनशशाङ्कोनपावकः ॥

यद्भत्वाननिवर्त्तन्तेतद्धामपरममम ॥ ६ ॥

दोहा—पावकरवि अरुचंद्रमा, ताहिकरैन प्रकाश ॥

फिरै न तांको पाइकै, सोहै मेरो वाम ॥ ६ ॥

अब उस पदका विशेषरूप कहते हैं कि—हे अर्जुन ! जहां सूर्य, चंद्रमा और अग्निका प्रकाश नहीं पहुंचता है और जो कोई इस पदको प्राप्त भया है वह संसारमें आने जानेसे छूट जाता है वही हमारा तेजोमय स्वरूप है वहां सुख दुःखादिका कामही क्या है ॥ ६ ॥

समैवांशो जीवलोकै जीवभूतःसनातनः ॥

मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति

दोहा—जीवलोकमें जीवजे, अविनाशी मोरूप ॥

मनहि आदि इंद्रियानिको, खैंचत प्रकृतिहि चूप ॥

हे अर्जुन ! जीवलोकमें यह जीव मेरा ही अंश है, यही जीव अविनाशिके कारण सनातन अर्थात् संसारी कहलाता है और सृष्टि तथा प्रलयके समय प्रकृतिमें लीन होकर रहता है इस तरह मन और पांच ज्ञानेन्द्रिय इन छःओके सासारी भोगोंके लिये खैंचता है, इसका तात्पर्य

यह है कि विवेकी जीव तौ मुझमें लीन होकर आवागमनसे निवृत्त होजाता है और अविवेकीको संसारमें बाधोंवां जन्म लेना पड़ता है।

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥

गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानि वा शयात्

दोहा—जा शरीर को तजत यह, जहां करै संबंधः ॥

इंद्री ईश्वर संग रहै, वायु संग ज्यों गंध ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! जब यह देह और मन और इन्द्रियों का स्वामी कर्मों की वासनासे दूसरा धारण करता है अथवा जब मरने के समय वर्तमान देह को छोड़ता है तब अपने प्रथम देह के मन और इन्द्रियों को साथ लेकर दूसरे शरीर में ऐसे प्रवेश करता है जैसे वायु पुष्पवाटिका से गंधों को ग्रहण कर अन्य स्थानों में चला जाता है ॥ ८ ॥

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनञ्च रसनं घ्राणमेव च ॥

अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

दोहा—श्रवण नेत्र अरु नासिका, त्वच अरु रसना जानि

इन को गहि मनु संगले, लहत जीव विषयानि ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! यह जीव कान, आंख, त्वचा, जिह्वा, नासिका और मन इ-आश्रय लेकर विषयों को भोगता है ॥ ९ ॥

यहां यह शंका है कि जीवों का यह देहपरिवर्तनरूप कर्म सबको क्यों नहीं दिखाई देता है ? इसपर कहते हैं कि—हे अर्जुन ! मूढ मनुष्य इस बातको नहीं देख सकते हैं कि—यह जीवात्मा इस गुणयुक्त देहको कैसे छोड़ता है और दूसरे देहमें रहकर विषयोंका उपयोग कैसे करता है ? इन बातोंको केवल वेही देख सकते हैं जिनके ज्ञानचक्षु खुल गये हैं
यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्मन्यवस्थितम्
यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतसः

दोहा—योगीश्वर यतनहि किये, देखत हैं हिय मां हि ॥

मूरख जतनहि करत है, जीवहि देखत नां हि ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! योगीजन समाधिस्थ होकर यत्न करते हुए अन्तःकरण में वर्तमान इस आत्माके पृथक् स्वरूपको देखते हैं और अकृतात्मा यत्न करने पर भी इसके स्वरूपको नहीं देख सकते हैं क्योंकि उनका चित्त शुद्ध नहीं होता है ॥ ११ ॥

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ॥

यच्चंद्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्

दोहा—तेज जु है आदित्य में, भासत सब संसार ॥

चंद्र मां हि अरु अग्नि में, सो मेरा निरधार ॥ १२ ॥

हे अर्जुन ! सूर्यका वह तेज संपूर्ण संसारको प्रकाशित करता है, और जो तेज चन्द्रमा और अग्नि में वर्तमान है उसको मेरा ही तेज जाना मां विषय चभूतानि धारया म्यहमोजसा
पुष्णामि चोषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः

दोहा-धारतहो जब जीवकों, पैठिपुहमिपरवेस ॥

पोषतहोही औषधी, वहरसशशिकेमेस ॥ १३

हे अर्जुन ! मैंही पृथ्वीमें प्रवेश करके सब चराचर प्राणियोंको धारण करता हूँ और रसात्मक सोम होकर सम्पूर्ण औषधियोंका पोषण करता हूँ अर्थात् उन्हें बढ़ता हूँ ॥ १३ ॥

अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनां देहमाश्रितः

प्राणापानसमायुक्तः

दोहा-मैंहीं जठरा अग्निनिवहै, सब देहिनि मे आय

प्राण अपान सहाइसों, जारत अन्न पचाय ॥ १४

हे अर्जुन ! मैंही वैश्वानर अर्थात् जठराग्नि होकर प्राणियोंके देहमें प्रवेश करके प्राण और अपान वायुको संग ले भक्ष्य, भोज्य, चोष्य लेहा इन चारों प्रकारके अन्नोंका पचाता हूँ ॥ १४ ॥

सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञा-

नमपाहनं च ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वे-

दांतकृद्देवविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

दोहा-सब के हियमें हों रहों, मोते ज्ञान विचार ॥

वेद सबै मोको कहैं, मोतिन को करतार ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! मैंही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे श करता हूँ इसीलिये मेरे ही द्वारा पहिले किये हुए विषयोंका होता है इन्द्रियोंके संयोगसे रूपादि विषयोंका ज्ञान भी

होता है, इन सबका विचार भी मेरे ही द्वारा होता है, मैं ही सब वेदों से ज्ञान योग्य हूँ और वेदांत का कर्ता तथा वेदों का जाननेवाला भी मैं ही हूँ

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥

दोहा—लोक में झट्टे पुरुष हैं, क्षर अरु अक्षर भाग्य ॥—

क्षर शरीर को कहते हैं, अक्षर जीव गिनाय ॥१६॥

अब अपना सर्वोत्कृष्टत्व दिखाते हैं कि—हे अर्जुन! इस लोक में क्षर और अक्षर दो प्रकार के पुरुष हैं, इसमें जो ब्रह्मादिक देहधारी हैं वे क्षर हैं और जो कूटस्थ अर्थात् विकाररहित स्थित हैं वह अक्षर हैं ॥१६॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥

यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्य व्यय ईश्वरः ॥

दोहा—उत्तम पुरुष सु और हैं, परमात्मको भेव ॥

तीन लोकों को धरते हैं, करि करि निजें पद सेव ॥१७॥

इन दोनों में एक उत्तम पुरुष और है जिसे परमात्मा कहते हैं, वही अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रवेश करके त्रिलोकी का पालन करता है ॥

यस्मात्क्षरमतीतो हं मदक्षरादपि चोत्तमः ॥

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोऽत्तमः

दोहा—क्षर अरु अक्षर ते परे, हों सब ते अधिकाम ॥

तां ते वेद रु लोक में, पुरुषोत्तम मम नामा ॥१८॥

अब भगवान् अपने पुरुषोत्तम नामकी यथार्थता दिखाते हैं कि-
हे अर्जुन! क्षर जो जड़ पदार्थ है उनसे मैं उत्तम हूँ और अक्षर जो चे-
तन पदार्थ है उनको मैं प्रेरणाकर्ता हूँ इसलिये अक्षरसे भी उत्तम हूँ इन्हीं
हतुओंसे मैं लोक वेद दोनोंमें पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ १८॥

यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम् ॥

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९

दोहा—पुरुषोत्तम मो नामको, जो जानै इहि भाय ॥

सो सब विधि मो को भजै, सकल ज्ञान निधि माय

हे भारत ! जो पूर्वोक्त लक्षणोंसे निश्चयात्मक बुद्धिद्वारा सुज्ञको
पुरुषोत्तम जानता है वह सर्व ज्ञाता संपूर्ण भावोंसे सुज्ञको भजता है।

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ॥

एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥

दोहा—छिपी बात ग्रंथ न रही, सो तो सो कहि दीन ॥

पारथ सो जानै यहै, सोइ बुद्धि प्रवीन ॥ २० ॥

ज्ञान नही वैराग विनु, और भक्ति नहि होय ॥

तबै ज्ञान वैराग युत, कह्यो रहै सो जाय ॥ १ ॥

इहां प्रकट करि कै कह्यो, जगत दृक्ष को रूप ॥

छेद दृढ वैराग सो, पावै ज्ञान अनूप ॥ २ ॥

बरन्यो आनंद राम नै, यह पुरुषोत्तम योग ॥

कीनो पर उपकार है, रहो सुखी सब लोग ॥ ३ ॥

हे निष्पाप अर्जुन ! इसप्रकार बहुतही सुप्त रस्नेके योग्य यह शास्त्र मैंने तुझे सुनाया है, इसको जान लेनेसे मनुष्य बुद्धिमान् और और कृतकृत्य होजाताहै ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-
र्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां पुराणपुरुषो-
त्तमयोगोनामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

❀ विचार दर्पण ❀

दर्शन ५ .



वर्तमान समयका भूगोल वृत्तान्त.

मनुष्यको संसार का यथावत् ज्ञान तभी प्राप्त हो सकताहै जब कि वह भलीप्रकार तिहास और भूगोलको जानना हो हम भास्त्वर्षके इतिहासका दिग्दर्शनमात्रतो पिछले दर्शनमें कराचुके, अब भूगोलसम्बन्धी कुछ मूल बातें लिखतेहैं । स्मरण रहे कि भूगोल विषाकी यथावत् ज्ञानप्राप्तिमें निम्नलिखित विषाओंके जाननेकी आवश्यकता है। [१) ज्योतिष (अस्त्रीनोमी) (२) भूगर्भविषा (जिओलोजी] [३] रसायन शास्त्र (केमिस्ट्री) (४) वायुशास्त्र मिटिओरोलोजी (५) वनस्पतिशास्त्र [बोटेनी] (६) जीवजन्तु शास्त्र [जूओलोजी] (७) मनुष्यजाति विज्ञान (ऐनथ्रोपोलोजी) (८) इतिहास [हिस्टरी]

भूगोल विषा चार भागोंमें बांटी गई है । (१) गणितभूगोल, जिसमें सूर्यके चारों ओर पृथ्वीकी चाल आदिषा वर्णन है (२) प्राकृतिकभूगोल, जिसमें पृथ्वीकी ऋतुओं और उसके तलपर जो २ पहाड वनस्पति आदि हैं उनका वर्णन है । [३] प्रान्तिक भूगोल, जिसमें पृथ्वीके भिन्न २ देशों और नगरोंके नाम, क्षेत्रफल आदिका वर्णन है। (४) व्यापारिक भूगोल, जिसमें भिन्न २ देशोंकी व्यापार सम्बन्धी वस्तुओंका तथा उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लेजानेके मार्गों आदिका वर्णन है । .

हमारा जो पृथ्वी मंडल है वह नांगीकीभाँति गोलेहै, इसी लिये इस समस्त पृथ्वीमंडल का नाम "भूगोल," रक्खा गया है ।

परमात्माकी सृष्टिमें ऐसे अनेक अर्थात् अनंत गोले आकाशमें घूमरहेहैं; इनसबको,

मिलाकर "ब्रह्मांड" कहते हैं; हमारे पूर्वज ऋषिगण योगबद्ध द्वारा ब्रह्मांड का बहुत कुछ वृत्तांत जानते थे, परंतु जब इस समयके हम लोग सौ पीछे पंचानवे मनुष्य अपनी मातृ-भाषा का लिखना पढ़ना ही नहीं जानते, तो ब्रह्मांड का वृत्तांत कैसे जान सकते हैं। हमारे ब्राह्मण और साधु लोगोंने योगविद्या का अग्न्यासही छोड़ दिया; उनमेंसे अधिकांश तो भारतवर्षके भिन्न-प्रान्तों का नाम तक नहीं जानते, जो बड़े शोक की बात है।

पृथ्वीमंडलके बीचों-बीच उत्तर दक्षिणकी यदि एक शंकु [कीली] निकाला जाय तो वह सातसहस्र नौ सौ मील लंबा होगा और पूर्वपश्चिम निकाला जाय तो सातसहस्र नौ सौ छब्बीस मील लंबा होगा अर्थात् उत्तर दक्षिणवाले शंकुसे छब्बीस मील बड़ा। पृथ्वीकी परिधि 'घेर' चौबीस सहस्र नौ सौ मील लंबी है। पृथ्वी भी एक ग्रह है। सब ग्रहोंमें प्रधान ग्रह सूर्य है, उसके चारों ओर दूसरे ग्रह पृथ्वी, चन्द्रमा शुक्र, शनि आदि घूम रहे हैं।

सूर्य एक आग का गोला है यह चारों ओर प्रकाश और तेज दे रहा है। उसकी गर्मीमेंसे पृथ्वी केवल बर्हिंस करोड सचाइस लाखवां भाग लेती है, तो भी यह उष्णता (गर्मी) सर्वजीव जन्तुओंकी, आयुकी, रक्षाके लिये पर्याप्त है। सूर्य एकवर्षमें जो उष्णता आकाशमें विस्तारित करता है, उसका अनुमान इसीसे होसका है कि यदि पृथ्वी जैसे बड़े साठ कोपलके डुकड़े जलाये जायें तो भी वह उतनी उष्णता नहीं दे सकेंगे।

पृथ्वी सूर्यके चारों ओर अपने ध्रुवपर घूम रही है। इस धुरीके उत्तरके सिरेको उत्तरध्रुव और दक्षिणके सिरेको दक्षिणध्रुव कहते हैं। इन ध्रुवोंपर चारों ओर हिम (वर्फ) ही हिम फैली हुई है। वहाँ तक पहुँचनेकी चेष्टा अब की जा रही है। कुछ पुरुषार्थी लोग उनके आसपास पहुँचे भी हैं, परंतु पूरा पता अभी तक नहीं लगाई कि उनके आगे क्या है।

[जल भाग]

पृथ्वीमंडलमें तीन भाग जल है और एक भाग स्थल है। जलके पाँच बड़े भाग हैं, जिनके नाम निम्न लिखित हैं :-

(१) पैसिफिक अर्थात् शांत समुद्र, अमेरिका और एशियाके बीचमें है, यह बहुत बड़ा समुद्र है अर्थात् पृथ्वीमंडलका तिहाई भाग घेरे हुए है और शेषके चारों समुद्रोंके बराबर है, इस का क्षेत्रफल आठ करोड वर्ग मील है। इसमें वायु का बल अधिक नहीं रहता है; इसकी गहराई सर्वाधिक सहस्र नौ सौ तीस फीट मापी गई है।

(२) एटलंटिक अर्थात् वायुप्रधान महासागर, यूरोप, अफ्रीका, अमेरिकाके बीचमें फैला हुआ है। यहाँ का वायु बड़ा प्रबल है, इसीलिये जहाजोंको यहाँ अधिक दुष्कान का भय रहता है, इसके किनारेकी भूमिका सब फल बावन

सहस्र मील है और इसका क्षेत्रफल दो करोड़ पचास लाख मील है।

(३) भारतवर्षीय महासागर, यह समुद्र एशियाके दक्षिण भागमें फैला हुआ है, इसके उत्तरमें अधिक भाग भारतवर्षका है। क्षेत्रफल दो करोड़ वर्गमील है।

(४) उत्तरीयध्रुव महासागर, प्रायः हिमाच्छादित है अर्थात् इसमें वर्षादी वर्ष फैल हुआ है, इसका पूर्णवृत्तांत अभी तक नहीं ज्ञात हुआ। क्षेत्रफल पचास लाख वर्गमील समझा जाता है।

(५) दक्षिणीयध्रुव महासागर, प्रायः हिमाच्छादित है; इसका वृत्तांत भी पूरा नहीं जाना गया है, इसका क्षेत्रफल अस्सी लाख वर्गमील समझा जाता है।

[स्थलभाग]

स्थलके निम्नलिखित छः बड़े भाग हैं:—

(१) एशिया, इसका क्षेत्रफल एक करोड़ साठ लाख वर्ग मील है, स्थल भागमें यह सबसे बड़ा भाग है।

(२) यूरोप, इसका प्राचीन नाम हरिवर्षदेश था, इसका क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील है। यह सबसे छोटा स्थल भाग है।

(३) अफ्रिका, इसका क्षेत्रफल एक करोड़ बीस लाख वर्गमील है।

(४) दक्षिण अमेरिका, इसका क्षेत्रफल साठ लाख वर्गमील है।

(५) उत्तर अमेरिका, इसका क्षेत्रफल नब्बे लाख वर्गमील है।

(६) ओशीनिया, (बहुत से बड़े टापुओं का समूह) इसका क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील है।

इस प्रकार समस्त स्थल भाग का क्षेत्रफल पांच करोड़ बीस लाख वर्गमील हुआ।
मनुष्यसंख्या—समस्त पृथ्वीमंडलकी मनुष्यसंख्या सन् १९५७की मनुष्यगणनाके अनुसार, एक अर्ब बावन करोड़ समझी जाती है; इनमें ईसाई—पैंतालीस करोड़ हैं, और बौद्ध पैंतालीस करोड़ हैं।

हिन्दू (आर्य) बीस करोड़ हैं, मुसलमान उन्नीस करोड़ हैं, बुद्धदी बस्ती लाखों और अन्य २ मतावलंबी लोग उन्नीस करोड़ हैं।

समीक्षा—हिन्दू (आर्य) लोग दिन प्रतिदिन घटते जाते हैं; अतः हिन्दू (आर्य) जातिके हितैषी लोगोंको चाहिये कि अपनी शारीरिक, मानसिक और सामाजिक सुधारों और अपने अछूत भाइयोंकी ओर भी ध्यान दें।

भाषाएँ—पृथ्वीमंडलपर लगभग चारसहस्र भाषाएँ बोली जाती हैं; परन्तु सात भाषाएँ जिनको चार २ करोड़से अधिक मनुष्य बोलते हैं; चीनी, अंग्रेजी, हिन्दी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, और रशियन भाषाएँ हैं।

(१) एक मील बीस एक मील लम्बी भूमि एक १ वर्गमील कहलाती है।

पृथ्वी के महाद्वीप ।

पृथ्वीके उसभागको, जिसमें बहुतसे देशहों "महाद्वीप" कहते हैं. इससमय पृथ्वीमंडलमें एशिया आदि छः महाद्वीप हैं जैसा कि— ऊपर वर्णन किया गया है.

१-एशिया.

मनुष्य संख्या छियासी करोड़है अर्थात् पृथ्वीके मनुष्यों से अ यी से अधिक है, यह गणना सन् १९०१ अर्थात् सन् १९५७की मनुष्यगणना के अनुसार है, लंबाई पूर्व पश्चिम छः सहस्र सातसौ मील और चौड़ाई उत्तर दक्षिण पाँच सहस्र तीन सौ मील है । सम्पूर्ण क्षेत्रफल एक करोड़ साठलाख वर्गमील है ॥

एशियाके देश.

१-भारतवर्ष; यहाँका राज्य अंग्रेजोंगवर्नमेंट करती है; क्षेत्रफल सत्तरलाख तेहत्तर सहस्र वर्गमील है; और मनुष्यसंख्या उन्तीस करोड़ चवालीस लाख है.

२-अवैस्तान; यहाँका राज्य सुल्तानरूप करते हैं. क्षेत्रफल बारहलाख वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या साठ लाख है ॥

३-पर्शियाईरूप; यहाँका राज्य सुल्तान रूप करते हैं. क्षेत्रफल सात लाख वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या दो करोड़ बालाख है ॥

४-ईरान; यहाँका राज्य राजा और प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं. क्षेत्रफल छ.लाखअठ्ठाईस सहस्र वर्गमील है, और मनुष्यसंख्यापचानव लाख है.

५-अफगानिस्तान; यहाँका राज्य एक राजा द्वारा होता है; क्षेत्रफल दो लाख पचास सहस्र वर्गमील है और मनुष्यसंख्या पचासलाख है ॥

६-सालोन (सिंहलद्वीप); यहाँका राज्य अंग्रेजी गवर्नमेंट करती है, क्षेत्रफल चौबीस सहस्र वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या छत्तीस लाख है ॥

७-श्यामदेश; यहाँका राज्य स्वतंत्र एक राजाहो करता है, क्षेत्रफल दो लाख चवालाख सहस्र वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या पचास लाख है ॥

८-फेचइडोचाइना; इसका राज्य फेंचगवर्नमेंट करती है, क्षेत्रफल दो लाख छप्पन सहस्र वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या एक करोड़ सत्तर लाख है ॥

९-चीन; यहाँका राज्य प्रजातंत्र है. क्षेत्रफल बियालीस लाख सत्तरसहस्र वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या तियालीसकरोड़ पैंतालीस लाख है ॥

१०-एशियाईरूस; यहाँरूसका जार स्वतंत्र राज्य करता है. क्षेत्रफल बासठलाख इक्कीस सहस्र वर्गमील है, और मनुष्यसंख्या एक करोड़ बानबे लाख है ॥

२-यूरोप.

मनुष्य संख्या-उनतालीस करोड नब्बे लाख है. लम्बाई पूर्वपश्चिम चौतीस सौ मील है. चौड़ाई-उत्तर दक्षिण चौबीस सौ मील है.

भारतवर्ष से तीनगुणा बड़ा है. सम्पूर्ण क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील है ॥

यूरोपके देश.

१-ग्रेटब्रिटेन और आयरलैंड अर्थात् अंग्रेजोंका देश, जिसे हम लोग विलायत कहते हैं. जहाँ राजा और प्रजाप्रतिनिधि सभा राज्य करते हैं. इनका क्षेत्रफल एक लाख इक्कीस सहस्र तीन सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चार करोड उन्नीस लाख है ॥

२-फ्रान्स; यह राज्य प्रजातंत्र है क्षेत्रफल दो लाख सात सहस्र वर्गमील है और मनुष्य संख्या तीन करोड नवासी लाख है ॥

३-स्विट्जरलैंड-यहाँका राज्य प्रजातंत्र है, क्षेत्रफल पंद्रह सहस्र नौ सौ वर्गमील है और मनुष्य संख्या तेतीस लाख है ॥

४-जर्मनी-यहाँका राज्य राजा और प्रजा प्रतिनिधि सभा द्वारा चलाया जाता है क्षेत्रफल दो लाख आठ सहस्र आठ सौ वर्गमील है, मनुष्यसंख्या छः करोड 'दो लाख है

५ आस्ट्रिया-हंगेरी-यहाँका राजा और प्रजाप्रतिनिधि सभा राज्य करते हैं क्षेत्रफल दो लाख पैंसठ सहस्र वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चार करोड सत्तर लाख है

७-यूरोपियन रूस-यहाँ का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं. क्षेत्रफल उन्नीस लाख छिआनवे सहस्र सात सौ वर्गमील है. और मनुष्यसंख्या दस करोड चौहत्तर लाख है

७-इटली यहाँ का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं, क्षेत्रफल एक लाख दश सहस्र पांच सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या दश करोड चौहत्तर लाख है ॥

८-स्पेन-यहाँ का राज्य राजा और नाम मात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं; क्षेत्रफल एक लाख चौरानवे सहस्र सात सौ वर्गमील है; मनुष्यसंख्या एक करोड छियासी लाख है ॥

९-पोर्तगाल-यहाँ का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं; क्षेत्रफल पैंतीस सहस्र चार सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चौवन लाख है ॥

१०-नार्वे-यहाँ का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं; क्षेत्रफल एक लाख चौबीस सहस्र चार सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या बार्दिस लाख है

११-स्वीडन-यहाँ का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधि सभा करते हैं

क्षेत्रफल एकलाख बहत्तर सहस्र आठसौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या इक्यावन लाख है ॥

१२-डेन्मार्क-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल पंद्रह सहस्र तीन सौ वर्गमील है और मनुष्य संख्या चौबीस लाख है ॥

१३-हालैंड-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं क्षेत्रफल बारह सहस्र छः सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या पचपन लाख है ॥

१४-बेल्जियम-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं, क्षेत्रफल ग्यारह सहस्र तीन सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या बहत्तर लाख है ॥

१५-रोमानिया-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं, क्षेत्रफल पचास सहस्र आठ सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या उनसठ लाख है ॥

१६-बल्गेरिया-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल सैंतीस सहस्र दो सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या सैंतीस लाख है ॥

१७-सर्विया-यहां का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल अठारह सहस्र छः सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या चौबीस लाख है ॥

१८-ग्रीस [यूनान] यहाँ का राज्य राजा और नाममात्र की प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल पच्चीस सहस्र वर्गमील है और मनुष्य संख्या चौबीस लाख है ॥

१९-यूरोपियन टर्की-यहां का राज्य राजा और प्रजाप्रतिनिधिसभा करते हैं; क्षेत्रफल पैंसठ सहस्र तीन सौ वर्गमील है और मनुष्यसंख्या इकसठ लाख है ॥

३-अफ्रीका.

यह महाद्वीप उत्तरदक्षिण पाचसहस्र मील लम्बा है और पूर्वपश्चिम चारसहस्र छः सौ मील चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल एक करोड़ बीसलाख वर्गमील है।

मनुष्यसंख्या-पंद्रह करोड़ से बीस करोड़ समझी जाती है।

इस देशमें प्रधानतः अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, बेल्जियम, इटालियन, पोर्चुगीज, स्पेनिश, टर्की गवर्नमेंट राज्य कर रही हैं।

प्रधान २ देशोंके नाम-इजिप्ट, मोरोको, ट्रिपोली, अल्जेरिया, सोडान, बॉंगो, टांसवाला आदि हैं।

यहापर प्रधानता यहाँके निवासी, हब्शी, आदि काले रंगके लोगोंकी है। यूरोपियन लोग राज्य होनेपर भी बहुत थोड़े हैं; इस देशके बहुतसे भागोंमें जंगली लोग ही बसते हैं जो प्रायः नष्ट अवस्थामें रहते हैं।

४-उत्तरीय अमेरिका.

क्षेत्रफल—नब्बे लाख वर्गमील है।

मनुष्यसंख्या—दश करोड़ तीन लाख है; जिनमें गोरोंग लोग सात करोड़ पचास लाख हैं, प्राचीन निवासी पचास लाख, एशिया लोग एक करोड़, चालीस लाख और अन्य लोग नब्बे लाख हैं।

प्रसिद्ध २ देश—वेनेडा, ग्रीनलैंड, यूनाइटेड स्टेट्स, मेक्सिको आदि हैं।

५-दक्षिण अमेरिका.

क्षेत्रफल—सत्तर लाख वर्गमील है।

मनुष्यसंख्या—दो करोड़ चौबीस लाख है।

प्रसिद्ध २ देश—पानामा कोलंबिया, ग्याना लापलाटा, ब्रिजीआइ हैं।

६-ओशीनिया.

पैसिफिक महासागर में बहुतसे द्वीप हैं; जिन में से प्रधान मेलेशिया, आस्ट्रेलिया, मेलनेशिया, माइक्रोनेशिया और पालीनेशिया हैं; इनको मिलाकर ओशीनिया बोलते हैं।

इन सबका क्षेत्रफल चालीस लाख वर्गमील से अधिक है अर्थात् भारत वर्ष से तीन गुणा अधिक क्षेत्रफल है। और इन सबमें मनुष्यसंख्या चार करोड़ के आसपास है।

वर्तमान भारत वर्ष के भूगोल का

संक्षिप्त वर्णन.

सीमा—उत्तर में हिमालय पर्वत जो पृथ्वी के मध्य पर्वतों से ऊँचा है। पूर्व में बंगाल की खाड़ी और चीन, दक्षिण में भारत वर्ष का महासागर जिसको "इण्डियन आरियन" कहते हैं; पश्चिम में अफगानस्थान और अरबका समुद्र है। खंडाई उत्तर से दक्षिण तक और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक समान ही है अर्थात् अठारह २ सौ (१८००) मील है।

क्षेत्रफल—पंद्रह लाख वर्गमील है।

मनुष्यसंख्या—इकतीस करोड़ चौबीस सहस्र है; इनमें हिन्दू (आर्य) लोग तेईस करोड़ हैं और शेष इतर लोग हैं।

पर्वत श्रेणियाँ—मुख्य २ ये हैं—हिमालय पर्वत, विंध्याचल पर्वत, सतपुरा पर्वत, अरवली पर्वत जिसकी सबसे बड़ी चोटी "आबू" कहलाती है; पश्चिमी घाट और पूर्वी घाट के पर्वत.

नदियाँ—मुख्यतः ये हैं—सिन्धुनदी जो भारतवर्षमें सबसे लंबी नदी है। सेलम, चनाव, रावी, व्यास, और सतलज ये पांच बड़ी नदियाँ सिन्धुनदीमें मिलती हैं। यह सब पंजाब (पंचाल) देशकी प्रधान नदियाँ हैं।

ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना, नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी क्रमशः बड़ी २ नदियाँ हैं; ऐरावती नदी वर्गमें है।

देशके विभाग—इस समयका भारतवर्ष दो भागोंमें विभक्त है

[क] ब्रिटिशइंडिया अर्थात् भारतवर्षका वह भाग, जिसका शासन मुख्यतया साकार अंग्रेजी के हाथमें है। इस भागका क्षेत्रफल अनुमान दशलाख, अठानवे सहस्र वर्गमील है। मनुष्यसंख्या चौबीस करोड़ है।

(ख) भारत वर्षका, वह भाग जिसका शासन मुख्यतया देशी राजा महाराजाओं के हाथमें है।

देशी छोटे बड़े रजवाड़ोंकी संख्या छःसौ छपालीस (६४६) है।

इन्की क्षेत्रफल—चारलाख दोसहस्र वर्गमील है और मनुष्य संख्या छः करोड़ एकहचर लाख (६७१,००,०००) है

ब्रिटिश इंडियाके भागोंके नाम

इनमेंसे प्रत्येक भाग “प्रान्त” कहलाता है; सब प्रान्त यह हैं। बंगाल, मद्रास, बंबई संयुक्तप्रान्त आगरा और अवध, पंजाब, आसाम और चट्टगाम, वर्मा, मध्यप्रदेश और बरार, संयुक्तप्रान्त बिहार और उड़ीसा, कुर्ग, अजमेर (मेवाड़)।

देशीरजवाड़ोंके नाम

मुख्यतया ये हैं। नैपाल, हैदराबाद, येस्सर, काश्मीर, जम्बु, बड़ोडा, कोल्हापुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, उदयपुर, इन्दौर, ग्वालियर, रीवा, भोपाल, भरतपुर परोली, झाँद, नाभा, पटियाला, सिरौही, काठा, बुंदी।

समीक्षा—जलवायु और ऋतुओंकी अपेक्षासे भारतवर्ष पृथ्वीके सब देशोंमें सर्वशिरोमणि माना गया है यहापर सब देशोंकी ऋतुयें, सब देशोंकी उत्तम २ वनस्पतियें प्राप्त हैं। हमारे प्राचीन ऋषियोंनेभी इसी देशका निवास उत्तम माना है।

श्लोक—सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनघोर्यदन्तरम् ॥ तदेवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ मनुः २।१७॥ (अर्थ) सरस्वती और दृषद्वती जो देवनादियाँ हैं, इन दोनोंके मध्यका भाग देवनिर्मित है अर्थात् देवताओं द्वारा उत्तम बनाया हुआ है इस देशको मुनिजन ब्रह्मावर्त देश कहते हैं।

समीक्षा—पूर्व कालमें ये दोनों नदियाँ कुरुक्षेत्रमें थीं

श्लोक—तस्मिन्देशे य आचारः परंपार्यं क्रमागतः । वर्णानां सातत्वात्मानं स उवाच चार उच्यते ॥ मनुः अ. २ ॥ श्लो. १८

(अर्थ) उसदेशमें रहनेवाले ब्राह्मणादिका जो परंपरासे आया हुआ आचार अर्थात् रहने सहनेका ढंग है उसीको सदाचार कहते हैं। समीक्षा-आशय यह है कि भेष्ट पुरुष " ब्रह्मवर्त " निवासियोंके कुल्यही आचरण करें ॥

श्लोक-कुरुक्षेत्रं च मत्स्याष्व पंचालाः शूरसेनकाः । एषः ब्रह्मर्षिदेशो वे
ब्रह्मवर्तदिनंतरः । २।१९।

(अर्थ) कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल शूरसेन (मथुरा प्रान्त) ब्रह्मर्षिदेश ह ॥
(श्लोक) आसमुद्रात्तु वे पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरायवर्तं
विदुर्बुधाः ॥ म० २।२२ ॥

(अर्थ) पूर्वके समुद्रसे पश्चिम और पश्चिम के समुद्रसे पूर्व तथा हिमालय और विंध्याच के बीचके देशको " आर्यावर्त " कहते हैं ।

समीक्षा-इस देशका यह नाम सनातन है।
आर्यजन सदासे इसमें वास करते आये हैं इसा इससे देशका नाम आर्यावर्त हुआ ।
जो लोग कहते हैं कि हिन्दू (आर्य) लोग यहापर मध्यप्रशिया या ईरानसे आये वह प्रमाणबिह्व ही कहते हैं।

श्लोक-एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिखिरन्पृथिव्या
सर्व मानवाः ॥ मनुः अ० २ श्लोक २० ॥

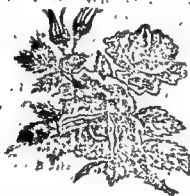
(अर्थ) इन उपरोक्त ब्रह्मवर्त, ब्रह्मर्षिदेश तथा आर्यवर्त देशोंमें जो लोग ब्राह्मणादि द्विजातिवर्ग हैं उनके सकाशसे पृथ्वीके सब मनुष्य अपने २ कलधर्म और आचारविचारकी शिक्षा ग्रहणकरे।

समीक्षा-पाठकेविचार सते हैं कि जिससमय यह श्लोक बना है उससमय यह भारतवर्षदेश कैसा उन्नतथा, यहातक कि सत्तरभरके सब मनुष्योंको अपने २ आचार व्यवहार इस आर्यावर्तदेश निवासियोंका सा करना पड़ता था और अब वह समय आगया है कि हमारे देश निवासियोंमें, (विदेशकर रिक्षित मनुष्योंको) रक्षणसहनेमें विदेशी लोगोंका अनुकरण करनेकी बड़ी इच्छा रहती है और इस विदेशी आचारको वह फैलाने नामसे पुकारते हैं ॥

इसका कारण यह है कि वह अपनी रीति, नीति और धर्मसे अत्यन्त अनभिज्ञ हैं। मनुष्यका धर्म उसके भाषा, भेष, भावने पाईपाना जासका है और यह तीनोंही उसकी प्रतिष्ठाके कारणभो हैं । इनकी उन्नतिसे देशकी उन्नति, और अवनति से अवनति होती है; इसके लिये प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं। प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जबतक भारतवर्ष उपरोक्त तीनों बातोंको धारण किये हुएथातबतक इतनी हीनदशा उस देशकी नहीं हुई थी, कि उन्नति होना तो दूर रहा, रही सही धर्मरूपी गाठकी पूंजीभी खो बैठनेवा भय उत्पन्न होगया।

आजकलके नवयुवक इन बातोंकी ओर ध्यान नहीं देकर अपनी उन्नति विदेशी भेष ग्रहण करनेमें ही मानते हैं। कोट, पैट और हेटको धारणकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं, जिसका फल यह होता है कि काकमयूरन्याय की भांति अपनी समाजसे भी तिरस्कृत होते हैं, और अभिलषित भी हास्यका कारण बनते हैं ।

जिस समय भाषा, भेष, भाव यह तीनों ही यनुष्यके बदल गये, उस समय सम्झलेना चाहिये कि उसको अपने धर्म और देश के गौरव की कुछ परवाह नहीं रही और न उससे अपने देश अथवा समाज का कुछ लाभही होसका है। यद्यपि भारतवर्षके कितने ही नवयुवकों में भाषा तथा भेषका परिवर्तन आरंभ हुआ है किन्तु धर्मभाव का परिवर्तन अभी तक नहीं हुआ है; यह देशका सौभाग्य ही सम्झना चाहिये। जिस दिन यह पिछला परिवर्तन होना प्रारंभ होजायगा उसदिन भारतवर्ष की न जाने क्या गति होगी। इसलिये नवयुवकों से हमारा अनुरोध है कि वह अपनी उन्नति अपने धर्म, समाज और भेषकी उन्नतिमें ही समझें। [पूर्ण]



अथ षोडशोऽध्यायः ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

अभयंसत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः॥

दानंदमश्चयज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।

दोहा-अभयहियेकी शुद्धता, ज्ञानयोगथिर होय॥

दानयज्ञतपवेद रुचि, दमजुसरलता जोय ॥१॥

पन्द्रहवें अध्यायमें जो भगवान् कहै कि मेरे कहे हुए ज्ञानको जो जानलेते हैं वे बुद्धिमान और कृतकृत्य होजाते हैं इसलिये इस अध्यायमें तत्त्वज्ञानके अधिकारी और अनधिकारी मनुष्योंका वर्णन करतेहुए उस तत्त्वज्ञान के अधिकारके निमित्त दैवीसंपदाका वर्णन करते हैं कि हे अर्जुन ! निर्भयता, चित्तकी प्रसन्नता, आत्मज्ञानमें निष्ठा, सुपात्रको दान, इन्द्रियोंका निग्रह, पंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान, वेदोंका पठनपाठन, तपश्चर्या, नम्रता ॥ १ ॥

अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्

दयाभूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥२॥

दोहा-अनहिंसा अरु सत्यसव, रहै क्रोध विनु नित्य

त्याग शान्ति वहु विधरचै, दोषन आनै चित्त ॥३॥

दया कर सव जंतु पर, तजि चपलाई भाय ॥

लाज कर्म हू हृदय मृदु, व्यर्थ क्रिया छुटि जाय ॥४॥

किसीको पीडा न पहुँचाना, हितकारी सत्यभाषण करना, क्रोध न करना, त्याग अर्थात् प्रिय अप्रिय बातोंको छोड देना, शान्ति

(चित्तमें उद्धिग्नता न होने देना) निन्दा न करना प्राणिमात्रपर दया, स्थिर चित्तता, स्वभावमें कोमलता, अकरणीय कर्मोंसे लाज करना चंचलता को छोड़ देना ॥ २ ॥

**तेजःक्षमाधृतिःशौचमद्रोहोनातिमानिता
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३**

दोहा-तेजछमाशुचिधर्म धृति, तजै द्रोहअभिमान
दैव संपदा जिन लही, तामें एगुण जान ॥ ३ ॥

तेज, क्षमा, धृति (दुःखमें चित्तको स्थिर रखना), शौच (मनको घुरी बातोंसे पवित्र रखना), किसीसे द्रोह न करना, अपनेमें पूज्य होनेका अभिमान न करना, ये छबीस दैवीसंपदा हैं, ये उसी मनुष्यके होती हैं जिसका आगेको कल्याण होनेवाला है ॥ ३ ॥

दंभोदरपोऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥

अज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरीम्

दोहा-दभदपेअज्ञानरिस, अरु अज्ञानकठोर ॥

जामें एगुणतीनलहि, असुरसंपदाघोर ॥ ४ ॥

दंभ (धर्मकी ओटमें कपट व्यवहार रखना), दर्प (धन और विद्याका गुमान) अभिमान, अति निष्ठुरता और अज्ञान ये छः आसुरी संपदा उसके होती हैं जिसका अकल्याण होनहार है ॥ ४ ॥

दैवीसंपद्विमोक्षायनिबन्धायासुरीमता ॥

माशुचःसंपदंदैवीमभिजातोऽसिपांडव ॥

दोहा-दैवसंपदाते मुकति, बंधआसुरीजोहि ॥

सोचेजनि अर्जुन भई, दैवसंपदा तोहि ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! जो दैवीसंपदासे युक्त हैं वे तत्त्वज्ञानके अधिकारी हैं और इस तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होजाता है और जो आसुरी संपदासे युक्त हैं वे बन्धनमें पड़ते हैं (यह सुन अर्जुनको संदेह हुआ कि मैं तत्त्वज्ञानका अधिकारी हूँ वा नहीं ? अर्जुनके मनकी यह बात जान श्रीकृष्ण बोले) कि हे अर्जुन ! तेरा जन्म तो दैवीसंपदाके अभिमुख है तू शोच मत कर ॥ ५ ॥

द्वाभूतसर्गोलोकेऽस्मिन् दैवआसुरएवच ॥

दैवोविस्तरशः प्रोक्तआसुरंपार्थमेशृणु ॥ ६ ॥

दोहा-दैवआसुरीभेदतैं, द्विविधि सृष्टि है एहु ॥

प्रथम कही विस्तारसों, अब दूजी सुनि लेहु ॥
हे अर्जुन ! इससंसारमें दो प्रकारकी प्राणियोंकी सृष्टि है, एक दैवी, दूसरी आसुरी इनमेंसे दैवीका तो विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया है, अब आसुरीका वर्णन सुन ॥ ६ ॥

प्रवृत्तिचनिवृत्तिचजनानविदुरासुराः ॥

नशौचंनापिचाचारोनसत्यंतेषुविद्यते ॥ ७ ॥

दो-अविधि औरविधि जगतकी, आसुरजानतनाहिं
सत्यशौचआचारशुभ, नहिं एगुणतिनमांहि ॥

हे अर्जुन ! जो मनुष्य आसुरी स्वभाववाले हैं सांसारिक धर्मोंमें प्रवृत्त होना नहीं जानते हैं और न उनसे छूटना जानते हैं, न उनमें पवित्रता है न आचार है और न सत्यही है ॥ ७ ॥

असत्यमप्रतिष्ठंते जगदाहुरनीश्वरम् ॥

अपरस्परसंभूतं किमन्यत्कामहेतुकम् ॥ ८ ॥

दोहा-वेदपुराणजुईश्वरहिं, एनहिं जानतमूढ ॥

मैथुनते संसार है, काम हेतु यह गूढ ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! जो आसुर हैं वे यह कहते हैं कि यह जगत् असत्य है, इसको कोई आधार नहीं है और यह भी कहते हैं कि यह जगत् अनीश्वर है इसका कर्ता कोई नहीं है और अपरस्परसंभूत अर्थात् स्त्रीपुरुषके संयोगसे उपजा है इस लिये स्त्रीपुरुषका जो काम है सोई प्रवाहरूपसे इस जगत्का कारण है, यह नास्तिकोंका मत है ॥ ८ ॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥

प्रभवंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिनाः ॥

दोहा-अल्पबुद्धि है, नष्ट जे, यहै दृष्टिगहिलेत ॥

हिंसायुत कर्मनिकरै, रिपुजयक्षयकेहेत ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! नष्ट जिनके आत्मा होगये हैं ऐसे अल्पबुद्धि अनीश्वरवादी जगत्को ऐसी दृष्टिसे देखते हैं के कूर कर्मोंके करनेवाले जगत्के हितकर्ता नहीं हैं, ये तौ जगत्के नष्ट करनेके लिये उत्पन्न होते हैं ॥

काममाश्रित्य दुष्पूरं दंभमानमदान्विताः

मोहाऽद्रहीत्वासग्द्राहान्प्रवर्तंते शुचिव्रताः

दोहा-भजत अपूरन कामको, दंभमान मदमाय
गहन बुराईमोहतें, मांस और मदखाय ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! जो असुर हैं वे दंभ, मान और मदसे युक्त होकर ऐसी कामनाओंके लिये जो अत्यन्त कष्ट उठानेपरभी पूरी नहीं हो सकती है क्षुद्र देवताओंकी आराधनामें तत्पर हो जाते हैं और मोहमें पड़कर मारण मोहन, उच्चाटनादि असद्ब्राह्मणोंको जपते हैं जिनसे ऐहिक वा पारमार्थिक कुछ लाभ नहीं होता है, ऐसे लोगोंका आचरण बड़ा घृणित होता है ॥ १० ॥

चिंतामपरिमेयांचप्रलयांतामुपाश्रिताः ॥

कामोपभोगपरमाएतावदितिनिश्चिताः ॥

दोहा-जाको कछु प्रमान नहिं, ताचिंतामें लीन ॥

कामभोग व्हैहै भलो, निश्चै मानतदीन ॥ ११ ॥

हे अर्जुन ! आसुरी, स्वभाववाले ऐसी चिंतामें फंसे रहते हैं जिसका कुछ प्रमाण नहीं है और जिसका अंतभी जीवनके अन्तके साथही होता है और कामभोगको सुखकी परमावधि और परम पुरुषार्थ मान उसीमें लगे रहते हैं ॥ ११ ॥

आशापाशशतैर्बद्धाःकामक्रोधंपरायणाः ॥

ईहंतेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥

दोहा-आशाफांसनिसोवंधे, कामक्रोधचितचाह

जोरत धन अन्यायकरि, कामभोगनिवाह ॥

अनेक प्रकारकी असंख्य आशाखूबी फांसियोंमें बंधे हुए, काम और क्रोधके आधीन होकर कामनाओंके उपभोगके लिये अनक तरहके अन्याय कर करके धनादिकोंका संचय करते हैं ॥ १२ ॥

इदमद्यमयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ॥

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥

दोहा—यह मैं पायो है अबै. लहै मनोरथ और ॥

यह धन मेरे गेहमें, जो रोंगो बद्ध ठौर ॥ १३ ॥

वे रात दिन ऐसे झगड़ोंमें कैसे रहते हैं कि 'आज मुझको यह मिला' 'मेरा यह मनोरथ पूरा हुआ' 'आज मेरे पास इतना धन है' 'अब इतना हो जायगा' ॥ १३ ॥

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धो हं बलवान् सुखी ॥

दोहा—यह वैरी मैं ही हन्यो. करौ और को अंत ॥

ईश्वर हौं भोगी जु हों, सुखी सिद्ध बलवंत ॥ १४ ॥

आज मैंने असुख शत्रुको मार लिया है, कल औरोंको मारूंगा, मैं ही ईश्वर हूं, मैं ही भोगी हूं तथा सिद्ध, बलवान् और सुखी हूं ॥ १४ ॥

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया

यक्ष्ये दास्यामि भो दिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः ॥

दोहा—मैं ही धनी कुलीन हों, और न मोहिसमान ॥

यजौं देवें मोद हित हां, मोहित वहै अज्ञान ॥ १५ ॥

मैं ही धनाढ्य हूं, उत्तम कुलमें जन्म है तो मेरा है, मेरे समान और दूसरा कौन है मैं ही यज्ञ करूंगा, मैं ही दान दूंगा और मैं ही आनन्द करूंगा. ऐसे विपल मनोरथ आधारी बुद्धिवाले अज्ञानी किया करते हैं

अनेकचित्तविभ्रांतामोहजालसमावृताः ॥

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥

दोहा—उनको मन बहुत भ्रम तु है, मोहजाल परिनिच्छ

परत घोर अति नरक में, कामभोग के हित ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! इस प्रकार इनका चित्त मोहजालरूपी अनेक मनोर-
थोंमें फंसा हुआ भ्रमता रहता है और ये कामोपभोगोंमें आसक्त
रहनेके कारण घोर अपवित्र नरकोंमें पड़ते हैं ॥ १६ ॥

आत्मसंभावितस्तब्धा धनमानमदान्विताः

यजन्ते नाम यज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥

दो०—निज बडियाई नित कहत, नवत न धन अभिमान

नाम मात्र यज्ञ हिकरत, दंभी विना विधान ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! ऐसे मनुष्य अपने लिये सबसे श्रेष्ठ मानते हैं, किसीको
शुक्ल तक नहीं हैं तथा धन, मान और मदसे युक्त होनेके कारण
बिना विधिके ऐसे नाममात्र यज्ञ करते हैं, जिनमें ऊपर धर्मका
आडंबर हो और भीतर कपट भरा हो ॥ १७ ॥

अहंकारबलदर्पकामक्रोधचसंश्रिताः ॥

मामात्मपर देहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

दोहा—अहंकार बल दर्प अरु, कामक्रोध गहिलेत ॥

द्वेषी निज पद देहमें, मोको ते दुख देत ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! ये आसुरी बुद्धिवाले अहंकार, बल, दर्प, काम और

क्रोधके आश्रित रहते हैं और अपनी तथा पराई देहोंमें अन्तर्यामी-
रूपसे रहनेवाले मुझ परमेश्वरसे द्वेष रखते हैं और निंदा करते हैं ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ॥

क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

दोहा—मोद्रोही अरु क्रूरको, पापी अधम निहारि ॥

जगत आसुरी योनि में, तिनहिं देत हों डारि १९

हे अर्जुन! मुझसे द्वेष करनेवाले उन नराधमोंको मैं इसी संसारके बी-
च आसुरीयोंनियोंमें बराबर डालता हूँ ये बड़े क्रूर अर्थात् दुष्ट स्वभाववा-
ले हैं और ऐसे अशुभ हैं कि इनकी सूरत देखनेसे भी पाप लगता है ॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि

मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यांत्यधमां गतिम्

दोहा—जन्म जन्ममें मूढते, होत जु आसुर आय ॥

मोको ते पावत नहीं, परत अधम गति जाय ॥ २०

हे अर्जुन! ये मूढ जन्म जन्ममें आसुरीयोंनिको पाते हैं मुझको क-
दापि नहीं पाते और इस तरह सदा अधम गतिमें पड़े रहते हैं ॥ २० ॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्र यंत्यजेत् ॥

दोहा—नरक द्वार विधि तीन हैं, करत आत्मको नाश
काम क्रोध अरु लोभ पुनि, इन्हैं छांडि सुखवास

हे अर्जुन ! काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नकरके द्वार हैं, येही आत्मा को नष्ट कर देते हैं, इससे हरएकरीतिसे इन तीनोंका त्यागना उचित है ॥ २१ ॥

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परांगतिम् २२

दोहा—तीन्यो द्वार जु नरक के, तिन ते छुटै जु कोय ॥

यतन करै कल्याण को, तबहि परम गति होय २२

हे कौंतेय ! जो मनुष्य नरकके द्वार इन तीनों काम, क्रोध, लोभ को छोड़ देता है वही अपनी आत्माके कल्याणसाधनका उपाय करता है और अन्तमें परमगति पाता है ॥ २२ ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ॥

न स सिद्धिं न वाप्नोति न सुखं न परांगतिम् २३

दो—जो शास्त्रहि विधि छोड़िकै, करत क्रिया बस काम

सिद्ध लोक नहि परम गति, नहि सुखमें विश्राम ॥

जो मनुष्य शास्त्रोक्त विधियोंको छोड़कर स्वेच्छाचारसे काम करता है उसको न तौ सिद्धि मिलती है, न सुख मिलता है और न मोक्ष मिलती है अर्थात् उसके हाथसे यह लोक और वह लोक दोनों जाति रहते हैं

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ

ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि

दोहा-तातेकाजअकाजमें, ताकौवेदप्रमाण ॥
 कर्मनकरितूजानिकै, तिनकोविधिसुविधान ॥
 वेदकहैलुपरोक्षको, मोकोदेवबताय ॥
 मेरेईकर्मनिकरै, मेरीआज्ञापाय ॥ १ ॥
 तजैआसुरीसंपदा, देवी संपति पाय ॥
 ते नर मुक्ति लहै यही, कह्यो सोरहेंउध्याय ॥ २ ॥
 देवासुर संपत्तिको, कह्यो विभागविचार ॥
 तातेसात्विककोकरयो, तत्वज्ञानअधिकार ॥ ३ ॥
 देवासुरसंपातेवरानि, आनंदरामविशेष ॥
 बिनवै बनबारीजिसों, हियमेंनटवरभेष ॥ ४ ॥

इन ऊपर कहेहुए हेतुओंसे, हे अर्जुन ! कर्तव्य और अकर्तव्य
 कर्मोंको व्यवस्थामें शास्त्रको प्रमाण समझकर शास्त्रोक्त विधिसे कर्म
 करना उचित है ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
 श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां
 देवासुरसंपत्तिभागयोगो नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

❀ विचार दर्पण ❀

दर्शन ६.

(सुसंलभान, ईसाईमत समीक्षा)

हम कुछ बातें सत्यार्थप्रकाशसे उद्धृत करके इस दर्शनमें लिखते हैं, जिनको पढ़कर
 बुद्धिमानों को स्वयं अनुमान होगा
 हमारे हिन्दू [अर्थ] धर्मग्रन्थों, गीतादिके वाक्योंके सामने यह कैसे युक्तिहीन
 और विज्ञानविरुद्ध दृष्टते हैं ।

कुरानके वाक्य ।

[१] निश्चय तुझारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथ्वीको छः दिनोंमें उत्पन्न किया फिर करार पकड़ा अर्धरपर । मंजिल २ सितारा ८ मूरत ७ आयत ५३ ॥ ५४ ॥

समीक्षक—“भला जो छःदिनों में जगत् को बनावे और अर्श अर्थात् ऊपरको आकाश में सिंहासनपर आराम करे वह सर्वशक्तिमान् और सर्व व्यापक कैसे है ” ॥

[२] क्या नहीं देखा तु ने यह कि भेजा हमने शयतानों को ऊपर काफिरोंके बहकाते हैं उनको बहकानेपर ॥ मं. ४ सि. १६ सू. १९ आ. ८९

[समीक्षक]—जब खुदाही शयतानों को बहकानेके लिये भेजता है तो बहकानेवालों का कुछ दोष नहीं होसکتा । और न उनको दंड होसکتा है और न शयतानोंको, क्योंकि हुय खुदाके हुक्मसे सब होता है.

[३] फिर निश्चय तुम दिन कयामतके उठाय जाओगे ॥ मं. ४ सि. १८ सू. २३ आ. १६

[समीक्षक]—“कयामत तफ मुरदे कबरमें रहेंगे व किसी अन्य जगह जो उन्हेंमें रहेंगे तो सहे हुए दुर्गन्ध शरीरमें रहकर पुण्यात्माभी दुःखभोग करेंगे यह न्याय नहीं अन्याय है, ॥

[४] और जिसदिन कि फटजावेगा आसमानसाथ बदलीके ॥ मं. १९ सू. २५ आ. २४

(समीक्षक) यह बात कभी सच नहीं होसक्ती कि आकाश वहलोकके साथ फटजावेगा भारतवर्षका हिन्दू (आर्य) जो साधारणभी पठित है जानता है कि आकाश कभी फट नहीं सक्ता, क्योंकि आकाश निराकार और शून्य और अनंत अनादिहै वह कोई फटनेवाली नहीं है ॥

[५] और जबकि आसमान फट जावे । और जब तारे झड़ जावें और जब दर्या चिरे जावें और जब कबरे जिलाकर उठाई जावें ॥

मं. ७ सि. ३० सू. ८२ आ. १२। ३। ४॥

समीक्षक—यह सब बातें विज्ञान शून्य प्रतीत होती हैं ।

हमने ग्रंथ बढ़ानेके अर्थसे अन्य बातें नहीं लिखीं, पाठकों को यदि अधिक बातें जाननेकी इच्छा हो तो सत्यार्थप्रकाश या पंडित भोजदत्त कृत कुरानका भाषा अनुवाद मंगाकर देखें ।

वाईवल के वाक्य ।

[१] तब ईश्वरने कहा कि हम आदमको अपने स्वरूपमें अपने समान बनावें तब ईश्वरने आदमको अपने स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उस ईश्वरके स्वरूपमें उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया और ईश्वरने उन्हें आशीर्वाद दिया तोरते पर्य १ आयत २६ । २७ । २८ ।

[समीक्षक] “यदि आदमको ईश्वरने अपने स्वरूपमें बनाया तो ईश्वरका स्वरूप पवित्र ज्ञानस्वरूप आनंदमय आदि लक्षणयुक्त है उसके सदृश आदम क्यों न हुआ । जब आदम ईश्वरके सदृश बनातो ईश्वर आदमके ‘सदृश अवश्य’ होने चाहिये । वह कैसी प्रमाणाशून्य ये बातें लिखी हैं ” ॥

(२) तब परमेश्वर ईश्वरने भूमिकी धूलसे आदमको बनाया और उसके नयनोंमें जीवनदा श्वास फूँका और आदम जीवता प्राणी हुआ और परमेश्वर ईश्वरने अदम में पूर्व की ओर एक वाड़ी लगाई और उस आदम को जिसको ‘उसने बनायाया’ उसमें रक्खा ॥ पर्व २ अ. ७-८

(समीक्षक) जब ईश्वरने अदममें वाड़ी बनाकर उसमें आदमको रक्खा, तब ईश्वर नहीं जानताथा कि इसको पुनः यहाँसे निकालना पड़ेगा और जब ईश्वर आदमको धूलीसे बनाया तो ईश्वरका स्वरूप नहीं हुआ और हे तो ईश्वरभी धूलीसे बनाहोगा जब उसके नयः—

नॉमें ईश्वरने श्वास फूँका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था या भिन्न जो भिन्न था तो ईश्वर आदमके स्वरूपमें नहीं बना” ॥

(३) और परमेश्वर ईश्वरने आदमको बड़ी नॉदमें डाला और वह सो गया और आदमकी पसली से एक नारी बनाई और उसे आदमके पास लाया ॥ पर्व २ अ. २१ । २२॥

[समीक्षक] “जो ईश्वरने आदमको धूलीसे बनाया तो उसकी स्त्रीको धूलीसे क्यों न बनाया ? देखिये कैसी किलो सोफी है । जो आदमकी एक पसली निकालकर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों होती” ॥

[४] तब वह उनसे जो वाई और कहेगा कि हे शापित लोगो मेरे पाससे उस अनंत आगमें जाओ जो शैतान और उसके दूतोंको लिए तैयार की गई है । इंजीलमत्ती प. २५ अ. ४१

[समीक्षक] “भला यह कितनी बड़ी पक्षपातकी बात है जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो उनके दूसरे हैं उनको अनंत आगमें गिराना परन्तु जब आकाशही न रहेगा तो अनंत आग, नरक, स्वर्ग कहा रहेंगे जो शैतान और उसके दूतोंको ईश्वर न बनाता तो इतनी नरककी तयारी क्यों करनी पड़ती और एक शयतानही ईश्वरके भयसे न डरा तो वह ईश्वरही क्या है ? क्योंकि उसका दूत होकर उसीके विरुद्ध होगया और ईश्वर उसको प्रथमही पकड़कर बंदीगृहमें न डालसका न मारसका पुनः उसकी ईश्वरता क्या ? जिसने इसको चालीस दिन दुःखदिया ? ईसाभी उसका कुछ नहीं कर सका तो ईश्वरका बेटा, बनना हुआ,,

(नोट) अरब देश के दक्षिणभागमें एक नगर है,

[५] और एक बड़ा आश्चर्य दिखाई दिया अर्थात् एकस्त्री जो सूर्य पहिने है और चांद उसके पाँवतले है और उसके शिरपर बारह तारों का मुकुट है । और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसवकी पीड़ा उसे लगी है और वह जन्मके पीडित है और दूसरा आश्चर्य स्वर्गमें दिखाई दिया और देखो एक बड़ा लाल अजगर है जिसके सात शिर और दशशीर्ष हैं और उसके शिरोंपर सात राजमुकुट हैं और जिसकी पूँछने आकाशके तारोंकी एक निहाई को सँचकर उन्हें पृथ्वी पर डाला ॥ योहन्ना प्रथम पत्र १२। आयतें १। २। ३। ४ ॥

[समीक्षक] स्वर्गमें भी बिचारी स्त्री चिल्लाती है उसका दुःख कोई नहीं सुनता न मिटा सकता है और उस अजगरकी पूँछ कितनी बढायी जिसने तारोंको एक तिहाई पृथ्वीपर डाला भला पृथ्वी तो छोटी है और तारे भी बड़े २ लोक हैं इस पृथ्वीपर एकभी नहीं समासका कैसा आश्चर्य

[६-] और वह बड़ा अजगर गिराया गया है वह प्राचीन साँप जो दियावल और शैतान कहावता है जो सारे संसारका भरमाने हारा है ॥ यो० प्र० प० १२ आ० ९ ॥

[समीक्षक] “क्या-जब वह शैतान स्वर्गमें था तब लोगोंको नहीं भरमाता था उसको जन्मभर बंदीमें घिरा अथवा मार क्यों न डाला उसको पृथ्वीपर क्यों डाल दिया ? जो सब संसारका भरमाने वाला शैतान है तो शैतानको भरमाने वाला कौन है ? यदि शैतान स्वयं भ्रम है तो शैतानके बिनाही भ्रमने हारे भ्रममें और जो उसको भरमाने हारा परमेश्वर है तो वह परमेश्वर नहीं होसका है, जानतो यह पढता है कि ईसाइयोंका ईश्वरभी शैतानसे डरता होगा ? जगतमें शैतानका जितनाराज्य है उसके सामने सहस्रांशभी ईसाइयोंके ईश्वरका राज्य नहीं इसीलिये ईसाइयोंका ईश्वर उसे हटा नहीं सका होगा”।

[७] जिसके सम्मुखसे पृथ्वी और आकाश भाग गये और उनकेलिये जगह न मिली और भेन क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकोंको ईश्वरके आगे सडे देरा और पुस्तक खोलैगये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवनका पुस्तक खोलैगया और पुस्तकोंमें लिखी हुई बातों मृतकोंका विचार उनको कर्मोंके अनुसार कियागया ॥ यो० प्र० प० २० आ० ११। १२ ॥

[समीक्षक]-“भला पृथ्वी और आकाश कैसे भागसकेंगे और वह किसपर ठहरेंगे ? जिनके सामनेसे भगे उसका सिंहासन और वह कहाँ ठहरा ? और मृतक लोग परमेश्वरके सामनेसे सडे कियेगये तो परमेश्वरभी बैठा होगा वा सटा होगा ? क्या यहाँकी कचहरी और दुकानके समान ईश्वरका व्यवहार है जोकि पुस्तक लेखानुसार होता है और सबजीवोंका वृत्तांत ईश्वरने लिखा था उसके कर्मचारियोंने ?

ऐसी २ बातोंसे अनीश्वरको ईश्वर और ईश्वरको अनीश्वर ईसाई आदि मतवालोंने बनादिया है ॥

समीक्षा—अब पाठक जानगये होंगे कि मुसलमान, ईसाई लोगोंके धर्मग्रंथोंमें जीव, प्रकृति, ईश्वर और कर्म फिलोसोफीका यथार्थ निर्णयहीनहीं कियागया है । यदि वर्णन होता तो ऐसी प्रमाणिक विरुद्ध बातें कैसे लिखीजातीं । हमारे धर्मग्रंथों वेद, उपानिषद् आदिमें लिखा है कि ईश्वर प्रकृतिके परमाणुओंसे अपनी शक्ति द्वारा ससारकी रचना करताहै और एक अवधिमें पाँच इन परमाणुओंको भिन्नकर देताहै तो इस संसारका संहार होजाता है अर्थात् वही प्रकृति अथवा परमेश्वरकी मायाअपने सूक्ष्मरूप परमाणुओंमें मिलजातीहै इसीकामेलकालकहतेहैं इतने समय तक जीव निद्रारूपमें अपने २ कर्मोंको सापटिये अनंत आकाशमें रहते हैं और एक अवधिमें पश्चात् परमात्मा पुनःउन्ही सूक्ष्म परमाणुओंके स्थूल रूपमें लाकर पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि आदिको रचता है और सब जन्तुओंको पुनःअपने २ पूर्व जन्मों के कर्मों द्वारा भोग भोगनेको चक्रमें आना पड़ता है जीव अपने २ कर्मोंके अनुसारही सुखी दुःख होते हैं । जैसा यह पृथ्वीमंडल दीप्तता है वहीप्रकारके अनंत क्षेत्र लोकान्तर हैं जैसा कि गीताके पद्यसे विदित होसकताहै । विशेष हमलोग ईश्वरको किसी स्थान पर बेंठाहुआ नहीं २ बाढीवाला वा अ-यत्नरूपवाला नहीं मानते हम ईश्वरका ऐश्वर्य सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक मानते हैं । उसको अपने कर्मचारि रचनेकी आवश्यकता नहीं कि वह जीवोंके कर्मोंके लेखे लिखाकरे जीवके साप में अन्तःकरण ऐसा बनादिया है कि जो जीवके कर्मोंका लेखा रक्षताहै । और न हमलोग प्रलयकालतक जीवोंका कवरमें पड़ा रहना और एकदिन उठकर परमात्माके सामने जाकर हिसाब देना और मोहम्मद या ईसाके कहनेपर खुदाका उनके ऊपर दया करना मानते हैं । हमतो कहते हैं कि जीव एवशरीर छोड़कर अपने कर्मानुसार दूसरा शरीर धारणकर लेता है इसी लिये हिन्दू [आर्य] लोग मृत्युशरीरको जलादेते हैं । यह जलानेकी प्रथा हमलोगोंमें प्राचीनकालसे चलीआती है अब यूरोप, अमेरिकामेंभी बहुत लोगोंने अपने मृतकोंको जलाना प्रारंभ किया है । यूरोप अमेरिकाके सहस्रों अनुष्ण ईसाई धर्मको छोड़कर इसप्रथा शकैसमयमें हिन्दू [आर्य] धर्मके अनुयायीबनते जाने हैं ऐसा देखकर हमारे हिन्दू [आर्य] भाइयोंको इसारी प्राचीनयोग विद्या और वेदान्त विद्याकी खोजनेमेंतन, मन, धन लगा देना चाहिये एवंदिन शीघ्रही आनेवालाहै कि यूरोप, अमेरिका आदिदेश निवासी हिन्दू [आर्य] वैदिकसिद्धान्तोंको मानने वाले होंआयेंगे ।

[पूर्ण]

अथ सप्तदशोऽध्यायः

॥ अर्जुन उवाच ॥

येशास्त्रविधिमुत्सृज्य यजंते श्रद्धयान्विताः
तेषां निष्ठातुका कृष्ण सत्त्वमाहोरजस्तमः ॥

दोहा-श्रद्धायुतयज्ञहिरचै, तजिवेदनकी नीति ॥

सत रज तम सौम्यतिकहौ, कहियेतिनकीरीति
अब अर्जुन पूछते हैं कि हे कृष्ण ! जो किसी प्रकारसे शास्त्रकी
विधिको तो छोड़ देते हैं और श्रद्धापूर्वक यज्ञ करते हैं उनकी स्थिति
कैसी है ? वह सतोगुणी हैं, कि रजोगुणी हैं, कि तमोगुणी हैं, अर्थात्
वे जो देवपूजनादिमें प्रवृत्त होते हैं सो उनकी प्रवृत्ति सतोगुणी है
वा रजोगुणी है वा तमोगुणी है ! ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥

दोहा-श्रद्धानरकीतीनविधि, होतजुसहजसुभाय ॥

सात्त्विक राजस तामसी, सुनियतिनकीदाय ॥

भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! परमेश्वरकी पूजासंबंधिनी श्रद्धा
तीन प्रकारकी है वह सात्त्विकी है परन्तु लोकाचारके अनुसार
सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकारकी श्रद्धा होती है- यह
श्रद्धा स्वभावजा होती है क्योंकि यह पूर्वजन्मके संसारोंसे उत्पन्न
होती है उसका मैं वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥

सत्त्वानुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥

श्रद्धामयोऽयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ३

दोहा—श्रद्धाधर्मजुपुरुषको, आप आपनोरूप ॥

सतरजतमजोजिहिंभजे, सोताहीकोरूप ॥३॥

हे अर्जुन ! सबकी श्रद्धा प्रकृतिके अनुसार होती है, जैसे जिसकी प्रकृति है वैसीही उसकी श्रद्धा है, इसलिये यह पुरुष श्रद्धामय होती है जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसाही है, इससे यहां तानों प्रकारकी श्रद्धा दिखाई गई है जैसे सात्विकी श्रद्धावाला सात्विक, रजोगुणी श्रद्धावाला रजोगुण युक्त और तमोगुणी श्रद्धावाला तमोगुणविशिष्ट होता है ॥ ३ ॥

यजंतेसात्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः॥

प्रेतान्भूतगणांश्चान्येयजंतेतामसाजनाः

दोहा—देवनसेवैसात्विकी, राजसराक्षसयक्ष ॥

भूतप्रेतगणते यजै, नरजुतामसीपक्ष ॥ ४ ॥

हे अर्जुन ! जो सात्विकी पुरुष है वे सत्वगुणविशिष्ट देवताओंका यजन करते हैं, जो रजोगुणी हैं वे यक्ष और राक्षसोंका पूजन करते हैं और जो अन्य तामसी पुरुष हैं वे प्रेत और भूतगणोंकी उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितंधोरंतप्यंतेयेतपोजनाः ॥

दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः॥

दोहा-घोरतपस्याजेकरें, जेनवेदमतिहोहिं ॥

भरेदंभअहंकारसों, कामरागबलगोहिं ॥ ५ ॥

हे अर्जुन ! पाखंडसे मिले हुए, कपट और अहंकारसे युक्त, काम, विषयानुराग और आग्रहसे जो मनुष्य ऐसे घोर तपोंको करते हैं जिनका शास्त्रमें कुछ विधान नहीं है वे असुर हैं ॥ ५ ॥

कर्षयंतःशरीरस्थंभूतग्राममचेतसः ॥

मांचैवांतःशरीरस्थंतान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ६

दोहा-पंचभूतदेहमें, तिनकोवेदुखदेत ॥

हियमेंमोहकोहनै, तेहैं असुर अचेत ॥ ६ ॥

हे अर्जुन ! ऐसे असावधान पुरुष जिनको कुछभी ज्ञान नहीं है वे घोर तप कर करके शरीरमें वर्तमान जो पृथिव्यादि पंचमहाभूतोंका समूह है उसे त्रास देदेकर वृथा दुर्बल और क्षीण करदेते हैं और अन्तर्यामीरूपसे देहमें स्थित मुझकोभी दुर्बल और क्षीण करते हैं उनको तू निश्चय असुर अर्थात् ऐसा जान कि इन आसुरी कर्मों-हीमें उन्होंने मोक्षका मार्ग निश्चय करलिया है ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपिसर्वस्यत्रिविधोभवतिप्रियः

यज्ञस्तपस्तथादानंतेषांभेदमिमंशृणु ७॥

दोहा-तीनभांतिआहारयह, सबकोरोचकहोय ॥

यज्ञदानतपभेदए, मोपैसुनियेसोय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! अन्नादि आहारभी तीन प्रकारका सब मनुष्योंको अ-

च्छा लगता है, वैसेही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकारके हैं, इनके भेद सुन आशय यह है कि भगवान् उस बातको कहना चाहते हैं कि राजस, तामस आहार और यज्ञादिकको छोड़कर सात्विकी बुद्धिका उपाय करें ॥ ७ ॥

**आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखपीतिविवर्द्धनाः ॥
रस्याःस्निग्धाःस्थिराहृद्याआहाराःसात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥**

दोहा-सुंदरथिरअतिचिकित्सो, सात्विक प्रिय आहार
आयुसत्त्व आरोग्यबल, प्रीतिबढ़ावनहार ॥ ८ ॥

हे अर्जुन ! आयु, सत्व, बल, निरोगता, सुख और प्रीतिके बढ़नेवाले रसोले, चिकने, स्थिर अर्थात् अपने रसांशसे बहुत काल तक देहमें रहनेवाले हृदयको हितकारी आहार सात्विक जनोंको प्रिय होते हैं ८ ॥

**कटुम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः
आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥**

दोहा-दाहकरूपोऽष्णकटु, तीक्ष्णखाटोस्वार ॥

शोकरोगदुःखदेतहैं, राजसप्रिय आहार ॥ ९ ॥

हे अर्जुन ! कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त गर्म, अत्यन्त तीक्ष्ण, अत्यन्त रुखे और जलन उत्पन्न करनेवाले आहार रजोगुणवालोंको प्रिय लगते हैं, इनके सेवनसे खाते समय दुःख, भोजन करनेके पीछे अप्रसन्नता और पारेणाममें रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ॥

उच्छिष्टमपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियम् १०

दोहा-जिहिरांधिपरप्रहरगत,वासो उठ्योबुसाय ॥

जूठोऔरपवित्रनहिं, भोजनतामसखाय॥१०॥

हे अर्जुन ! जिस अन्नको पक्क करनेके पीछे एक प्रहर बीत गया-
होजिसमेंसे रस निचोड़ लियाहो, जो दुर्गन्धियुक्त हो, जो वासीहो,
जो उच्छिष्ट अर्थात् किसीके भोजनमेंसे बच रहाहो और अपवित्रहो
ऐसा भोजन नामसी प्रकृतिवालोंकी प्रिय लगता है ॥ १० ॥

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयद्विज्यते॥

यष्टव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्त्विकः ॥

दोहा-लखिविधानसों कीजिये,छांडि फलनकी आस

समाधान घर हीयमें,सात्त्विकयज्ञ विलास ११

हे अर्जुन ! यज्ञ करनाही है,यह मनमें ठान जो बिना फलप्राप्तिकी
इच्छाके विधिपूर्वक यज्ञ किया जाता है वह यज्ञ सात्त्विकी कहता है॥

अभिसंधायतुफलदंभार्थमपिचैवयत् ॥

इज्यतेभरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्विराजसम् ॥१२

दोहा-करिकैफलकीकामना, औरदंभकीभाय ॥

ऐसेजोयज्ञहिकरै, राजसयज्ञसदाय ॥ १२ ॥

हे भरतश्रेष्ठ ! जो यज्ञ फलकी कामनासे कपटयुक्त किया जाता
है उसे राजस यज्ञ समझना ॥ १२ ॥

विधिहीनमसूष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् ॥

श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

दोहा-विनुअन्नहिविनुदच्छिना, विनामंत्रविधिहीन॥

विनुश्रद्धायज्ञहिकरै, सोहै तामसलीन ॥ १३ ॥

हे अर्जुन ! जो यज्ञ शास्त्रविधिसे हीन, यज्ञोचित अन्नसे रहित, मंत्रहीन, दक्षिणारहित और विना श्रद्धा जो यज्ञ किया जाता है वह तामस यज्ञ कहाता है ॥ १३ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ॥

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

दोहा-ज्ञानीगुरुद्विजदेवकों, पूजै शुचि मृदु होय ॥

ब्रह्मचर्यहिंसातजै, तपशारीरकसोय ॥ १४ ॥

(अब तीन श्लोकोंमें कायिक, वाचिक और मानसिक तपोंको कहते हैं) हे अर्जुन ! देवता, द्विज, गुरु और तत्त्वज्ञानियोंका पूजन करना बाह्य अभ्यन्तर पवित्र रहना, सबसे नम्रता रखना, ब्रह्मचर्य व्रत धारण करना, किसीको कष्ट न देना ये शारीरिक तप कहता है ॥ १४ ॥

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ॥

स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥

दोहा-भयनकरै जे प्रियवचन, हितकारी सत भाय ॥

करै वेद अभ्यासपुनि, वाचिक तपयादाय ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! जिस वाक्यसे किसीके मनमें उद्वेग वा घबड़ाहट न

हो, जो सत्यहो, सुननेवालोंको प्रिय लगे, परिणाममें हितकारीहो और वेदपाठका निरन्तर अभ्यास ये वाचिक तप हैं ॥ १५ ॥

**मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥**

दोहा—मनप्रसादमुखमृदुबचन, इंद्रीनिग्रहमौन ॥

भावशुद्धियहकहतहैं, मानसतपसीतौन ॥१६॥

हे अर्जुन ! मनको प्रसन्न रखना, चित्तमें शान्ति रखना, मौन धारण करना, विषयोसे मनको रोकना, लौकिक व्यवहारमें अन्तःकरणको शुद्ध रखना यह सब मानसिक तप हैं ॥ १६ ॥

श्रद्धयापरयातप्ततपस्तन्निविधनरैः ॥

अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्विकंपरिचक्षते ॥

दोहा—श्रद्धासौनरतपकरै, सोईतीन्योभांति ॥

फलइच्छाछाडैकरै, सोईसात्विककांति ॥१७॥

(अब सात्विकादि भेदोंसे तीन प्रकारका तप कहते हैं) हे अर्जुन ! जिन भगवत्पूजकों फलकी कामना नहीं है वे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक जो कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारका तप करते हैं वह सात्विक कहाता है ॥ १७ ॥

सत्कारमानपूजार्थतपोदंभेनचैवयत् ॥

क्रियतेतदिहप्रोक्तराजसंचलमध्रुवम् ॥ १८

दोहा—पूजाआदरमानपुनि, और दंभको काज ॥

सोतपराजसकहतुहैं चंचलक्षणिकसमाज ॥१८॥

हे अर्जुन ! जो तप आदरसत्कार पानेकी इच्छा, अपनी बड़ाई करानेके मनोरथ और दंभसे किया जाता है वह तप राजस अनित्य और क्षणिक कहाँता है ॥ १८ ॥

मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडयाक्रियतेतपः ॥

परस्योत्सादनार्थवातत्तामसमुदाहृतम् ॥

दोहा—देहहिदुखदैमूढवहै, दृढसौतपजोहोय ॥

परकोकष्टदिखावहीं, तामसतपवहैसोय ॥ १० ॥

हे अर्जुन ! जो तप अज्ञानके आग्रहसे, अथवा अपने शरीरको कष्ट देकर अथवा औरोंका मारण, मोहन उच्चाटनादि करनेके निमित्त किया जाता है वह तामस कहाँता है ॥ १९ ॥

दातव्यमितियद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥

देशकालेचपात्रेचतद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

दोहा—दानदेइ उपकार बिनु. पात्रविप्रकोंदेखि ॥

देशकालकोंजानिकै, सात्त्विकदानविशेषि २०

हे अर्जुन ! वह दान सात्त्विक कहाँता है जो देनाही है ऐसा निश्चय करके ऐसे मनुष्यको दिया जाता है जिससे फिर बदलेमें कोई वस्तु लेनेकी इच्छा नहो, तथा देश काल और पात्रका विचार करके जो दान दिया जाता है वह सात्त्विक दान कहाँता है ॥ २० ॥

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ॥

दीयते च परिक्षिप्तद्राजसमुदाहृतम् २१

दोहा-कीजै जो उपकारको, फलकी आशामानि ॥

जो दीजै अतिकष्टों, ताको राजस जानि ॥२१॥

जो दान इस इच्छासे दिया जाता है कि दान लेनेवाला किसी दिन मेरे साथ उपकार करेगा, वा स्वर्गादिक फलकी इच्छासे दिया जाता है वा देते समय चित्तमें दुःख होता है वह दान राजस कहाता है

अदेशकालेय दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ॥

असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् २२

दोहा-विना देस अरु काल विनु, दीजै नीच हि दान ॥

विषु आदर सत्कार विनु, तामस ताहि बखान २२

जो दान निरादर और तिरस्कारसे दिया जाता है, वा देशकालका विचार किये बिना अयोग्योंको दिया जाता है वह तामसी दान है २२

ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः

ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥

दोहा-ओं तत्सत् ए ब्रह्मके, नाम जुतीन प्रकार ॥

विप्रवेद अरु यज्ञ त्रिय, कीने पहिली बार ॥ २३ ॥

ओं, तत्, सत् ये तीनों शब्द परमात्माके नामके अनुरूप निर्दिष्ट हैं इनमें अकार, उकार और मकारका स्वरूप जो ओं हैं सो यह ओ शब्द ब्रह्महीका नाम है और जगत् के कारण हेतुसे ज्ञानियोंको अपरोक्ष है इससे तत् शब्द भी ब्रह्मका नाम है और परमार्थ, सत्त्व, साधुत्व और प्रशस्तत्वादि करके जो सत् शब्द है वह भी ब्रह्मका नाम है, इससे यह त्रिविधनाम निकृष्टको भी उत्कृष्ट करनेमें समर्थ है

इसीसे कहते हैं कि-विधाताने सृष्टिके आदिमें इस परमात्माके त्रिविधनामका उद्देश करके ब्राह्मण, वेद और यज्ञ निर्माण किये इससे 'ओतत्सत्' इस नामके उच्चारण अतिही प्रशस्त है ॥ २३ ॥

**तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः
प्रवर्तते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥**

दोहा-क्रियायज्ञतपदान अरु, कहि पहिले ॐकार ॥

: वेदवन्त यों कहत हैं, विधिविधान विस्तार ॥ २४ ॥

(अब इन तीनों शब्दोंकी भिन्न २ महिमा दिखाते हैं, क्योंकि ओं शब्दसे परमात्माका निर्देश है इससे ओं शब्दका उच्चारण करके जो यज्ञ, दान, तप आदि शास्त्रोक्त क्रिया की जाती हैं वे यथावत सङ्गोपाङ्ग न होनेपरमी सब भांति पूर्ण होती हैं ॥ २४ ॥

तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपः क्रियाः ॥

दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥

दोहा-ततयह करिकै करत हैं, क्रियायज्ञतपदान ॥

फलअभिलाषाछांडिकै, चाहत मुक्तिनिदान ॥

फलकी कामनाको त्यागकर जो सुसुधुजन 'तत्' शब्दका उच्चारण करके यज्ञ, तप तथा अनेक प्रकारके दानोंके करनेमें प्रवृत्त होते हैं वे शुद्ध चित्त होजाते हैं और संकल्पके त्याग सुसुधु होजाते हैं इससे तत् शब्दका उच्चारण बहुतही पवित्र है ॥ २५ ॥

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ॥

प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थयुज्यते ॥

दोहा-शुद्धभावसंतभावमें, सतकोकरतउचार ॥

और भले पुनि कर्ममें, सतकोगावतसार ॥२६॥

हे अर्जुन ! सत् शब्दका प्रयोग सद्भाव और साधुभावमें किया जाता है तथा माङ्गलिक किवाहादिक कर्ममेंभी सत् शब्द प्रयुक्त किया जाता है ॥ २६ ॥

यज्ञेतपसिदानेचस्थितिःसदितिचोच्यते ॥

कर्मचैवतदर्थीयंसदित्येवाऽभिधीयते ॥

दोहा-यज्ञदानतपकीजुथिति, ताहिकहतसतनाम ॥

ताकेजेजेकर्म हैं, ताकोसतविश्राम ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति है उसे सत् कहते हैं तथा परमात्माके निमित्त जो कर्म किये जाते हैं वे यदि विगुण और अङ्गहीन हों पर परमात्माके अति पवित्र ओं तत् सत् ' इन नामोंसे युक्त हों तौ सर्वोत्कृष्ट होजाता है ॥ २७ ॥

अश्रद्धयाहुतंदत्तंतपस्तसंकृतंचयत् ॥

असदित्युच्यतेपार्थनचतत्प्रेत्यनोइह ॥

दोहा-श्रद्धाविनुहोमतयजत, देतसबैजुअकाज ॥

अर्जुनजोयहअसतहै, दुहंलोकनहिंसाज ॥ २८ ॥

एकहिश्रद्धासात्विकी, मुख्यकहीसमुझाय ॥

और त्रिविधगुणभेदतें, कहैसत्रहेध्याय ॥ १ ॥

जबैराजसीतामसी, श्रद्धाकोतजिदेत ॥

रहैसात्विकीमेंतवै, तत्त्वज्ञानगाहिलेत ॥ २ ॥

जोई अर्जुनसों कह्यो, कृष्णसघनघनश्याम ॥
श्रद्धाविधीविवेकसों, वरन्यौ आनंदराम ॥

हे पार्थ ! जो यज्ञ, दान, तप और अन्य कर्म विना श्रद्धाके किये जाते हैं वे सब असत् हैं, क्योंकि विनाश्रद्धाके विगुण और अङ्गहीन हैं और ऐसा होनेसे उनका कुछभी फल न परलोकमें है न इस लोकमें है किन्तु केवल अयशस्कर हैं तथा श्रद्धा इनके करनेमें शरीरको कष्ट देना और धन खराब करनाभी व्यर्थ है ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णा-
र्जुनसंवादे विचारदर्पण दोहासहितभाषाटीकायां श्रद्धात्रयवि-
भागयोगोनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

❀ विचार दर्पण ❀



❀ दर्शन ७। ❀

(वेदों के उपदेश)

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पर्ति जित्वमवसेहमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसदृधे-
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ऋग्वेद अष्टक १ अध्याय ६ वर्ग १५ मंत्र ५ ॥

अर्थ—“ हे सर्व स्वामीन् आपकी चर और अचर जगत्के ईशान (रचने वाले) हो, सर्व विद्यामय विज्ञान स्वरूप बुद्धिको प्रकाशित करनेवाले प्रिय स्वरूप हो, सबके पोषक हो, उन आपका हम अपनी रक्षाके लिये आदाहन करते हे जिसप्रकार से आप हमारे विद्यादि धनोंकी शुद्धि वा रक्षा के लिये निश्चय रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप हमारी स्वस्थताके लिये निरंतर रक्षक हो, आपसे पालित हमलोग सदैव उत्तम कामोमें वृद्धि और आनन्द को प्राप्त हों ” ॥

वयं जयेम त्वया शुजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे । अस्मम्यमिन्द्र वरिवः सुग-
क्राधि प्रश नृणां मयवनृष्ण्या रुज ॥ ऋ १ । ७। १४। ४ ॥

अर्थ—“हे इन्द्र (परमात्मन्) आपकी सहायतासे हमलोग दुष्ट शत्रुजनको जीते, कैसा है वध शत्रु ? कि हमारे वधसे घिरा हुआ है। अर्थात् हमारी सेना उस शत्रुको घेर रखी है। हे महाराजाधिराजेश्वर-सुन्दर मैं हमारी सेनाकी उत्तम रीतिसे कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्धमें क्षीण होके हम पराजयको न प्राप्त हों। किन्तु जिनको आपकी सहायता है उनका सर्वत्र विजय होती है। हे महाधनेश्वर हमारे शत्रुओंके धन पराक्रमादि को प्रभू और रक्षण करके नष्ट कर दो, हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धनको सुखसे प्राप्त करो अर्थात् आपकी कृपासे हमारा राज्य और धन सदा श्रेष्ठिको ही प्राप्त हो ” ॥

समीक्षा—आशय यह है कि काम क्रोध आदि शत्रुओंके जितनेमें परमात्मा से सहायता मांगनी चाहिये

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तां आपः सप्रजापतिः ॥ यजुर्वेद अ० ३२ मं० १ ॥

अर्थ—“जो सब जगत्का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम आग्नि है, सर्वोत्तम ज्ञान स्वरूप, पूज्यतम प्रापणीय स्वरूप आग्नि शब्दका अर्थ है जिरा कभी नाश न हो और स्वप्रकाशस्वरूप है इससे परमात्मा का नाम आदित्य है ! सब जगत् का धारण करने वाला अनंत बलवान् प्राणोंसे भी जो प्रिय स्वरूप है इससे ईश्वर का नाम वायु है ।

आनन्दस्वरूप और स्वसेषकोंको परमानन्द देनेवाला होनेसे परमात्माका नाम चन्द्रमा है । चेतन स्वरूप सब जगत्का कर्ता होनेसे शुक्र है, सबसे बड़ा होनेके कारण परमात्मा का नाम ब्रह्म है । परमात्मा स्वभक्तोंको अत्यंत सुख और विद्यादि सद्गुणोंसे यदानी वाला होनेसे परमात्माका नाम आप “जल” है, वह सब जगत्का पति तथा स्वामी होनेसे प्रजापति कहलाता । सबका पालन करनेवाला अन्य कोई नहीं है, उसीको हमलोग इष्टदेव तथा पालक माने अन्यको नहीं” ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमासि बलं मयि धेहि ॥ ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्थुरासि मन्थुं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥

यजुः अ० १९ मं० ९

अर्थ—हे स्वप्रकाश ! अनंत तेज ! आप अविद्यान्धकारसे रहित हो, किंचित् अल्प विज्ञान तेजस्वरूप हो आप कृपादृष्टिसे मुझमें वही तेज धारण करो, जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु नहीं और कभी न डूँ, अनंत वीर्य परमात्मन् आप पराक्रम स्वरूप हो, आप सर्वोत्तम पराक्रम मुझमें भी रखो आप बल स्वरूप हो मुझे भी बल दो, आप अनंत सामर्थ्यवान् हो मुझको भी सामर्थ्यवान् करो, दुष्टों पर क्रोधवत् हो, मैं भी आपकी कृपासे दुष्टोंपर क्रोध करनेवाला बनूँ आप अनंत सहन स्वरूप हो अतः मैं भी आपकी कृपासे उत्तम कामोंकी प्राप्तिमें आने वाले कष्टोंका सहन कर्ता बनूँ; शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्माके तेजादि गुण कभी दुर्जमें न डूँ, जिससे मैं आपकी भाँख का स्थिर अनुष्ठान करूँ और आपके अनुग्रह से संसारमें भी सदा सुखी रहूँ” ॥

कयानश्चित्र आमुषदूती सदावृधः सता । कया शविष्ठया वृता ॥ सामवेद उत्तरार्चिके अध्याय १ सं० ४ मं० ३ ॥

(अर्थ) "सदावृष" सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होने वाला (चित्र पूजनीय (सत्ता) मित्रभूत इन्द्र-परमात्मा (कथा, उन्नी) कैसीरक्षासे और (कथावृत्त) कैसेवर्तावसे (न.) हमारे (आभुवन) समुद्र हो (उत्तर) [शचिष्ठय अष्टबुद्धियुक्त होनेसे "

समीक्षा-परमात्मान इसप्रक्रमे अनोत्तररूपसे जीवों को यह उपदेश किया है कि परमात्मा की अनुकूलता अच्छे बुद्धियुक्त वर्तावसे ही हो सकती है अतः हमको चाहे कि हम सदा ऐसे कामों में लगे रहे जिनसे प्रतिदिन बुद्धि की उज्ज्वलता और बुद्धिहीन बतों रहे ॥

जब भारतसतान बुद्धिप्राप्तिके साधनेमें लगी हुई थी तब परमात्मा की भी अनुकूलता प्राप्त हो-
अब आलस्य और इन्द्रियों के सुखों के आधीन होकर बेचारी बुद्धिके पक्षाघात [रुकवा)

रोगने पीड़ित कर लिया तो परमात्मा की कृपा भी हमसे दूर होगई, क्योंकि परमात्मा तो न्यायकारी है, वह मोह और अज्ञानसे सदा दूर रहने वालोंकी ही सहायता करता है-

तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ अथर्व० कांड १५ अनुवाक २ वर्ग ९ मंत्र १ ॥

सम्य सभा मे पाहि ये च सम्याः सभास्तदः अथर्ववेद-कांड १९ अनु० ७ वर्ग ५५ मंत्र ६ ॥

(अर्थ) "उस राज्यधर्म को तानों सभा और सेना मिलकर पालन करें, अर्थात् राजा और प्रजाके पृथक् मिलकर विधासभा, धर्मसभा और राज्यसभा नियत करें जिससे सुखकी वृद्धि होती रहे

राजा सभासदों को आज्ञा देवे कि वे सभा के मुख्यलोगों तुम मेरी सभाकी धर्मयुक्त व्यवस्थाका पालन करो ।

समीक्षा राजा सभाके आधीन रहे और सभा राजाके आधीन रहे । इस प्रकार राजा और "प्रजा प्रतिनिधिसभा" मिलकर राज्यके नियमाविधानमें और शासनकरें, यदि इस प्रकार मिलकर काम न होगा तो राज्यकार्यमें गड़बड़ रहेगी ॥ [समीक्षा] जबसे भारतवर्षकी प्रजाको राज्यकार्यमें भाग मिलना छूट गया तभीसे प्रथम सुसलमन्न लोग यहां आकर हमारे ऊपर राज्य करने लगगये । आजकल यूरोप, जापान, अमेरिका के राज्योंकी जड़ इसी कारण टूट हो रही है कि वहां प्रजाको पार्लियामेंट द्वारा राज्यकार्यमें भाग मिष्ट रहा है । अब यहांपर भी कई देशीराजाओंने अपने २ राज्योंमें "प्रजाप्रतिनिधि मंडल" अर्थात् पार्लियामेंट स्थापित की हैं । वे राजा निम्नलिखित हैं महाराजा बड़ोदा, महाराजा मैसूर और महाराजा बीकानेर ।

[उपनिषदोंके उपदेश]

शाखास्यभिर्दु सर्वं यत्विश्वं जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन मुञ्जीया मायुषः कस्यिद्विद्वन्मूर्धा ॥ शोपनिषत् मन्त्र १ ॥

(अर्थ) - जगत् में जो कुछभी है वह परमात्मा करके व्याप्त है अर्थात् कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहां परमात्मा न हो, इसलिये उस पर विश्वास रख, निश्चय होकर जीवन व्यतीत करते हुए किसीके धनकी अकांक्षा मत करो ॥

इह चेद्वेदीयं सत्यमस्ति न चेदिहावेदोन्महती विनष्टिः । भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीरा प्रेत्यास्पाल्लोकादमृता भवन्ति ॥ केनोपनिषत् द्वि० स्क० मं० ५ ॥

(अर्थ) यदि मनुष्यने परमात्माका यथार्थ ज्ञान इसी जन्ममें प्राप्त कर लिया तो ठीक है नहीं तो बड़ी क्षान्ति उठानी होगी (क्योंकि न जाने मनुष्यदेह पुनः कब प्राप्त हो और कब ब्रह्मज्ञान प्रातिका, अवसर मिले) जो विवेकीजन इसी जन्ममें प्राणीमात्र पर ध्यान देते हुए (उन के मुख दुःखोंपर विचार करते हुए) वैराग्यको प्राप्त होकर परमात्माकी शरणमें आकर, अपने प्राणोंको त्यागते हैं, वह मरकर ससारके बन्धनोंसे छूट जाते हैं ॥

अविष्टत जाग्रत प्राप्यवरात्रिबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गपथस्तत्क-
वयो वदन्ति ॥ कठोपनिषत् प्रथमोऽध्यायः ॥ मं० १४ ॥

हे मनुष्यजनों ! उठो, जागो; ज्ञानीपुरुषोंके पास जाकर ज्ञानका मार्ग प्राप्त करो, यह मार्ग बड़ा दुर्गम है अर्थात् जिसपर चलनेमें बड़ा कष्ट होता है, इसे धिक्कानलोग क्षुरकी धारसा सीढ़ी बताते हैं

(समीक्षा)—प्रयोजन यह है की परमात्माकी भांति करने में जो विघ्न शीघ्र २ आया कर-
ते हैं वह वास्तवमें कर्ता के अद्युत प्रारब्धकर्मों का ही फल है, जो विघ्नवाधारूप होकर शीघ्रतासे नाशको प्राप्त हो रहे हैं ।

इसलिए इस संज्ञमें उपदेश दिया गया है कि तुम इन अस्थायी विघ्नोंके उपास्थित होनेपर बीच में मत रुको ; धर्मपथ पर चले जाओ, एक दिन तुम्हारा अभीष्ट अवश्य सिद्ध होगा ॥

तेषामेवैव ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् । तेषामसौ विरजो
ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ प्रश्नोपनिषत् प्रथम प्रश्नः
मं० १५।१६

(अर्थ) ब्रह्मकी प्राप्ति वन्हींको होसकी है जिनमें तप [मन और इंद्रियों को विषय विकारों से दूर रखना] ब्रह्मचर्य [धीर्यरक्षा] और सत्य [यथार्थ भाषण] रूपीगुण हैं; छुट्टब्रह्मानंदकी वही लोका प्राप्त होसके हैं, जिनमें कुटिलता (धर्मात्मा पुरुषोंसे निमुखाता) अद्वत [मिथ्या भाषण] और माया (छल कपट) नहीं होते ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पथा विततो देवयानः । येनाक्रामन्त्येषो
ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ मुंडकोपनिषत् तृतीयमुंडके प्रथमखंडे
मं० ६ ॥

[अर्थ] सत्यका ही अंतमें जय होता है, सत्य करके ही ब्रह्मज्ञान खुलता है, सब सांसारिक कामनाओंसे दूर होनेवाले ही महात्माजन इस सत्यके सहारे ही सत्यस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होते हैं

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्या नमृतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोक्तं एव
यच्चान्यात्रिकालतीर्तं तदप्योद्धार एवा ॥ मांडूक्योपनिषत् मं० १ ॥

(अर्थ) जो कुछ दृष्टिगत है वह सब परमात्माकी ही विभूति समझो, भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें परमात्माकी स्थिति रहती है अधिक क्या बड़े यदि कोई वस्तु कालके वश में नहीं है तो वह परमात्माकी है ॥

समीक्षा—परमात्माने भक्तोंको इस मंत्रसे यज्ञ-व्यवस्था मिलता है कि किसी स्थानको किसी ऋतुमें भी परमात्मासे शुन्य मत समझो, किसी कविने ठीक कहा है ।
जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है। हरशय [वस्तु] में हंशुल (फूल) में न तेरीसी रंगत न तेरीसी बू है ॥

वेदमन्त्राचार्यान्ते वासिनमनुशास्ति सत्यं वद, धर्मं चर, स्वध्यायान्माप्रमदः इत्यादि॥ तैत्तिरीयोपनिषत् एकादशोऽनुपाकः मंत्र १ ॥

[अर्थ] समग्र वेदों की शिक्षा देकर आचार्य अनेवासी (जो शिष्य रात-दिन विद्याध्ययन के निमित्त अपने घर-जो छोड़कर गुरुके घरपर ही ब्रह्मचारी बंका रहता है) को घर-गाते समय उपदेश देता है कि, सदा सत्य बोलना, सदा धर्मात्तु कृत-बी व्यवहार करना जो शुभ पडा है उसका अभ्यास रखना ।

समीक्षा—प्राचीनकालमें नियम था कि जब शिष्य संपूर्ण विद्या पढ चुकता था तो गुरु उसको अपने पासले जाते समय उत्तम २ उपदेश दिया करताया ॥

शिष्य भी पुनः घर-लौटकर अपनी सामर्थ्यात्तु गुरुदक्षिणा देता था, प्रणिमास फीस चुकानेका बोल गापापोंके शिरपर नहीं रहता था जिस बोलके मारे आजकल सगरी नवयुवक इच्छा देने हुये भी यथेष्ट विद्या प्राप्त नहीं कर सके, ऐसी दशामें वह भूखे निर्धन रहकर अपनी ओर अपने दशकी क्या उन्नति कर सके है ? शोक ।

आत्मा वा इदमेव एवाग्र आसीन्नान्यत्किञ्चन पिपत् स ईक्षत लोकांनुमुजा॥ इति। ऐतरेयोपनिषत् प्रथमः संहः मंत्र १ ॥

(अर्थ) प्रत्येकालमें एक परमात्माही आदिमें था और कुछ दिखाई नहीं देता था (प्रत्येकाल अवधि सम । हेजने पर) उस परमात्माने विचारा कि मैं प्रजाकी (उनके पूरे धर्मानुसार उत्पन्न करूँ)

समीक्षा—इस उपनिषद्में शृष्टिकी रचनाका वैज्ञानिक रीतिसे बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है यदि किसीको विस्तार पूर्वक शृष्टिकी रचना का यथार्थ वृत्तांत जानना होतो ऐतरेयोपनिषत् की स्वयं पद या किसी दूसरे से सुने ।

अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुंडरीकं वेदम दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्त स्मिन् यदंतस्तदन्वेष्टव्यं विज्ञेयमसितव्यमिति ॥ छांदोग्योपनिषत् अष्टम प्रपाठक मंत्र १ ॥

(अर्थ) जो इस ब्रह्मपुर (हृदय) में यह सूक्ष्म पुंडरीक (कमल) घर है और इसमें जो सूक्ष्म अंतवर्ती आकाश है उस आकाश में जो (ब्रह्म) है उसको ढूढना चाहिये और जानना चाहिये ।

समीक्षा—यद्यपि ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, परन्तु उन मनुष्योंके लिये जो अभी योगाद्वय अवस्थाको प्राप्त नहीं हुये हैं इसमंत्रमें यह उपदेश दिया गया है कि अपनी मनोवृत्तियोंको स्थिर करने के लिये नित्य गुरुपदिष्ट मार्ग द्वारा अपने हृदयाकाशमें ब्रह्मके दर्शन करें अर्थात् अपनी मनोवृत्तियोंका ब्रह्मकार बनावें

ते य एवमेतद्विदुषे चामी अरण्ये श्रद्धासित्यमुपासते तेऽर्चिरमाभिसंभवन्ति इत्यादि
बृहदारण्यकोपनिषत् पष्ठोऽध्याये । द्वितीयं ब्राह्मणं मंत्र १५ ॥

(अर्थ) जो लोग देवयान और पितृयाण की विद्याओं को जानते हैं वह अपने श्रद्धा पूर्वक ब्रह्मकी
उपासना करते हुए देवयान मार्गद्वारा ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ।

समीक्षा—यहाँ धन से अभिप्राय निर्जन वन या ग्राम से दूर कोई उत्तम एकान्त स्थान है।
अथ ये यज्ञेन दानेनतपसा लोकाञ्जयन्ति ते धूममाभिसंभवन्ति । इत्यादि ॥ वृ०
पष्ठोऽध्याये हि० ब्रा० मंत्र १६ ॥

(अर्थ) जो यज्ञ, दान, तपसे लोकोंको जीतते हैं वह धूमको प्राप्त होते हैं । इत्यादि ॥
समीक्षा—उपरोक्त दोनों मंत्रोंमें देवयान और पितृयाण मार्गों का वर्णन किया गया है । यह
विषय गीता अ० १० के श्लो० २४।२५।२६। की समीक्षा में समझाया गया है, सुमुखजनोंको
यहाँ देख लेना चाहिये ।

य एतौ पन्थानौ न विदुस्ते कीटाः पतद्भायदि दं दंदशूकम् ॥ वृ० अ० ६ हि० ब्रा०
मं० १६ ॥

(अर्थ) जो मनुष्य इन दोनों मार्गोंमें से किसी एकको भी नहीं जानते हैं वह मरकर कीट
पतङ्गादि पापयोनियों को प्राप्त होते हैं ।

समीक्षा—इन उपरोक्त मंत्रोंमें यह दिखाया गया है कि देवयानसे गमन करनेशक्ति अर्थात्
ज्ञानावस्था में मरनेवाले मोक्षको प्राप्त होते हैं और जो पितृयाणसे गमन करते हैं अर्थात्
सासारिक भोगीषी वासनसे यज्ञ, दान, तपस्या करने के कारण इन्हीं भोग वासनाओं को लेकर
मरते हैं वह बार २ जन्म मरणरूपी चक्रमें घूमते रहते हैं, परंतु इस सोलहवें मंत्रकेअंतका
भाग यह भी बताता है किजो मनुष्य अज्ञान और आलस्यमें पड़े हुए इन उपरोक्त दोनों मार्गोंमेंसे
किसीको भी प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते वह मरकर कीट पतङ्गादि पापयोनियोंको प्राप्त होते हैं ॥

[षड्दर्शनोपदेश]

तस्य हेतुरविद्या ॥ योगदर्शन, साधनपा सूत्र २४ ॥

(अर्थ)आत्माके बन्धनका हेतु अविद्या है ॥

समीक्षा—जितने द्रुःख हैं उन सबका मूलकारण महीं वि पतञ्जलिकी सम्प्रतिमें अविद्या
है अतः हम सबको चाहेय कि अविद्याके नाश करनेके लिये पूर्ण प्रयत्न करें ।

अत्यन्तदुःखनिवृत्त्या कृतकृत्यता ॥ सांख्यदर्शन अ० ६ सूत्र ५ ॥

[अर्थ] मनुष्य अपनेको कृतकृत्य तभी समझे, जब अपने पुरुषार्थ द्वारा त्रिविध तापोंसे
अत्यंत निवृत्ति प्राप्त करचुके ॥

त्रिविध ताप निम्नलिखित हैं—

आध्यात्मिक—शारीरिक और मानसिक व्यर्थियोंसे होनेवाले दुःख.

आधिभौतिक—सिद्ध, सर्पादिक हिंसक जीवों या चोर, डाकू और शत्रुओंसे होनेवाले दुःख.

आधिदैविक—कृतिवृष्टि अनावृष्टि और विद्युतादिकद्वारा होनेवाले दुःख-

समीक्षा—उपरोक्त तीन प्रकारके दुःखोंसे अत्यन्त निवृत्ति बड़ी प्राप्त होसकी है, जब मनुष्य धर्मका सेवन करे । धर्मका लक्षण कणादमुनिने अपने वैशेषिक दर्शनमें किया है यथा:-

यतोऽमृदय निदश्रेयस सिद्धिस्स धर्मः ॥ वैशेषिकदर्शनं अध्याय १ सू० २ ॥

[अर्थ] जिस धर्मके करनेसे लौकिक और पारलौकिक सिद्धि प्राप्त हो वही धर्म है ॥

समीक्षा—ऐसे कर्म जिनसे हम इसलोकमें विद्या ऐश्वर्यआरोग्यता और स्वधनता आदि सात्विक पदार्थों की प्राप्ति करतेहुए मरण पीछे कर्मशः परमोत्तम गति मोक्षकी प्राप्ति हों वह धर्मशब्दसे बोले जाते हैं । गौतम मुनिने अज्ञान निवृत्तिसे मोक्षका होना माना है तो भी ठीकही है, क्योंकि जब मनुष्य का मिथ्या ज्ञान दूर होगा तभी वह धर्ममें प्रवृत्त होगा । गौतम मुनिका कथन है कि-

दुःखजन्ममद्विदोषमिथ्याज्ञानानामुचोचरापाये तदनंतरापायादपवर्गः ॥ न्याय-दर्शन अध्याय १ सू० १ ॥

(अर्थ) मिथ्या ज्ञानके नाश होनेपर दोषों (रागद्वेषादि) का नाश होता है, दोषोंकेनाश होनेपर प्रवृत्ति (धर्मविह्वल कामोंका करना) का नाश, प्रवृत्तिके नाश से जन्मका नाश और जन्मके नाशसे सम्पूर्ण दुःखों का नाश होता है अतः सम्पूर्ण दुःखोंका नाश होनाही मोक्ष है

समीक्षा—वेदान्ताचार्यमहर्षि व्यासजीकाभी ऐसा ही मत है अर्थात् धर्माचरणको मोक्षका द्वार मानते हैं यथा:-

तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ॥ वेदान्तदर्शन अध्याय १ सू० ७ ॥

(अर्थ) उस परमात्मामें निष्ठावान्पुरुषके लियेही मोक्षोपदेश किया गया है ॥

समीक्षा—परमात्मामें निष्ठा रखनेवाले वही पुरुष समझे जाते हैं जो उसकी आज्ञाओंको अर्थात् धर्मका पालन करते हैं और दूसरोंको ऐसा करने का उपदेश देते हैं । धर्माचरणसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और ज्ञानसे मुक्ति मिलती है । महर्षि जैमिनीजी महाराज तो धर्माचरणसेही मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं यह बात भारतवर्षके सब लोगों पर विदित है । उनका उपदेश है कि—

अथातो धर्मजिज्ञासा ॥ पूर्वमीमान्सा अध्याय १ सूत्र १ ॥

अर्थ—(अथ) जब मनुष्योंका दुःखोंसे निवृत्तिकी इच्छा होनेपर यह ज्ञान होजावे कि धर्मही ऐसी वस्तु है जिसके आचरणसे दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति होसकती है, तो उस ज्ञानसे अनन्तरही के मनमें यह इच्छा हो कि (अतः) इसलिये (धर्मजिज्ञासा कर्तव्या) हमें धर्मको जानना चाहिये ॥

समीक्षा—महर्षि जैमिनीजीका सिद्धांत है कि—मनुष्य धर्मवाण्डरूपी धर्माचरणसे शुद्धान्त करणी बनता है शुद्धान्तःकरणसे ज्ञानप्राप्ति होती है और ज्ञानसे मोक्ष मिलताहै ॥

[मनुस्मृति]

श्लोक—इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारीषु ॥ संयमेयत्न मातिष्ठेद्विद्वान्पन्तेव वाजिनाम् ॥ २ । ८८ ॥

(अर्थ) विषयोंको सब प्रकारसे दानिकारक समझ कर विद्वान् पुरुष इनमें विचरती हुई अपनी

इन्द्रियोंको रोके, जिस प्रकार रथमें छुड़े हुए घोड़ोंको सारथी बशमें करनेका यत्न करता है उसी प्रकार यत्न करे ॥

श्लोक—अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यचाति भोजनम् ॥ अपुण्यं लोकादिदृष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ अ० २ । ५७ ॥

अर्थ—आधिक भोजन करना अर्थात् जिह्वा के बशमें आकर भिष्ट, स्वादिष्ट और गरिष्ठ पदार्थ मोक्ष आदिकी बनी हुई वस्तुएँ मात्रासे अधिक खाना रोगका हेतु है, अवस्था (आयु) को घटाता है, कारण कि अजीर्णको उत्पन्न करके रोग और मरणका हेतु बनता है इससे भजन स्मरण, यत्न आदि शास्त्रीय कर्मभी नहीं हो सकें, जिससे स्वर्ग आदिक उत्तम सुख प्राप्त नहीं हो सके इनसे पावित्र्यभी नहीं रहसक्ती इस लिये यह काम अर्थात् भोजन है और लोकमें भी निन्दनीय है क्योंकि लोग कहते हैं कि जब इस मनुष्यकी एक जिह्वा इन्द्रियों बशमें नहीं तो और क्या कर सका है

श्लोक—उत्पादकः प्रसदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ ब्रह्मजन्महि विप्रस्य मेत्यचेह च शाश्वतम् ॥ २ । १४६ ॥

(अर्थ) जन्म देने वाले और शास्त्रका उपदेश करने वाले पिताओं में पिछला अधिक है क्योंकि द्विजातियोंका जो दूसरा जन्म अर्थात् गुरुद्वारा विद्या ध्यान रूप जो नई बुद्धि और नये २ निवार उत्पन्न करने वाला जन्म है, वही इस लोक और परलोकमें नित्य है । आशय यह है कि हमारे शास्त्रकारोंने दो जन्म माने हैं, पहिला तो माता के गर्भ से संसार में आना; इन जन्म को वे पशुओं के जन्मसे कुछ विशेष नहीं माना (देखो मनु २ । १४७) क्योंकि जिस प्रकार पशु जन्मसे हर्ष और शूद्र रहते हैं इसी प्रकार मनुष्य भी समझो, परन्तु दूसरा जन्म जो गुरु देता है वही उत्तम है और वही नित्य है ॥

वस्तुतः मनुष्य तभी मनुष्य कहला सकता है जबकि गुरुरूप पिता द्वारा विद्यारूपी माताकी गोद में दूसरा जन्म लेता है ॥

श्लोक—आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्देवपारगः । उत्पादयति साविन्या सा सत्या जरामरा ॥ २ । १४८ ॥

(अर्थ) वेदका पारगामी आचार्य जिस जातिमें शास्त्रकी विधि के अनुसार इस मनुष्यको वेद पढ़ा कर उत्पन्न करता है वही इसकी रथ थी जाति समझो ॥

समीक्षा—जो लोग यह समझते हैं कि हमने उत्तम कुलमें जन्म ले लिया अब हमको क्या भय है चाहे विद्यापढ़े चाहे न पढ़े चाहे शास्त्रीय उत्तम कर्म करें चाहे न करें हम उत्तम कुल की बड़ी प्रतिष्ठा पात रहने जाँके हमारे विद्वान पिता, पितामहादि पाते आये हैं, यह उनकी भूल है । प्राचीनकालमें यह श्रेणी थी जैसा कि इसलोकमें वर्णन है, कि वेद वेदांगमें निपुण आचार्योंके समीप जाकर लोग पूर्ण विद्वान बनते थे फिर परीक्षा लेकर जिस वर्णके योग्य वह आचार्य अपने शिष्योंको समझता था उसी वर्णमें रहनेका उसका अधिकार देता था, वह शिष्यभी आजीवन उस वर्णकी मर्यादाका पालन करता था । तभी इसदेशमें सब प्रकारकी उन्नति हुआ करती थी, क्वनति अपना दर्शन ही नहीं दिखला सकती थी । द्विजशब्दही बताता है कि उत्तम मनुष्य वही है जिसका दो जन्म हो, अर्थात् एक जन्म माताके गर्भसे निकलना दूसरा जन्म गुरुकी सेवामें रहकर विद्यार्थी

अवस्था समाप्त करनेपर गुणक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रा आदि वीण धारण करके, तदनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करना. इसप्रकार पूर्वकालमें श्रम मायावशे जन्म छठारमो लायअपने. गुणक्रमसे गुरुके, यहां वर्ण धारण करने के कारणही द्विज नाम प्रचलित हुआ ॥

श्लोक-यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । यथ विप्रोऽनघोयानस्रयस्ते नाम विभ्रदि ॥ २ ॥ १५७

(अर्थ) जैसे काष्ठसे दन्ताडुका हाथी, चर्मसे बनाया हुआ मृग और विना पत्रा द्विजातिवशेका मनुष्य, ये तीनों नाम मात्रको धारणावशे हुए हैं अर्थात् ये अपने नामके अनुसार कार्य नहीं करने से दर्शनमात्र के होते हैं ॥

श्लोक-अज्ञो भवति ये बालः पिता भवति मंत्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहु पितेत्येव तु मंत्रदम् ॥ २ ॥ १५३ ॥

(अर्थ) मूर्ख है वही बालक है और वेद आदि सत्शास्त्र का बताने वाला है वही पिता है । अनियोग प्रच्योतकालमें मूर्खको बालक अर्थात् भ्राम्हण, निमुद्दे कहने से और शास्त्रकान्त विनम्रलेखी पिता अर्थात् इसश्लोक और परलोके के दुष्टोंसे रक्षा करनेवाला कहने से ॥

श्लोक-धृतिः क्षमा दमाऽस्त्येयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः । धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥ ६ ॥ १२ ॥

(अर्थ) धैर्य (दुःखमें धनरतना नहीं) क्षमा (जहां तक होसके, एकबार ना अधिक बार अपराध करने वालोंको दंड न देना या न दिखाना) दम (मनका रोकना व धनमें फरना) अस्त्येय (किसी प्रकार की भी चोरी नहीं करना) शौच (शरीर और मनस पवित्र रहना) इन्द्रियनिग्रह (पापकर्मोंसे इन्द्रियोंको रोकना) धी (दुष्टोंको शास्त्रके मतसे अवज्ञा सूक्ष्म २ बातोंको जानने वाला बनाना) विद्या (इदलोकिक और पारलोकिक अनेक पदार्थोंको जानना जिससे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चारोंपदार्थ प्राप्त होसके) सत्य (जैसा मानता हो और जैसा जानना हो उसको ब्याप्य भाषण करना या प्रकट करना) और अक्रोध (किसीसे उपदेशक कटुबचन अपने से छोटीके अपराध पर अप्रसन्न न होना)

समीक्षा-ये दश लक्षण धर्मके हैं हमने यहां बहुतही संक्षेप इसीके अर्थ श्लोकोंकी चेष्टा की है, यदि किसी को विस्तारपूर्वक अर्थ जानने की इच्छा हो तो नवजोवन प्रेस काशीमें प्रकाशित पाटित वेशवदेवशास्त्री हृत "धर्मके दश लक्षण" नामकी पुस्तक देखें ॥

श्लोक-द्रुषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतासमः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणमुद ॥ ६६

(अर्थ) चाहे जिस आश्रममें मनुष्य स्थित हो आश्रमप्रिय होकर विना पक्षपातके सबके साथ वदव दार करता हुआ अपराध धृति क्षमा आदि धर्मोंको चारण करे। चाहे उस आश्रमके चिन्ह धारण न करे क्योंकि बाहर के चिन्ह यथा बड़े २ तिष्ठक धारण करना, हाथ में नाला रखना, या बड़ी २ गडा बढाना, खडाउओपर बछ्छा, घुगवने पर चउता, या विशेषकर के गेहूने आदि भेष धारण करना इत्यदि धर्मककारण नहीं होसकते, धर्म तो इन धृति क्षमा २ दश मदात्रोंको अपने २ समय पर धारणकरनेका नाम है ॥

श्लोक-दुराचारो हि पुण्यो लोके भवति निन्दितः । दुःखभागी च सतत

५॥ धितोऽल्पायुश्च यः ॥ ४ ॥ १५७ ॥

(अर्थ) छोटे आयु वाला पुण्य पांडित्य, और थोड़ा आयु वाला निन्दित दुःखका भोगने वाला; सदा रोमरोमे होता है; इसकारण दुराचार (कुर्म) का छोड़ सदाचारका आचरण करे

श्लोक-यद्यत्परदशं कर्म तत्तत्पत्नेन व जयेत् यद्यदात्मवशं तु स्याच्चित्तसेवेत यत्नतः

४। १५९

(अर्थ) जो काम दूसरोंके वशमें हो, उनका यत्न करके त्याग करे और जो २ अपने आधीन हो उनका यत्न कामोंको यत्न पूर्वक करे ॥

समीक्षा-विदेशी वस्तुओंपर ही निर्भर रहना एक प्रकारका परवश काम है।

श्लोक-सर्व परवशं दुःखं सर्वपातमवशं सुखमुद्गाहपातसमासेन लक्षणसुखदुःखयोः ॥

४। १६०

दुःख

तुवर्जयेत् ॥ ४ ॥ १६१ ॥

(अर्थ) जिस कर्मके करनेसे अपने अन्तरात्माको सतोप हो उसको यत्नसे कर और जिससे अन्तरात्माका सतोप प्राप्त न हो ऐसे कामोंको कदापि न करे।

(समीक्षा) इसश्लोकमें धर्म और अधर्मके लक्षण बताये हैं, यदि हम ध्यान पूर्वक अपने अन्तःकरणकी दृष्टियोंको देखते जायें तो अवश्य पता लगेगा कि धर्मके कामोंके करने पर अन्तरात्मा प्रसन्न होता है और पापकर्मोंके करनेपर अन्तरात्मा एक प्रकारका ग्लानि संको होता है; जो लोग चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि करते हैं उनके चित्तमें अवश्य प्रथमवार एक खटकासा होता है।

श्लोक-यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा । प्रजास्तत्र न मुह्यति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् । समोक्ष्यकारिणम् प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ तं राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्णेणाभिवर्द्धते । कामात्मा विषमः क्षुद्रो दंडेनैव निहन्यते ॥ मनुः अ० ७ श्लोक २५-२६-२७ ॥

(अर्थ) जहाँ कृष्ण (काल) वर्ण वाला, लालनेत्र भयंकर पुरुषके समान पापों का नाश करनेवाला दंड विचरता है, वहाँ प्रजा पापी नहीं होसकी परन्तु बात यह है कि दंडका चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान् होना चाहिये ॥ १ ॥ जो उमदंडका चलानेवाला सत्यवादी विचारके साथ काम करने वाला; बुद्धिमान्, धर्म, अर्थ, और कामकी सिद्धि करनेमें पीढ़त है; विद्वान् लोग उसी राजाकी दंडका चलानेवाला कहते हैं ॥ २ ॥ जो राजा दण्डको अच्छे प्रकार चलाता है, वह धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिको बढ़ाता है परंतु विषयमें लम्पट कुटिल देहाण्डकरचलनेवाला । देहा (दूसरोंकी सम्पत्तिको देखकर सहन न करनेवाला) क्षुद्र (छोटे हृदयवाला) नाचबुद्धि राजा उसो दंडसे मारा जाता है ॥ ३ ॥

श्लोक-तेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्र

विद्वहति ॥ १ ॥ दशावरा वा परिषदं धर्मं परिकल्पयेत् ॥ त्र्यवरावापि वृत्तस्या
धर्मं न चालयेत् ॥ २ ॥ त्रैविध्यं हेतुकस्तर्का नैरुक्त धर्मपाठकः । त्रयश्चाश्रमिणः
पूर्वं परिषत्स्या दशावरा ॥ ३ ॥ ऋग्वेदविद्यञ्जुर्विच सामवेदं विदेव च ।
त्र्यवरापरिषक्तेया धर्मसंशय निणयि ॥ ४ ॥ एकोऽपि वेदविद्वन् यं व्यवस्येद्
द्विजोत्तमः । स विज्ञेयः परोपमो नाज्ञानामुदितोऽप्युतेः ॥ ५ ॥ अत्रतानाम-
पन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् । सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥ ६ ॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममताद्वदः । तस्याप्यंगतधाम्भूतातद्वक्तननुगच्छति ॥ ७ ॥

मनु. अ. १२ श्लोक १००-११० से ११५ पर्यंत.

(अर्थ) मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी मुख्य न्यायाधीश और राजा ये चारों सब
विचारोंमें पूर्णविद्वान होने चाहिये ॥ १ ॥

मनुसे मूल दशविद्वानों अथवा बड़मनुजों तीन विद्वानोंकी सभा जैसी व्यवस्थाधर्म
की करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्थाका कोई भी उद्घन नहीं करे ॥ २ ॥

इस सभामें चारों वेद, मीमांसा (कानूनकीविचारविद्या, जिसको आजकल जूरिसप्रुडेस
कहते हैं), न्यायशास्त्र, निरुक्त (वेदके शब्दोंका अर्थज्ञान) धर्मशास्त्र आदिके जाननेवाले

फहलाती है ॥ १ ॥ यादवदाका मला मका जानन वाला एकमात्रविद्वान एक बात को
निर्णय कर दे तो उसको धर्मका निर्णय (कैसला) माने, परन्तु सहस्रों सूक्ष्म मिलकर
जिसबातका निर्णय करदें उसको राजा कर्मा न माने ।

समीक्षा-देखिये अगले समयमें विद्वानोंकी बात का कितना आदर और मान होता था,
लोगजोमुख होते थे और जो अपन धायकर्मकी छिपानेके लिये झूठा धर्मका आडंबर
रखकेलोगोंकी बुरा कहकर और धमकी देकर ठगना चाहते थे, उनकी
बातोंकी कोई नहीं मन्ता था । आजकल बहुस्थानों पर देखनेमें आ रहा है कि
लोग अपने दूषणों की छिपानेके लिये और अपनी पाँल खुल जानेके भय से उन्नति के
कानों को रोकने के लिये अपने की सनातनधर्म कहकर और उन्नति करने वालों को "नास्तिक
" पातण्डे " इत्यादि कहकर सच्चे सनातन धर्म को कलक लथा रहे हैं । इसलिए सच्चे धर्मके
प्रेमियों की चाहिये कि वे ऐसे भिन्ना नामधारी सनातनधर्म बननेवालों की धमकीमें न आये
सुख प्राचीन सनातनधर्म के मार्ग पर चले जायें जैसा कि मनुमहाराजने इस श्लोकमें हमको
अज्ञा दी है ॥ ५ ॥

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य (वीरक्षा) सत्य माध्वादि व्रत और शास्त्रविद्या से शून्य (खाली)
हैं और जन्मसे ही शूद्रवत् वर्णमान हैं उन सहस्रों मनुष्योंके मिलनेसे भी सभा नहीं बनसक्ती
दश धेनु की तो बातकी क्या ॥ ६ ॥

जो मुख्य लोग वेदोंकी अर्थात् सभी धर्मशास्त्रोंको न जानकर जिसबात को धर्म कहें
उसको कर्मा न मानना चाहिये, क्योंकि जो मुख्य के कहे हुये धर्म के अनुसार चलते हैं
उनके पीछे सैकड़ों प्रकरके पाव लग जाते हैं, जसा कि मारवाड आदि प्रांतोंमें विशाखादि

सिस्कारों के सपर्य्य मुखें खो और पुरुष "नैर्घचार" नाम के धर्म बताते हैं, वे बहुधा त्यागने योग्य हैं; इन को न त्यागा जाय या तबतक दुःखोंमें छुटकारा कदापि नहीं मिलसकेगा।

श्लोक—धर्म एव हतोऽंति धर्मो रक्षति रक्षितः । तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो बधीतः ।

॥ मनु० अ० ८ श्लोक० १५ ॥

(अर्थ) ब्रह्मिणों को चाहिये कि धर्माचरणसे कभी न हटें क्योंकि ऐसा नियम है कि धर्माचरणसे मनुष्यों को सुख सम्पत्ति प्राप्त होते हैं और धर्म के विपरीत चलने से अर्थात् मिथ्याभाषण, परस्त्रीगमन, परधन हरण आदि पाप करने वालों का नाश होता है; इसलिये कल्याण की इच्छा करने वालों को मरनी जाती के सब मनुष्यों को धर्मात्मा बनाना चाहिये; जिससे देश की उन्नति हो, धर्माचरण करने वाले मनुष्य जाति में बड़े यहाँ उन्नतिका उपय है।

[हितोपदेश]

श्लोक—विद्यादशतिविनयं विनयाचातिपात्रताम् । पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥ १ ॥

(अर्थ) विद्यासे मनुष्य बड़ा नीतिमान होता है नीतिमान होनेमें श्रेष्ठ, विद्वान और धानिक पुरुषोंकी संगतिमें रहनेके योग्य बनता है; इनकी संगतिसे सात्विक धनप्राप्त होता है, धनप्राप्त होनेसे आनन्दमय, देशमें शांति और जातिसे शांति आदि धर्मके कामें शान्भली प्रकार करसका है। जिससे सदा सुखी रहता है ॥ १ ॥

श्लोक—अने कर्तव्योच्छाद परोक्षार्थस्य दर्शकम् । सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्य एव सः ॥ २ ॥

(अर्थ) विद्याशाला मनुष्य प्रत्येक वस्तुको निश्चय पूर्वक जानसक्ता है; विद्याबलसे गुरु २ गुरुओं को जानलेता है (जैसा कि विद्याबलसे लोगोंने रेल, तार, मोटरगाड़ों, फ़्लायिंग आदि प्रगतांत अनेक भेदोंको जानालेया और जानरहे हैं) जिसको विद्यारूपी नेत्र है वही आनंदशाला है शेष विद्यारहित मनुष्य अंधेरा हैं ॥ २ ॥

समीक्षा—जिन मनुष्योंके घर धन सम्पत्ति हो और जिनकी संतान मनुष्यवर्गका उनको तो अपने संतानको स्वयंसे पढ़ाना चाहिये; नहीं तो बड़ा हादसा होगा जैसा कि लिखा है। यथा:-

श्लोक—यावन्धनसम्पत्तिं प्रभुत्वपविवेकताम् । एकैकमप्यनर्थाय यिमु यत्र चतुष्टयम् ॥

(अर्थ) गुण स्वस्वार्थके साथ धनसम्पत्तिसे; लोगोंका प्रभुत्व अर्थात् राजकुमार कलान्यास आदि साधनविद्या होना हो; एकरूपी साधन जन्य कराने वाला है, जन्य चारों साधन एक ही स्थानपर मिलजायें तो अनर्थका कुछ ठिकता हो नहीं।

समीक्षा—सबका चाहिये एक अपनी संतानको विद्वान बनाने और जो लोग कहते हैं कि भागमें लिखा है सा शांति लड़कोंका विद्या पढ़ाने का क्यों पष्ट किया जाय, ऐसे मूर्खों की बात न सुने ॥ ३ ॥

श्लोक—अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यामयं च चिन्तयेत् । गृहीत इव केशेषु मृत्पुंजा धर्मपात्रे स्त ॥ ४ ॥

(अर्थ) इन च:शेको समुद्रमें पड़ी नावके समान छोड़ देना चाहिये। जो यज्ञोपवीत डालकर गुरु तो बनबावे और कुछ पढ़ा न सके, न उत्तम उपदेश देसके ऐसे गुरु को, मुखे प्रशिक्षितको, ऐसे राजा को जो दुष्टोंसे रक्षा न करे, शास्त्र विद्वद् कटु वचन बोले या लो जपनी स्त्रीको, जो गौओंको वनमें चरानेकी प्रतिज्ञा करे और जपना कर्तव्य पालन न करके ग्राममें रहनेकी इच्छा करे ऐसे ग्वालको और जो नाई क्षौर (इजामत) आदि कामोंकी प्रतिज्ञा करके ग्राममें तो न रहे और खेतों की खेती बाड़ी करनेकी इच्छा करे; ऐसे गुरुओंकी प्रशिक्षा (उद्धाक) में अपने काय न बिगड़ने दे।

श्लोक—इदं च त्वांसत्यपरं ब्रवीमि, पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम् । न जातु कामान्न भयान्नलोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ॥ १ ॥ नित्यो धर्मः सुसंयुक्तो नित्ये जीवो नित्यो ह्यतुरस्य त्वनित्यः । त्यक्त्वाऽनित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये संतुष्यः त्वं शेषपरो हि लाभः ॥ २ ॥

(अर्थ) हे तात (प्यारे) तुमसे एक यह अत्युत्तम (सत्यसे श्रेष्ठ) मत कहता हूँ कि कामसे, लोभसे, भयसे और जीवनकेभी लिये कर्माधर्मको नहीं छोड़ना चाहिये ॥ १ ॥ क्योंकि धर्म नित्य है और सुख दुःख अनित्य हैं अर्थात् कभी आते हैं कभी चले जाते हैं जीव (अपने शुद्धस्वरूपसे) नित्य है, इसको बन्धन में, रखन बाँधी शरीरादि उपाधियाँ अनित्य हैं, इसलिये हे राजा ! अनित्य वस्तुओंमें मन न लगा कर, नित्य की ओर ध्यान दो।

[चाणिक्यनीति]

श्लोक—गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्स्योऽपि संपदः ॥ पूर्णेन्दुः किं तथा धनो निष्कलं यथाकृशः ॥ १ ॥

(अर्थ) सब स्थानोंमें गुण पूजे जाते हैं बड़ी सम्पत्ति नहीं, पूर्णमासा पूर्णमा चंद्रमा क्या धैसा बन्धित होता है जैसा बिना कलकके द्वितीयाका दुर्धृष्टभी चंद्रमा ॥

श्लोक—वृषं लघु वृणात्तुलं तुलादपि च याचकः ॥ बाधुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति ॥ २ ॥

(अर्थ) वृण (घासतिनवा) हलका है, वृणसे हलकी रूई है और रूईसे भी हलका याचक (मांगनेवाला) है, बाधु रूईको तो अपने साथ लेजाती है, क्योंकि उसको यह भय नहीं है कि रूई मुझसे कुछ मांगगी, परन्तु याचक को अपने साथ नहीं ले जाती इस भयसे कि यह कुछ मुझसे माग न लेवे।

श्लोक—पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि अन्नमाप सुभाषितम् । मूढैः पाषाणखंडेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ॥ ३ ॥

(अर्थ) पृथ्वीपर जल, अन्न और अग्नि हितकारों बचन तीनही रत्न हैं, मूर्खोंने टुकड़ों को रत्न गिना है।

श्लोक—धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः । विचारत्वेन हीनो यः स
हीनः सर्व वस्तुषु ॥ ४ ॥

(अर्थ) दोहा—हीन नहीं धनहीन जन, धन पिर नाहिं प्रवीन । हीनन और
वसानिये, विधा हीन सु हीन ॥

श्लोक—अतः सारविहीनानामुपदेशो न जायते ॥ मलयाचलसंसर्गात् वेणुध्वन्द-
नायते ॥ ५ ॥

(अर्थ) गमोरता विहीन पुरुषोंको शिक्षा देना सार्थक नहीं होता । मलयाचलसे
सगसे बाँस ध्वन्दन नहीं बोजता ॥

(समीक्षा) यदि उपदेश लोकोको उपदेश करते समय ऐसे मनुष्योंसे भी काम पड़े,
जिनपर उनके उत्तम उपदेशका कुछभी प्रभाव न पड़े तो उनको खिन्न नहीं होना
चाहिये, क्योंकि संसारमें सभी मनुष्य उत्तम नहीं होसके, बर्पाता सभी जगह होती
है परन्तु ऊपर भूमि कभी फल नहीं देती फल देने वाली भूमि दूसरीही होती है ॥

श्लोक—मुहूर्त्तमपि जीवेच्च भ्रः शुक्लैर्न कर्मणा । न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना ॥
[अर्थ] उत्तम कर्मसे मनुष्योंको मुहूर्त्तभरका जानाभी अष्ट है, दोनों लोकोंके
विरोधी दुष्ट कर्मसे कल्प (कई लाख वर्ष) भरका भी जीनाउत्तम नहीं है ॥

[तत्त्वार्थाधिगम सूत्र.]

[जैनसिद्धान्त का एक माननीय ग्रंथ]

कृतस्त्रकर्मक्षयो मोक्षः ॥ अ० १० सू० ३ ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय होनाही मोक्ष है यह मोक्ष केवलज्ञान उत्पन्न होने वाले
जीवोंको प्राप्त होता है ।

समीक्षा—जैनसिद्धान्तानुसार जीवात्मा अनादिकालसे कर्मबन्धनोंमें फसा हुआ अनादि
कालसे ही जन्ममरण रूपी दुःखको भोग रहा है ! जिन संसारेक भोगोंको यह
दुःख मानेहुए है वह वास्तवमें दुःख रूप ही हैं ! क्योंकि वह अस्थायी, और
विघ्न संयुक्त हैं । अतः जीवात्माको चाहिये कि ऐसा प्रबल पुरुषार्थ करे कि सम्पूर्ण
कर्मोंको क्षय करके केवल ज्ञानके उदय होने पर मोक्ष भागी होजाए । मन, बचन,
कायाकी सभी क्रिया बर्मे शब्दसे बंधी जाती हैं । जिस सपथ जो क्रिया हाती है वह
भविष्य में या तत्कालही आठ प्रकार का फल देनेवाली होता है । कर्ममें भिन्न २
फल देनेवाला गुणही “कर्म प्रकृति”वाला जाता है । जैन सिद्धान्तानुसार ‘कर्म
प्रकृतियाँ, आठ हैं अर्थात् “मोक्षनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्नराय, वेद-
नीय, नाम, मात्र और आयु” । मुक्तारूपमें आत्मा अपने शुद्ध स्वरूपमें होता है ।
यह उस अवस्थामें चराचर सब वस्तुओंको हस्तामलकवत् जानता है, देखता है और
अपने आत्म स्वरूपमें रमण करता है । या यों कह सकें हैं कि अपने ज्ञान, दर्शन
और चारित्र्य रूप शक्तियोंको पूर्ण रूपसे धारण किये रहता है ।

जो कर्म जीवात्माको अपने स्वरूप से हटाकर सांसारिक भोग विलासों में फंसाते हैं वह मोहनीय कर्म हैं जो अटार्क्य प्रकारके होते हैं। जो कर्म जीवात्माको ज्ञानशक्तिको ढांप लेते हैं वह ज्ञानावरणाय कर्म हैं यह पांच प्रकारके होते हैं। जो कर्म जीवात्माकी दर्शन शक्तिको ढक लेते हैं वह दर्शनावरणाय कर्म नौ (९) प्रकारके होते हैं।

जो कर्म जीवात्माकी भोग आदि शक्तियोंको ढकते हैं वह अंतराय कर्म कहलाते हैं वह पांच प्रकारके हैं। जो कर्म जीवात्माको सुख दुःखका भान कराते हैं वह वेदनीय कर्म कहलाते हैं। जो कर्म जीवात्माको शरीर इन्द्रियादिके धारण रखनेमें सहायक बनते हैं वह नाम कर्म हैं। इनके तिरानवे भेद हैं।

जो कर्म जीवात्माको उच्च नीच कर्मजन्म दिलाने वाले हैं वह गोत्र कर्म कहलाते हैं इन के दो भेद हैं। जो कर्म किसी शरीर विशेष के साथ किसी अवधि विशेष तक जीवात्माका संयोग रखाते हैं वह आयु कर्म कहलाते हैं। इसके चार भेद हैं। इस प्रकार एकसौ अष्टांशिक [१४८] “कर्म प्रकृतियां” हैं।

हम विस्तार भयसे इन सब बातोंका विवरण यहां नहीं लिख सकते, जिनको इस विषयमें अधिक ज्ञान प्राप्ति की इच्छा हो तो ‘तत्त्वार्थसंग्रह’ सूत्र, और ‘आप्तनिश्चय’ लङ्कार, ग्रंथोंको देखें मोक्षमार्गज्ञानदर्शनावगणान्तरायक्षपाच्चकेवलम् ॥ अ० १० सू० १ अर्थ— मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणाय तथा अन्तराय कर्मप्रकृतियों के क्षाणा होनेपर बलके ज्ञान प्रगट होता है।

समीक्षा—कर्मक्षय और कर्म के उपशममें यह भेद कि “कर्मका क्षय” तो ऐसा है जैसे बीज की उगनेरूप शक्तीको जला देना है और बीजका जल पृथ्वीका सयोग न होने देनेसे उसकी प्ररोह शक्तिको नष्ट नहीं करके उसको निर्वल रखनेके समान “कर्मका उपशम” है परंतु जब कभी पृथ्वी और जल का संयोग प्राप्त होगा तभी बीज उग आयेगा इस लिये तपस्यादि साधनोंद्वारा कर्म प्रकृतियोंके क्षय करने से तथा मिथ्याज्ञान (अविद्या) कषाय (लोभक्रोधादि) अविरति (हिंसादि कामादि न हटना) प्रमाद [मोक्षमार्गमें न लगना] और प्रवृत्ति [सांसारिककामोंमें लगना]

जैनशास्त्रोंमें प्रकृतिका दूसरा नाम योग है; इन पांच बन्धइतुओंके अभावमें ही केवल ज्ञान उदय होता है अब हम एक और सूत्र लिखकर इस प्रकरणका समाप्त करते हैं।

अनित्याशरणसंसारैकत्वाऽन्यत्वाशुचि त्वाप्तवसंवरनिर्जगलोकवोधदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनं नुपेक्षाः ॥ अ० ९ सू० ७ ॥

(अर्थ) अनित्यत्वानुपेक्षा, अशरणानुपेक्षा संसारानुपेक्षा, एकत्वानुपेक्षा, अन्यत्वा

[४] इस संसारमें मैं एकाकी (अकेला) ही हूँ मेरा कोई भी स्वकीय [अपना] परकीय (दूसरा) नहीं है। इस रीतिसे रागद्वेषके अभाव होनेसे निःसंगताको प्राप्त जीव मोक्षके ही अर्थ प्रयत्न करता है, यह चतुर्थ एकत्वानुप्रेक्षा है । आत्माको शरीरसे पृथक् चिन्तन करना चाहिए शरीर अन्य पदार्थ है, मैं शरीरादिसे विलक्षण पदार्थ हूँ, शरीर तो इन्द्रियोंका विषय है और मैं अतीन्द्रिय हूँ । शरीर जड़ है और मैं ज्ञान-स्वरूप चेतन हूँ । इस प्रकार यह अन्यत्वानुप्रेक्षा व्याख्यात हुई ॥ ५ ॥

यह शरीर अशुचि अर्थात् आशयों से अपवित्र है ऐसा चिन्तन करना चाहिये श्लेष्माशय, पित्ताशय, तथा वाताशय तीन आशय होते हैं; श्लेष्मा, पित्त तथा वायु इन धातुओंसे शरीरकी स्थिति या क्रिया होती है। यह तीनों भुक्त आहारको श्लेष्मा-स्थितिसे क्रमशः दीर्घदशा तक पहुंचाते हैं। ग्लानि होनेसे वह जीव शरीर के नाश तथा मोक्षकी प्राप्ति के लिये चेष्टा करता है, इस रीतिसे यह पष्ठ अशुचित्वानुप्रेक्षा कही गई ॥ ६ ॥

इसलोक तथा परलोकमें भी विघ्न कारक बड़ी २ नदियोंके प्रवाहके वेग सह्य अति उग्र अकुशल [शुर्ष] तथा शालकुकुशल दोनोंको भी कर्मोंके आगमनके द्वारमृत आश्रय [पापकर्मों का करना] रूप इन्द्रियोंको कल्याणमार्ग से संबन्धित करने वाली चिन्तन करना चाहिये । यह आत्मवानुप्रेक्षा हुई ॥ ७ ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चौरांत्याग) ब्रह्मचर्य (मैथुन त्याग) अपरिग्रह शरीरको स्थिर रखनेके लिये आवश्यकीय भोजनवस्त्रादिके अतिरिक्त सांसारिक पदार्थोंका त्याग, यह पांच महाव्रतों द्वारा मन, वाक्, काया के पापों को रोकना संवर कहलाता है; जो आत्मा संवृत है अर्थात् संवर गुण सहित है उस जीवको आत्मवक्ते जो सध्दोष कहे गये हैं वे सभी नहीं होते । इस प्रकार चिन्तन करनेवाली बुद्धि संवरके लिये समर्थ होती है यह संवरानुप्रेक्षा व्याख्यात हुई ॥ ८ ॥ कर्मदन्वन पर चिन्तन करता हुआ प्राणी कर्मों का निर्जरण अर्थात् नाश करनेही में समर्थ होता है, इस रीति से निर्जतानुप्रेक्षा व्याख्यात हुई ॥ ९ ॥

उत्पत्ति, स्थिति, अन्यभावकी प्राप्ति तथा नाशसे युक्त यह संसार है ऐसा चिन्तन करे । इस प्रकार विचार करते हुए जीवका तत्त्वज्ञानकी शुद्धता प्राप्त होती है । इस रीतिसे दशम लोकानुप्रेक्षा व्याख्यात हुई ॥ १० ॥

अनादिकालसे सिद्ध इस संसारमें, अनेक बार जन्मोंको धारण करके, अनंत बार भ्रमण करते हुए, अनेक प्रकारके दुःखों से पीड़ित; मिथ्यादर्शन आदिसे नष्टबुद्धि तथा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तरायभूत कर्मोंके उदयसे पराजित इस जीवको सम्यग्दर्शन आदिसे सर्वथा शुद्ध ज्ञानकी

प्राप्ति अतिदुर्लभ है, ऐसा चिन्तन करे । इस प्रकार बोधि [बोध] दुर्लभताका अनुचिन्तन करते हुए इस जीवको बोधिकी प्राप्ति होती है और बोधकी प्राप्ति करनेसे प्रमाद अर्थात् अशुभ आपरण नहीं होता, इस प्रकारसे यह एकादश "बोधिदुर्लभत्वानुप्रेक्षा" वर्णित हुई ॥ ११ ॥

सम्पददर्शनका द्वारभूत अर्थात् सम्पददर्शनकी प्राप्तिका द्वार, पञ्चमहाव्रत रूप साधनसे सम्युक्त, द्वादश अङ्गोंसे युक्त, सब जीव आदि नौ तत्त्वोंका उपदेश करनेवाला, शुद्धि आदिकी अतिशुद्ध धर्म्यादा सहित ससारस उतारनेवाला, तथा मात्सका प्राप्य, यह जैनधर्म वैसा उत्तम है ऐसा चिन्तन रुद्ध करना चाहिye । ऐसा करनेसे धर्ममार्गके अनुकूल अनुष्ठान करनेमें व्यवस्थिति होती है । इस रीतिसे यह द्वादश "धर्मदालयात् तत्त्वानुप्रेक्षा" समाप्त हुई ॥ १२ ॥

[दुलभीकृतरामायण]

॥ चौपाई ॥

सोचिय विप्र जो वेद विहीन, तज निज धर्म बिषय लख रीन ॥
सोचिये नृपति जो नीति न जाना, जिहि न प्रजा भिय प्राण समाना ॥
सोचिय वैश्य कृषण धनवानू, जो न अतिपि सिवभक्त सुजानू ॥
सोचिय बहु निज व्रत परिहरिहीं, जो नहिं शुरुभायसु अनुसरहीं ॥
बैखानस सोहि सोचन योगू, ४५ विहाय जिहि भावै भोगू ॥

॥ दोहा ॥

सोचिय गृही जो मोह बश, करे धर्म पथ त्याग ।
सोचिय यती प्रपंचरत विगत विवेक विगग ।

॥ चौपाई ॥

दामिनि दमक रहहि घनमाहीं, सलही प्रीति यथा चिर नाही ॥
बूद निषान सहै गिरि बैसे, सलहे वान सत सहै जैसे ॥
दाम वान कफ लोभ अपारा, मोघ पिय नित छाता जारा ॥
प्रीति करहि जो तीनों भाई, उपजै सन्निपात दुःखदाई ॥

[भर्तृहरिकृतवैराग्यशतक]

छप्पय—सहै सलनते बैन इतेपर तिनहिं दिखाये, नैननको जलरोक शुन्यमन मुख मुसकाये । देतनहीं बहुत विच तेरुपर जोर दिखाये, करसर चाव करोर भोरही दोरत आये ॥ सुनि "आश" प्यास तरी प्रवृत्त नू अने जसुत गति गहत । इहभाति नचायो मोहि अब और कहा करिवो चाहत ॥

छप्पय—उदै अस्त रवि होत आयुको क्षीण करत नित । गृहधंधेको माहि समय धीतत अजानचित । आसिन देखत जन्म जरा अरु विपति मरन नित तहुँ डरतनहिं नंक शंकह नाहिं करत चित । जग जीव मोह मदिरा पिबे छाके फिरे प्रमादमें ॥ गिरत उठत फिर गिरत विषय वासना स्वादमें ॥

कुण्डलिया—येही निशि बेदी दिवस बेही तिथि बे बार । बे उषम बेही क्रिया बेही विषय विचार । बेही विषय विकार सुस्त देवत अरु सूषत । बेही भोजन भोग जागि सोवत अरु ऊँघत । मदा निलज्ज यहजीव भोगमें भयो विदेही । अजहुँ पलटत नाहिं वाढत गुण बेके बेही ॥

छप्पय—पृथ्वी परप पुनीत पलंग ताको मन मान्यो । तक्रिया अपनो हाथ गगनको तम्बू तान्यो । सोहतचंदचिराग बीजना करत दशौं दिशि । बनिता अपनी वृषि संगही रहत दिवस निशि । अतुलित अपार सम्पनि सहित सोवत है सुखमें मगन । मुनिराज महानृपराज ज्यो पौढे देखे हमह्वान ॥

छप्पय—धीरज जाको पिता क्षमा है जाकी जननी । सत्य वचन है मित्र दया है जाकी भगिनी ॥ शांति सुबाला नारि भूमितल बैया सो है । संयम मनको बंधु वसन दिक् दिनकुँ मोहै । जिन ज्ञान सुधाको जसन रक्षि सब एते परिजन लहै । फिर योगीको ज्यो डर रहे सदा मुदित मन ह्वै रहे ॥

छप्पय—भोगरहे भरपूर आयु यह भुगत गई सब । तपो नाहिं तप मूढ अवस्थानपत भई अब । काल न कितहुँ जात वयस यह चली जात नित । वृद्ध भई नहिं आस वृद्ध वय भई छाडि हित । अजहुँ अचेत निच चेतकर देह गेहसो नेह तज । दुःख दोषहरन मंगलकरन श्रीहरि हरको चरण भज ॥

महात्माचरणदासजीकृतभक्तिसागर

॥ श्रीगुरु ॥

ब्राह्मण सों जो ब्रह्म पिछाने बाहर जाता भीतर जाने ॥

पाँचों वशकरि झूठ न भासै । दया जनेऊ हृदये रासै ॥

आतमविषा पदै पढावै । परमात्माका ध्यान लगावै

काम क्रोध मति लोभ न होई । चरणदास कहैं ब्राह्मणसोई ॥

कविच—दीसत न वारपार धृतिरह्यो जगत सार, ऐसोही अटल नेक टारो ना टरत है । ताको तौ नहिं नाश ठौर ठौर रह्यो भास । जैसे रहत पुष्पबास पासही रहत है ॥ लोचन रह्यो समाय वेदहु सकैं न गाय । पुस्तक लिखो न जाय जारो ना जरत है ॥ शुकदेवजीकी दया चरणदासको प्रकाश भयो जैसे मैं सोजिपायो पायो न परत है ॥

ग्रंथसाहिब हजारेकेशन्द.

सुहीमो० ३

पंचग्रंथी

(गुरुनानम्जी प्रणीत)

जोगन सिंया जोगन डेंडे जोगन भसमचढाईये जोगन मुंदी मूंड मुडाइये जोगन मींगी
वाँइये अंजन माहि निरंजने राहिये जोगखुगत इवपाईये ॥ १ ॥

गळो जोगन होई, एक दृष्टि कर समसैर जाने, जोगी कहिये सोई जोग न
बाहर मही मधेणी जोग न तांडी लाईये । जोग न देसदिसैर भगिये,
जोग न तीरय न्हाईये ॥ अंजन माहि निरंजन० ॥ २ ॥

सत्गुरु भेटे तां सत्सा दूटे, पावन वर्ज रहाईये निरैर क्षरे सहज धुन लागे, घरही परचा
पाईये। अंजन माहि० ॥ ३ ॥

मानस जीवत्येयां मरणहोय. ऐसा जोग कमाईये वाजे वाजहो सिंगी वाजे, तो निर्भो
पद पाईया। अंजनमाहि० ॥ ४ ॥ २-घनाशरी मोदछा ९

साधो इहो जग भरम भुलाना, रामनामका सिमरन छोडया मायाहाय विकाना
रहा नमातापिताभाईसुत, रनितातांकेरसलपटाना

जोवन धन प्रभुता के मदमें जहिनिश रह दिवाना दीनदयाल सदा दुःखभजनतासो मन
न लगाना जनमानक कोटिनमें किन्हुगुरुमुखहोई छिपाना ६-तिलग मु० ९ काफी
चेवन है तो चेतलै निश दिनमें प्राणी । दिन २ अवध विहान है फूटे घट ज्यों
पानी [रहा] हरगुन वा न गाव हो मूरख अज्ञाना झूटे लालच लागके न्द मरन
पिछाना ।

जजहू कह्यु विगयो नहीं जो प्रभुगुन गावै । कह्यो नानक तेहं भजनते निर्भय पदपावै

(फुटकर दोहा आदि)

(१) भारतीय कृपक पुकार

दोहा

विना ज्ञान विज्ञानकं, कृपिजो करत सदाहि । तेहि कारण दुखको लई, कृपजनभारत

नोट-(१) सिंया, शुद्धी [२] मुंदी, मुद्रा [३] वाँइये, वजाईये [४] अंजन
माया (५) निरंजन, निर्लेख [६] गळो, वातोसे [७] समसरा, समदृष्टि
[८] मही, मधमसाणी, ९ इमसानसेवन [१०] तांडी वाटकमुद्रा [११] भेटे, मिले.

माहि ॥ भारत के अग्रगण्य, यही विनयसब डोर शिक्षा ज्ञान विज्ञानसों, करि प्रचार शिर मोर

(२) अमेरिकन कृषक का कथन

जो नर ज्ञान विज्ञानसों, कृषिको करत बनाय सुती रहे वह जन्मभर, हृदय न ह वै समाय

(३) चारों वर्णोंका कथन

आर्यहि आदि समाज के, हमहैं चारों अंग बिना परस्पर प्रेमके, भयो रंगमें भंग ॥

४) पंचसंराजके आचार्योंका कथन

योग भक्ति गौरव ये, मूल धर्म हैं एक । देश कालके भेदसों, शास्त्रा भई अनेक ॥

पूरख जन अज्ञान वश, वर्णत भेद विचार। ब्रियोन्नति सब भिड़ करहु, होमहि वेद प्रचार

(पूर्ण)

४



पं० श्रीधर शिवलालात्मज पं० कितनलालजीने
अपने ज्ञानसागर ” यंत्रालयमें मुद्रित कर प्रकाशित
किया. स्थान माहुंगा बम्बई

अथ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक् केशिनिषूदन ॥

दोहा-त्याग तत्त्व जानौं चाहत, कहियो जो भगवान् ॥

तत्त्व और संन्यास को, न्यारो करौ बपान ॥ १ ॥

अर्जुन पूछता है कि हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! (इन्द्रियों के नि-
यन्ता) हे केशिनिषूदन ! मैं संन्यास और त्याग के तत्त्वों को भिन्न-
सुनना चाहता हूँ आप कृपा करके कहिये ॥ १ ॥

॥ श्रीभगवानुवाच ॥

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥

दोहा-काम युक्त कर्म नित जै, कहै ताहि संन्यास ॥

कर्म फल न को त्याग यह, त्याग कहत बुधिदास ॥

अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में भगवान् कहते हैं कि पंडितजन सकाम क-
र्मों के छोड़ देने को संन्यास कहते हैं और सत्यासत्य की विवेचना करने
वाले पुरुष सम्पूर्ण कर्मों के फल त्याग को त्याग कहते हैं ॥ २ ॥

त्याज्यं दोषवदित्येकैकर्म प्राहुर्मनीषिणः ॥

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यामिति चापरे ॥

दोहा—कर्मछांड़ियेंदौपते, कोउ कहतयारीति ॥

यज्ञदानतपकर्मजिन, तजौ औरयहनीति ॥३॥

कितनेही ज्ञानीपुरुष यह कहतेहैं कि दोषवाला कर्म छोड़देना-
चाहिये और कितनेही यहभी कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप
आदि कर्मोंका त्याग करना उचित नहीं है ॥ ३ ॥

निश्चयंश्रणुमे तत्र त्यागंभरासत्तम ॥

त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधःसंप्रकीर्तितः॥

दोहा—याठौरहिपदअर्थतू, मेरौनिश्चयजानि ॥

तीनभांतिकोत्यागयह, अर्जुनचितमेंआनि ॥

हे भरतर्षभ ! हे पुरुषसिंह ! इस त्यागके विषयमें जो कुछ मैंने
निश्चय किया है सो सुन, यह त्याग तीन प्रकारका कहा गया है ४

यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत ॥

यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमाजीषिणाम् ॥

दोहा—यज्ञदानतपकर्म ए, कीजैतजियेनाहिं ॥

यातेंपंडितजनइन्हें, गिनत पवित्रनमाहिं ॥५॥

हे अर्जुन ! यज्ञ, दान और तपादिक जो कर्म हैं उनका त्यागना
ठीक नहीं है, किन्तु इनका करना अवश्य है, क्योंकि यज्ञ, दान
और तप विवेकी पुरुषोंके चित्तको शुद्ध करते हैं ॥ ५ ॥

एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाफलानिच
कर्तव्यानीति मेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमम्॥

दोहा-फलछांडेसंगहितजै, कर्मकरैचितलाय ॥
अर्जुनयहमेरौजुमत, निश्चय उत्तमदाय ॥६॥

(परन्तु) हे अर्जुन ! ये कर्म आसक्ति और कर्मफलकी आशा छोड़कर करने चाहिये, केवल ईश्वाराधनके निमित्त इन कर्मोंका करनाही मनको पवित्र करता है यह मेरा निश्चय है ॥ ६ ॥

नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणोनोपपद्यते ॥
मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्तितः

दोहा-जो आवश्यककर्महै, ताकोछांडिनदेय ॥
जोछांडेअज्ञानतम, सोतामसगहिलेय ॥ ७ ॥

हे अर्जुन ! नित्य जो संन्या और पंचमहागुणादि कर्म हैं इनका त्याग देना उचित नहीं है क्योंकि इनके करनेसे चित्त शुद्ध होकर मुक्तिके मार्गका अगलंबन होता है और जो मोहसे इनको त्याग देते हैं उनका यह त्याग तामसी कहाता है ॥ ७ ॥

दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत्
सकृत्वारजसंत्यागंनैवत्यागफलंलभेत् ॥

दोहा-यहैजानिकर्मनितजै, मतिदेहीदुखहोय ॥
सोतोराजसत्यागहै, निरफल कहियेसोय ॥८॥

हे अर्जुन ! जो इन कर्मोंको दुःखरूप समझकर कि इनके करनेसे केवल शरीरको कष्ट होता है, छोड़ देते हैं वह त्याग राजस कहाता है, परन्तु इस त्यागसे त्यागफल कुछ नहीं मिलता है ॥ ८ ॥

कार्यमित्येवंयत्कर्मनियतंक्रियतेऽर्जुन ॥

संगंत्यक्त्वाफलंचैवसत्यागःसात्त्विकोमतः

दोहा—करनोकर्मअवश्ययह, जानजुकीजेकर्म ॥

संग औरफलकृतजै, सात्त्विकत्यागसुधर्म ॥९॥

हे अर्जुन ! यह कर्म अवश्य करना है यह जानकर नियत जो नित्यकर्म सो अवश्य करै और आसक्ति तथा कर्मफलकी आशाका परित्याग करदे, ऐसाही त्याग सात्त्विक कहाता है ॥ ९ ॥

नद्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ॥

त्यागीसत्त्वसमाविष्टोमेधावीछिन्नसंशयः

दोहा—बुरेकर्मनिंदैनहीं, भलेरहै नहिंलागि ॥

बुद्धिवंतसंदेहविनु, यहैसात्त्विकी त्यागि ॥१०॥

अब सात्त्विक त्यागीके लक्षण कहते हैं, हे अर्जुन ! जो सात्त्विक गुणोंसे युक्त है, बुद्धिमान है जिसके संशय दूर होगयेहैं ऐसा त्यागी अकुशल कर्मोंसे द्वेष नहीं करता है और कुशल कर्मोंसे प्रीति नहीं करता है अर्थात् जिन कर्मोंसे शरीरको किसी प्रकारका कष्ट पहुंचता है उनको करनेमें अरुचि नहीं दिखाताहै और जिनकर्मोंसे शरीरको सुख पहुंचता है उनके करनेमें रुचि नहीं करता है ॥ १० ॥

नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुकर्मण्यशेषतः ॥

यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते

दोहा—देहवंतसों कर्म ए, नाहीं छाडै जाहिं ॥

कर्म फलनिको जो तजै, सोई शानी मांहिं ॥

हे अर्जुन ! देहधारी संपूर्ण कर्मोंको करंता रहता है परन्तु कर्मफलोंको त्याग देता है वही त्यागी है ॥ ११ ॥

अनिष्टमिष्टमिश्रंचत्रिविधंकर्मणःफलम् ॥

भवत्यत्यागिनांप्रेत्यनतुसंन्यासिनांकचित्

दोहा—स्वर्गनरकअरुभूमिमय, त्रिविधकर्मफलजानि
कर्मवंतकोहोतहै, संन्यासी नहिं मानि ॥ १२ ॥

अनिष्ट (अनचाही वस्तुका मिलना), इष्ट (चाही वस्तुका मिलना) मिश्र (चाही अनचाही वस्तुओंका मिलना) ये तीन प्रकारके कर्मफल कर्मफलाभिलाषियोंको मरनेपर मिलते हैं और जो संन्यासी हैं उनको ये नहीं मिलते हैं ॥ १२ ॥

पंचैतानिमहाबाहोकारणानिनिबोधमे ॥

सांख्येकृतांतैप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्मणाम्

दोहा—अर्जुन मोपै सुनियतू, कारणहैं ए पांच ॥

कह्यो सांख्य सिद्धांतमें, कर्म सिद्धको सांच ॥ १३ ॥

हे महाबाहो ! संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धिके जो पांच कारण जो सांख्य सिद्धान्तमें कहे हैं उनको तू सुन ॥ १३ ॥

अधिष्ठानंतथाकर्ताकरणंचपृथग्विधम् ॥

विविधाश्चपृथक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमम् ॥

दोहा—अधिष्ठान कर्ताजुंहै, और करन बहुभाय ॥

नानाविधि व्यापार अरु, पंचम दैव गिनाय ॥ १४ ॥

अब उन पांच कारणोंकी कहते हैं १ अधिष्ठान अर्थात् शरीर, २ कर्त्ता अर्थात् जीव, ३ करण अर्थात् मन और चक्षुरादि इन्द्रियोंके कार्य, ४ प्राण अपानादिक पांच वायुओंकी चेष्टा और ५ इन्द्रियोंका प्रेरक दैव अर्थात् अन्तर्यामी ये पांचों सिद्धिके कारण हैं ॥ १४ ॥

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥

न्याय्यंवाविपरीतंवापंचैतेतस्यहेतवः ॥

दोहा—मन अरुबचनशरीरसों, कर्मकरतयासाज ॥
भलौबुरौ कोऊ करौ, इन बिनसरैनकाज ॥ १५ ॥

हे अर्जुन ! शरीर, वाणी और मनके द्वारा मनुष्य जिस न्याय अथवा अन्याय कर्मको करता है उसके हेतु येही उक्त पांचों कारण हैं ॥ १५ ॥

तत्रैवंसतिकर्तारमात्मानंकेवलंतुयः ॥

पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः ॥

दोहा—जे नर आतम एकको, देखत हैं कर्तार ॥

ते कछु वे देखत नहीं, हैं वे मूढ गँवार ॥ १६ ॥

हे अर्जुन ! उक्त पांच कारण हैं ऐसा निश्चय होनेपर भी जो केवल अपने आत्माको कर्त्ता मानता है वह दुर्बुद्धि यथार्थ ज्ञानका जाननेवाला नहीं है इससे यथार्थ बातको नहीं देखता है ॥ १६ ॥

यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥

हत्वापिसङ्माल्लोकान्नहन्तिननिबध्यते ॥

जाकी बुद्धिनलिप्तहै, अहंकारनहिंजाहि ॥

सोइनलोकनको हनै, हनेनबंधनताहि ॥ १७ ॥

हे अर्जुन ! जिसको यह अहंकार नहीं है कि मैं कर्ता हूँ और जिसकी बुद्धि कर्मोंमें लिप्त नहीं है वह इन सब लोकोंको मारता है तौ भी उसे मारनेका पाप नहीं लगता है इसका यह आशय है कि तुम जो इस संग्राममें मनुष्योंके बधसे डरते हो सो जो तुम अहंकारको त्याग कर्म फलमें अलिप्ततासे जो इनका बध करो (जो) तौ कुछ पाप नहीं होगा ॥ १७ ॥

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥

करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

दोहा—प्रेरकतीनों कर्मके, ज्ञानज्ञेयज्ञातार ॥

करण कर्म कर्ता कहै, संग्रह तीन प्रकार ॥ १८ ॥

हे अर्जुन ! यज्ञादि कर्तव्य कर्मोंका जानलेना ज्ञान है जानने योग्य कर्म ज्ञेय है, और शास्त्रोक्त रीतिसे जान लेनेवाला परिज्ञाता है, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता इन तीनोंसे कर्मकी प्रवृत्ति होती है तथा इन्द्रियादिक करण कर्म और करनेवाला कर्ता ये तीनों कर्म करनेके संग्रह हैं अर्थात् इन तीनोंसे कर्मकी प्रवृत्ति होती है ॥ १८ ॥

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ॥

प्रोच्यते गुणसंख्यानेयथावच्छृणुतान्यपि

दोहा—त्रिविध होत गुण भेदते, ज्ञानकर्म करतार ॥

सांख्य शास्त्र में जे कहे, तेसुनिलेयाबार ॥ १९ ॥

हे अर्जुन ! सांख्य शास्त्रमें भी गुणोंके भेदों ज्ञान, कर्म और कर्ता तीनही प्रकारके कहे गये हैं उनको भी यावत् सुन ॥ १९॥

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥

अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्

दोहा—जो करि देखै जीवमें, अविनाशी इहि भाय ॥

न्यारे मैं न्यारे नहीं, सात्त्विक ज्ञान बताय ॥ २० ॥

हे अर्जुन ! जिस ज्ञानके द्वारा स्थावर जंगमादि संपूर्ण भिन्न भिन्न प्राणियोंमें अभिन्न और अविनाशी एकही भाव दिखाई देता है अर्थात् जिस ज्ञानसे छोटे बड़े सब एकही दिखाई देते हैं वही सात्त्विक ज्ञान है ॥ २० ॥

पृथक्त्वेन च यज्ज्ञानं नानाभाषान्पृथग्विधानं

वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥

दोहा—नाना भाव इनमें लखें, न्यारो न्यारो ज्ञान ॥

भिन्न लखें सब जीवको, राजस ज्ञान सुज्ञान ॥

हे अर्जुन ! जिस ज्ञानसे संपूर्ण देहोंमें रहनेवाला एकही क्षेत्रज्ञ भिन्न भिन्न दिखाई देता है वह राजस ज्ञान है ॥ २१ ॥

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ॥

अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥

दोहा—पूरन जानो एकमें, विनुकार खरे भित्त ॥

तत्त्व अर्थ विनु अल्प मति, तामस ज्ञान सुनिच्छ ॥

जिस ज्ञानसे एकही देह अथवा एकही प्रतिमामें संपूर्णरूप जाना जाता है अर्थात् यह कि शरीर ही आत्मा है और प्रतिमाही ईश्वर है जो ज्ञान निर्मूल है, जिस ज्ञानमें परमार्थरूप जो ईश्वर उसका अवलंबन नहीं है, ऐसे ज्ञानको तामस ज्ञान कहते हैं ॥ २२ ॥

नियतंसंगरहितमरागद्वेषतःकृतम् ॥

अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥

दोहा—संगरागंअरुद्वेषविनु, नियतकर्मजोकोय ॥

तजिफल च्छाकीजिये, सात्त्विककर्मसुहोय ॥

अब तीन प्रकार । कर्म कहते हैं, हे अर्जुन ! जो कर्म नित्य किया जाता है जिस कर्ममें मनुष्य आसक्त नहीं होता है, जो बिना किसी प्रकारके राग द्वेषके किया जाता है और जिस कर्ममें फलप्राप्तिकी बाधा न हो, वह कर्म सात्त्विक कहाता है ॥ २३ ॥

यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहंकरेणवापुनः ॥

क्रियतेबहुलायासंतद्राजसमुदाहृतम् ॥

दोहा—जोकीजैकरिकामना, कैधौकरिअहँकार ॥

जामेंश्रमहेअतिघनौ, सोराजसनिरधार ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! जो कर्म फलकी इच्छासे किया जाता है वह राजस कर्म है ॥ २४ ॥

अनुबंधंक्षर्यां संसामनपेक्ष्यघपौरुषम् ॥

मोहादारभ्यतेकर्मयत्तत्तामसमुच्यते ॥

दोहा-पौरुषहिंसाशुभअशुभ, द्रव्यखरचनविचारो॥
जोकीजै अज्ञानतै, तामस कर्मनिहार ॥ २५ ॥

अनुबंध (आगमि जन्ममें इस कर्मका फल शुभ होगा वा अशुभ), धनव्यय, हिंसा और अपनी सामर्थ्यके विचारे बिना, जो कर्म किया जाता है उसे तामस कर्म कहते हैं ॥ २५ ॥

मुक्तसंगोऽनहंवादीधृत्युत्साहसमन्वितः॥

सिद्धयसिद्धयोर्निर्विकारःकर्तासात्विकउच्यते

दोहा-धरिधीरजउत्साहसों, तजैसंगअहंकार ॥

निर्विकारसिधअसिद्धसम, सत्वकर्मकरतार ॥

अब तीन प्रकारका कर्ता कहते हैं, जो कर्ममें आसक्त नहीं होता है, जिसका अपने कर्तापनेका अभिमान नहीं है, जो धीरज और उत्साहसे युक्त है, जो कामके सिद्ध होने अथवा असिद्ध होनेमें विकार रहित है अर्थात् कामके होजानेपर प्रसन्न नहीं होता है और न होनेपर शोचग्रस्त नहीं होता है वही कर्ता सात्विक है ॥ २६ ॥

रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्कोऽशुचिः

हर्षशोकान्वितःकर्ताराजसःपरिकीर्तितः॥

दोहा-रागीचाहतकर्मफल, लुब्धकहिंसकहोय ॥

हर्षशोकसंयुतअशुचि, राजसकर्तासोय ॥ २७ ॥

हे अर्जुन ! जो स्त्रीपुत्रादिकोंमें स्नेहयुक्त होकर कर्मकरनेमें आसक्त होता है, जिसे कर्मफलके प्राप्त होनेकी इच्छा है, जो लोभी है, जो औरोंका बध करने वा उनको पीडा पहुंचानेमें उत्सुक रहता है,

जो अपवित्र है; जो हर्ष और शोकसे युक्त है, वह कर्ता राजस कहाता है ॥ २७ ॥

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥

दोहा—सब दिन रहै विवेक बिनु, सदा आलसी निज ॥

दीर्घ सोचन वै नहीं, अरु विषाद युत चित्त ॥ १ ॥

थोरे दिन के काम को, बहुत लगावे वार ॥

ताही सों सब कहत हैं, यह तामस निरधार ॥ २ ॥

हे अर्जुन ! जो शास्त्रोक्त विधियोंमें असावधान होता है विवेकसे रहित होता है, स्तब्ध अर्थात् किसीसे नम्र नहीं होता है, जो शठ होता है जो औरों का अपमान करनेवाला होता है, आलस्यसे युक्त होता है शोकसे भरा हुआ रहता है और जो काम को यथासमय न करके समय का ढाला करता है वह कर्ता तामस कहाता है ॥ २८ ॥

बुद्धेर्भेदघृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥

प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनं जय ॥

दोहा—बुद्धि अरु धीरज तीन विधि, होत जु गुण के भाय ॥

न्यारो न्यारो सब कहत, हों अवतु ह्यै सुनाय ॥ २९ ॥

हे धनंजय ! सात्विक, राजस और तामस इन तीनों गुणों के कारण बुद्धि और धृति के भी तीन भेद हैं इनको मैं पूर्ण रीतिसे भिन्न २ कहता हूँ उन्हें शृणु ॥ २९ ॥

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्यकार्येभयाभये ॥

बंधंमोक्षंचयवेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्विकी

दोहा—काजअकारजभयअभय, औरप्रवृत्तिनिवृत्ति
जानैबंधनमुक्तिजो, सात्विकबुद्धिकीवृत्ति ॥ ३० ॥

हे अर्जुन ! जो बुद्धि कर्तव्य कर्मोंमें प्रवृत्ति और अकर्तव्य कर्मों
में निवृत्तिको जानती है, कार्य और अकार्यको जानती है, भय
और अभयको जानती है, तथा बंध और मोक्षको जानती है वह
सात्विकी बुद्धि है ॥ ३० ॥

ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥

अयथावत्प्रजानातिबुद्धिःसापार्थराजसी॥

दोहा—धर्मअधर्मनिकोलखै,कारजअकारजजानि॥

जैसेहै तैसेनहीं, बुद्धिराजसी मानि ॥ ३१ ॥

हे पार्थ ! जिस बुद्धिद्वारा धर्म, अधर्म और कार्य अकार्यका यथा-
वत् ज्ञान नहीं होता है वह बुद्धि राजसी कहाती है ॥ ३१ ॥

अधर्मधर्ममितियामन्यतेतमसावृता ॥

सर्वार्थान्विपरीतांश्चबुद्धिःसापार्थतामसी

दोहा—जानैपापहिपुण्यकारि दंभअज्ञानीहोय ॥

लखैअर्थविपरीतसम, बुद्धितामसीसोय ॥ ३२ ॥

हे अर्जुन ! अज्ञानरूप अंधकारसे ढकीहुई जो बुद्धि कर्मको अ-
धर्म समझती है और संपूर्ण वस्तुओंको उलटा समझती है वह ता-
मसी कहाती है ॥ ३२ ॥

यृत्याययाधारयतेमनःप्राणैर्द्रियक्रियाः ॥

योगेनाव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्त्विकी

दोहा-जासों इंद्रोरोकिके, एजुक्रियाअरुमान ॥

योगयुगतनिहचलमहा, धीरजसात्त्विकजान ॥

हे पार्थ ! जो अव्यभिचारिणी अर्थात् किसी और वस्तुपर न ल-
लचानेवाली धृति एकाग्रतासे मन, प्राण और इन्द्रियोंके कर्मोंको
धारण करती है वह सात्त्विकी धृति कहाती है ॥ ३३ ॥

ययातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेऽर्जुन ॥

प्रसंगेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥

दोहा-धर्मअर्थअरुकामको, जोधारतचितचाय ॥

चाहैफलहिप्रसंगसों, धीरजराजसभाय ॥ ३४ ॥

हे अर्जुन ! फलकी इच्छा करनेवाला फलप्रसंगसे जिस धृतिके
द्वारा धर्म, अर्थ और कामको धारण करता है वह धृति राजसी क-
हाती है ॥ ३४ ॥

ययास्त्रप्रभयंशोकंविषादमदमेवच ॥

नविमुंचतिदुर्मैवाधृतिःसापार्थतामसी ॥

दोहा-जोभयशोकविषादमद, सुपनमांहिठहरानि
दुष्टबुद्धिछाँडैनहीं, धृतिजुतामसीजानि ॥ ३५ ॥

हे अर्जुन ! जिस धृति द्वारा अज्ञानी पुत्र, भय, शोक, वि

षाद और मदको छोड़ते नहीं किन्तु ग्रहण करते हैं वह धृति तामसी कहाती है ॥ ३५ ॥

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥

दोहा—अब अर्जुन माँप सुनो, सुख के तीन प्रकार ॥

जाके अभ्यास हि किये, दुख को होइ निवार ॥ ३६ ॥

हे भरतर्षभ ! अब मैं तीन प्रकारके सुखोंको कहता हूँ इस सुखका अभ्यास करनेसे बड़ा आनंद होता है और दुःखका नाश भी हो जाता है

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ॥

तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्

दोहा—पहिले तो विषम सौलगे, बहुरि अमृत सो जोय ॥

सो सुख सात्त्विक है कह्यो, बुद्धि प्रसाद ते होय ॥ ३७ ॥

हे अर्जुन ! जो सुख पहिले विषमके समान लगता है, और परिणाममें अमृतके समान सुखदायी होता है वह आत्मबुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न हुआ सुख सात्त्विक कहाता है ॥ ३७ ॥

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥

परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतम् ॥

दोहा—इन्द्रिय विषय संयोग सुख, पहिले अमृत समान

पाछे जो विषम सौलगे, सो राजस सुख मान ॥ ३८ ॥

हे अर्जुन ! इन्द्रियगण और विषयोंके संगमसे उत्पन्न हुआ सुख प्रथम अमृतके समान होता है और परिणाममें विषके समान होता है उसे राजसी सुख कहते हैं ॥ ३८ ॥

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ॥

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

दोहा-पहिले अरुपाछे सुखद, मोहित करै जु देह ॥

आलसनिद्राते उठै, तामस कहिये एह ॥ ३९ ॥

हे अर्जुन ! जो सुख आगे और परिणाममें भी आत्माको मोहता है तथा निद्रा, आलस्य और प्रमादसे उत्पन्न होता है उसे तामसी सुख कहते हैं ॥ ३९ ॥

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥

सत्त्वं प्रकृतिं जैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः

दोहा-सोष्टहिमीमें नहिं कछू, सुरमें अरु आकाश ॥

सत्त्व जुडन तीन्यो गुणानि, बँध्योनि मायापास ॥

हे अर्जुन ! जो प्राणी प्रकृतिसे उत्पन्न सत्त्वादि इन तीनों गुणोंसे निर्मुक्त हो ऐसा न तो कोई पृथ्वीमें है न स्वर्गमें है न देवताओंमें है

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणां च परंतप ॥

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥

दोहा-द्विजक्षत्री अरु वैश्यको, और शूद्रको कर्म ॥

निज स्वभाव गुणों भयो, न्यारे न्यारे धर्म ४१

हे परंतप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारोंके कर्म प्रकृतिसे उत्पन्न सत्त्वादि गुणोंके कारण पृथक् पृथक् बनाये गये हैं ४१

शमोदमस्तपःशौचंक्षांतिरार्जवमेव च ॥

ज्ञानं विज्ञानमास्ति कथं ब्रह्म कर्म स्वभावजम्

दोहा—शम अरुदमतपशौचपुनि, क्षमानम्रताभाव

आस्तिकज्ञान विज्ञानयह, ब्रह्मज कर्मस्वभाव

अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके स्वभावसे उत्पन्न अलग कर्मोंका वर्णन करते हैं—हे अर्जुन ! शम (मनका निग्रह), दम (बाह्येन्द्रियोंकी शान्ति), तप (शारीरिक तपस्या), शौच (अन्तःकरणकी पवित्रता), क्षान्ति (क्षमा), आर्जव (नम्रता) ज्ञान (शास्त्रज्ञान), विज्ञान (अनुभवसे उत्पन्न ज्ञान) और आस्तिक्य (परलोकदिमें सत्यबुद्धि) ये सब ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४२ ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥

दोहा—शूरतेजधीरजचतुर, युद्धमांहीनपलाय ॥

ठकुराईरुउदारता, क्षत्रीकर्मसुभाय ॥ ४३ ॥

शौर्य (शूरीरता), तेज, धीरज, चतुराई, युद्धसे न भागना, दानदेना और ईश्वरभाव (प्रजाको नियमबद्ध रखनेके लिये दंड आदि देनेकी शक्ति) ये सब क्षत्रियोंके स्वाभाविक कर्म हैं ॥ ४३ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्

दोहा—लगनिबुद्धिकहुनाकरै, जीतैमनतजिआसा॥

परमसिद्धिनिहिंकर्मकी, पावैकरिसंन्यास ४९॥

हे अर्जुन ! जिसकी बुद्धि किसी वस्तुमें आसक्त न हो, जिसको किसी प्रकारका अहंकार नहीं है, जिसकी कर्मफलसे स्पृहा दूर होगई है, ऐसा पुरुष त्यागरूप संन्याससे निष्कर्म अर्थात् सब कर्मोंसे निवृत्तिरूप सिद्धि प्राप्त करता है ॥ ४९ ॥

सिद्धिप्राप्तोयथाब्रह्मतथाप्रोतिनिबोधमे ॥

समासेनैवकौन्तेयनिष्ठाज्ञानस्ययापरा ५०

दोहा—सिद्धिपायपरब्रह्मको, जैसेपावैसार ॥

कह्योजुहोंसंक्षेपसों, निष्ठाज्ञानअपार ॥ ५० ॥

हे कौन्तेय ! जो निष्कर्मरूप सिद्धिको पाकर जिस तरह ब्रह्मको प्राप्त होता है सो मैं संक्षेपसे कहता हूँ तू सुन, यह ईश्वरीय ज्ञानकी परानिष्ठा है ॥ ५० ॥

बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥

शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषौ व्युदस्य च

दोहा—युक्तरहैशुधिबुद्धिमें, धीरजसोंनिरधार ॥

शब्दआदिविषयनतजै, रागद्वेषकोंमार ॥ ५१ ॥

जिस प्रकार ब्रह्मकी प्राप्ति होती है सो कहते हैं कि हे अर्जुन ! जो पुरुष सात्विकी बुद्धिसे युक्त है, जिसने धृति अर्थात् धारणासे अपनी आत्माको वशीभूत कर लिया है, शब्दरूप रसादिक विषयोंका परित्याग कर दिया है और राग और द्वेष दूर कर दिये हैं वही ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥

विविक्तसेवीलङ्घ्याशीयतवाक्कायमानसः
ध्यानयोगपरोनित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥

दोहा—रहैदुःखो एकांतमें, लघु भोजन मन जीति ॥

ध्यान योग अंतर सदा, वह वैराग किरीति ॥५२॥

हे अर्जुन ! जो पुरुष एकान्तमें वास करता है, थोड़ा भोजन करता है, जिसने वाणी, काया और मन वशमें कर रखे हैं, जो नित्य ही ध्यान योगमें तत्पर रहता है और मनमें दृढ़ वैराग्य रखता है वही ब्रह्मपदको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ॥

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥

दोहा—क्रोध परिग्रह काम बल, दर्प और अहंकार ॥

ममता तजि निर्मल रहै, शान्ति ब्रह्म मय सार ॥५३॥

हे अर्जुन ! जो अहंकार, बल (अपना पराक्रम), दर्प, काम, क्रोध, वस्तुओं का संग्रह इन सबको छोड़ ममताको त्याग शान्तचित्त होजाता है वही ब्रह्मभावको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मानो चित्तिनकांक्षति ॥

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

दोहा—ब्रह्मजु भयो प्रसन्न मन, शोचन करै न चाह ॥

सब जीवनको सम लखै, पावै भक्ति प्रवाह ॥५४॥

हे अर्जुन ! जो ऊपर कहे हुए तीनों श्लोकोंके भावानुसार ब्रह्ममें

निश्चलाचित्त रहता है, मनको प्रसन्न रखता है, न किसी गई वस्तुका शोच करता है, न किसी वस्तुकी इच्छा करता है और संपूर्ण प्राणियोंमें समबुद्धि रखता है वही मेरी परमोत्तम भक्तिको पाता है ॥

**भक्त्यामामभिजानातियावन्यश्चास्मितृत्वतः
ततोमांतत्त्वतोज्ञात्वाविशतेतदनंतरम् ॥**

दोहा-मोकोजानोभक्तिकरि, जितनौहोंजिहिंभोय
मोहिजानिकैतत्वसों, ब्रह्मरूपन्हैजाय ॥ ५५ ॥

हे अर्जुन ! उस श्रेष्ठ भक्तिद्वारा मेरे सर्वव्यापी रूपका प्रमाण और मेरे सच्चिदानंदधनस्वरूपको तत्त्वसे जानता है, इस तत्त्वज्ञानके उत्पन्न होनेपर फिर मुझमें प्रवेश होता है अर्थात् मेरे परमानंद रूपको प्राप्त होजाता है ॥ ५५ ॥

**सर्वकर्माण्यपिसदाकुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः॥
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतंपदमव्ययम् ॥**

दोहा-मोकेर्मनिकोंनितकरै, मेरोआश्रयपाय ॥
मोप्रसादतेजारहै, अक्षयपदकोंजाय ॥ ५६ ॥

केवल मेराही आश्रयरखनेवाला पुरुष जो सदा नित्य और नैमित्तिक कर्मोंको करता भी रहता है तौ भी मेरी कृपासे वह अनादि और अनन्त पदको प्राप्त होता है ॥ ५६ ॥

**चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥
सिद्धियोगमुपाश्रित्यमच्चित्तःसततंभव ॥**

दोहा-मनसोंमौमैंकर्मधरि, मोतत्परतालेय ॥

बुद्धियोगकोंसेइकै, मोहीमैंचितदेय ॥ ५७ ॥

हे अर्जुन ! इससे अपने मनको मुझमें लगाकर सावधान हो, सब कर्मोंको मुझमें अर्पणकर ज्ञानयोगका आश्रय ले निरन्तर अपना चित्त मुझमें स्थिर करदे ॥ ५७ ॥

मंचित्तःसर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥

अथचेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनंक्ष्यसि ॥

दोहा-मोप्रसादतेंदुखसबै, तरिजैहैनिरआस ॥

अहंकारतेंबिनुसुनै, लहियेतूछुविनाश ॥ ५८ ॥

हे अर्जुन ! जो तू अपना चित्त मुझमें लगायो रखेगा। तौ मेरी कृपासे इस संसारके दुःखोंसे तरजायगा और जो तू अहंकारके कारण मेरी शिक्षा न मानेगा तो तू नष्ट होजायगा ॥ ५८ ॥

यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥

मिथ्यैषव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति

दोहा-लरौनहींतूजोकहत, अहंकारको मानि ॥

यहतुवनिश्चैझूठहै, प्रकृतिकरावतआनि ॥ ५९ ॥

जो तू अहंकारका आश्रय लेकर यह समझताहै कि मैं युद्ध न करूंगा, यह तेरा व्यवसाय मिथ्या है (ऐसातो होही नहीं सकता), तेरा जातिस्वभावही तुझे युद्धमें प्रवृत्त करवैगा ॥ ५९ ॥

स्वभावजेनकौंतेयनिबद्धःस्वेनकर्मणा ॥

कर्तुनेच्छसियन्मोहात्कारिष्यस्यवशोऽपितत्

दोहा—अर्जुनअपनेकर्मसो, तूबांध्योहैनित्त ॥

करचोनचाहेमोहर्ते, परवशकरिहोमित्त ॥६०॥

हे अर्जुन ! जिस कामको तू अज्ञानसे नहीं करना चाहता है वही कर्म तुझको परवश होकर करना पड़ेगा, क्योंकि तू अपने स्वभावजन्य क्षत्रियधर्मसे बंधा हुआ है ॥ ६० ॥

ईश्वरःसर्वभूतानांहृद्देशेऽर्जुनतिष्ठति ॥

भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया ॥

दोहा—ईश्वरसबकेहीयमें, अर्जुनरहतसमूढ ॥

जीवभ्रमावतुहैसदा, करिमायाआरूढ ॥ ६१॥

हे अर्जुन ! ईश्वर संसाररूपी चक्रपर बैठेहुए संपूर्ण प्राणियोंको अपनी मायासे घुमाता हुआ उनके हृदयमें निवास करता है ॥ ६१ ॥

तमेवशरणंगच्छसर्वभावेनभारत ॥

तत्प्रसादात्परांशांतिस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥

दोहा—होहुसदावाकीशरन, अर्जुनतूममभाय ॥

अविनाशीथिरशांतिपद, ताप्रसादतेपाय ॥ ६२॥

हे भरतवंश, अर्जुन ! सब प्रकारसे तुम उसी ईश्वरकी शरणमें जाओ उसीके अनुग्रहसे तुमको परमशान्ति प्राप्ति होगी और अविनाशी पदको प्राप्त होओगे ॥ ६२ ॥

इतितेजानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥

विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ॥ ६३॥

दोहा-ज्ञानकह्योतोसोंजुमैं, जोजनप्रगटजुनाहिं ॥

जोजानैंसोईजुकरि, धरिबिचारजियमाहिं ६३

हे अर्छन ! यह गुप्तसेमी गुप्त ज्ञान मैंने तुझको सुनाया है इन सबको अच्छी तरह सोच विचारकर जैसी तेरी इच्छा हो वैसा कर ॥

सर्वगुह्यतमंभूयःशृणुमेपरमंवचः ॥

इष्टोऽसिमेदृढमतिस्ततोवक्ष्यामितेहितम्

दोहा-जोकछुहैसबतेपरे, परमवचनसोमानि ॥

तृढबुद्धीमित्रमम, तांहितकहौबषानि ॥६४॥

हे अर्छन ! और भी एक अत्यन्त गोपनीय बात कहताहूँ उसे सुन, तू मुझको अत्यन्त प्याराहै इसीसे तेरी भलाईके लिये कहताहूँ ॥

मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥

मामेवैष्यसिसत्यंतेप्रतिजानेप्रियोऽसिमे ॥

दोहा-मोकोयजतूसत्ययह, नमिमोमेमनरापि ॥

अंतसमैंहोमोहिमैं, प्यारेतुमयहसापि ॥ ६५ ॥

हे अर्छन ! तू मुझहीमें चित्त लगा, मेरीही भक्ति कर, मेराही पूजन कर, मुझीको नमस्कार कर, जो तू ऐसा करेगा तौ मुझीमें आकर मिल जायगा तू मेरा प्यारा है इससे मैं सत्य प्रतिज्ञाकरके कहताहूँ ६५ ॥

दोहा-सबधर्मनिकोंत्यागिकें, मोसरनहितूआय
दूरिकरोंसबपापकों, शोकतजोयाभाय ॥६६॥

हे अर्जुन ! संपूर्ण विधि विधान और धर्मोंको छोड़कर एक मेरी शरणमें आ, मैं तुझे संपूर्ण पापोंसे मुक्त करदूंगा जो तेरे मनमें यह शोच है कि अब इनके मारनेका पाप लगेगा इसका भी शोच मत कर, मैं तेरे सब पाप दूरकर दूंगा ॥ ६६ ॥

इदंतेनातपस्कायनाभक्तायकदाचन ॥
नचाशुश्रूषवेवाच्यंनचमांयोऽभ्यसृयति ॥

दोहा-जाकेतपनहिंभक्तिनहिं, औरशुश्रूषानाहिं ॥
तासें तूयहजनिकहे, जेमोद्वेषीआंहिं ॥ ६७ ॥

हे अर्जुन ! जो ज्ञान देने तुझे सुनाया है वह ऐसे आदमियोंसे कहे जानेके योग्य नहीं है जो तपस्वी नहीं है, मेरा भक्त नहीं है, जो ईश्वरकी शुश्रूषा नहीं करता है और जो मेरी निन्दा करता है ॥ ६७ ॥

यइदंपरमंगुह्यंमद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिमयिपरांकृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः

दोहा-मो भक्तनसोंजोकहै, परमदुरचोयहज्ञान ॥
सोमेरीभक्तिहिलहै, मोमेरहेनिदान ॥ ६८ ॥

हे अर्जुन ! जो इस अत्यन्त गोपनीय ज्ञानको मेरे भक्तोंको सुनावेगा वह मेरी परम भक्ति पाकर अन्तमें निश्चयही मुझमें लीन होजायगा ॥ ६८ ॥

नचतस्मान्मनुष्येषुकश्चिन्मेप्रियकृत्तमः
भवितानेचमेतस्मादन्यःप्रियतरोभुवि ॥

दोहा—मोकोंप्यारेबहुतवह, होंप्यारोहूँताहि ॥

वहमनुरापैजीयमें, होंरापोंहियमांहि ॥ ६९ ॥

हे अर्जुन ! जो गीताका उपदेश करता है वे मनुष्योंमें उससे अधिक मेरा कोई प्रिय करनेवाला नहीं है और न पृथ्वीमें उससे अधिक कोई प्यारा होगा ॥ ६९ ॥

अध्येष्यतेचयद्भूमधर्म्यसंवादमावयोः ॥

ज्ञानयज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामितिमेमतिः ॥

दोहा—धर्मवादजोहमकियो, पढैजोकोऊजानि ॥

ज्ञानजज्ञतिनहोंजज्यो, यहमेरोमतमानि ७० ॥

हे अर्जुन ! जो कोई हमारे तुह्यारे इस धर्मसंबन्धी संवादको पढेगा वह ज्ञानयज्ञद्वारा मेरा यजन करेगा यही मेरा मत है ॥ ७० ॥

श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपि योनरः ॥

सोऽपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥

दोहा—श्रद्धायुतदपनविना, याहिसुनैजोकोय ॥

पुण्यवंतलोकनिलहै, मुक्तछुताकोहोय ॥ ७१ ॥

हे अर्जुन ! जो कोई मनुष्य श्रद्धापूर्वक गीताको पढताहै और निन्दक नहीं है वह मुक्त होकर उन शुभलोकोंको जाता है जहां पुण्य करनेवाले रहते हैं ॥ ७१ ॥

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ॥

कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनं जय ७२

दोहा—चित्त एक ही वृत्ति है सुन्यो, तै अर्जुन य ह धर्म ॥

मिथ्यो मोह अज्ञान को, और छुटै चित्त मर्म ॥ ७२ ॥

हे पार्थ ! जो उपदेश मैंने तुझे दिया है वह तेने एकाग्रचित्त से सुना है वा नहीं ? और हे धनंजय ! इसके सुनने से तेरा अज्ञान-जन्य मोह दूर हुआ वा नहीं ? ॥ ७२ ॥

॥ अर्जुन उवाच ॥

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वप्रसादान्मया च्युतः

स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥

दोहा—मोह गयो आई सुरति, एहो श्री भगवान ॥

गयो दूर संदेह अब, तुम आज्ञा परधान ॥ ७३ ॥

यह सुन अर्जुन कहने लगा कि हे अच्युत ! आपके अनुग्रह से मेरा मोह जाता रहा है. ज्ञान प्राप्त होगया है और अब मुझे किसी प्रकारका संदेह नहीं रहा है अब मैं तुझारी आज्ञाका पालन करूंगा

॥ संजय उवाच ॥

इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ॥

संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ७४ ॥

दोहा—हरि अर्जुन की बात ऐ, सुनी जु मैं या भाय ॥

अचरजरूप अनूप अति, रोमहर्ष चित चाय ७४

अब संजय कहता है कि हे धृतराष्ट्र ! मैंने महात्मा वासुदेव और अर्जुनका यह अद्भुत संवाद सुना, इसके सुननेसे शरीर रोमांचित हो रहा है ॥ ७४ ॥

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरम् ॥

योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्

दोहा-परमदुःखो मत यह जुहों, सुन्यो व्यास परसाद

योगीश्वर श्रीकृष्णजू, निज मुख कियो बिवाद ॥

हे धृतराष्ट्र ! व्यासजीकी कृपासे साक्षात् योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके स्वयं मुखसे निकलते हुए इस परम गोपनीय योगको मैंने सुना ॥ ७५ ॥

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतम्

केशवार्जुनयोः पुण्यं दृष्ट्यामि च मुहुर्मुहुः ॥

दोहा-बारबार सुमिरत जुहों, वा संवाद हिराज ॥

हर्ष होत मो को महा, अति पवित्र के साज ॥ ७६ ॥

हे राजन् ! केशव भगवान् और अर्जुनके इस परम अद्भुत और पुण्यकारक संवादको स्मरण करके बार बार हर्षित होता हूँ और मेरे रोमांच खड़े होते हैं ॥ ७६ ॥

तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ॥

विस्मयो मे महान् राजन् दृष्ट्यामि च पुनः पुनः

दोहा-अद्भुतरूप श्रीकृष्णको, सुमिरत हूँ ताहि ॥

हर्ष होत मे ~ ~ विस्मयमानत वाहि ॥

हे राजन् ! भगवान्के उस अद्भुत विश्वरूपका स्मरण करकरके
सुझको बड़ा विस्मय होता है और हर्षके मारे बार बार मेरे रोम खड़े
हुये आते हैं ॥ ७७ ॥

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥

तत्र श्रीविजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥

दोहा—योगीश्वर श्रीकृष्णजू, अर्जुन है जा ठौर ॥

तहां विजय अरु नीति है, राजसंपदा और ॥ ७८ ॥

कृष्णकृपा तें होत है, भक्तियुक्त को ध्यान ॥

ताते बंधन तैं छुटै, यह गीतारथ जान ॥ १ ॥

इहिं अठरा अध्याय में, कह्यो मोक्ष संन्यास ॥

अर्जुन से श्रीकृष्णजू, जानि आपनो दास ॥ २ ॥

कह्यो मोक्ष संन्यास जो, कृष्ण कमल दल श्याम ॥

उर में धरि गिरि धरन को, वरन्यौ आनंद राम ॥ ३ ॥

यह गीता अद्भुत परम, श्रीमुख कियो वषान ॥

वारवार निरधार किय, परा भक्तिकौ ज्ञान ॥ ४ ॥

भक्ति वश्य श्रीकृष्णजू, यहै करी निरधार ॥

भक्तिकरो बहु भांति सो, यहै वेदको सार ॥ ५ ॥

भगवद्गीता को उपद्वै, और सुनै चितलाय ॥

पावे भक्ति अखंड सो, श्रीहरि सदा सहाय ॥ ६ ॥

गीता प्रतिदिन उच्चरै, सदा स्वच्छ मन माहि ॥

मन सावाचा कर्मणा, तिन सम को ऊनाहि ॥ ७ ॥

॥ विविध रागानियो भजन भक्तिसागर । राग देवगंधार (१०) ॥

मनुष्यो रामके व्योपारी । अबकेसेप भक्तिकी लादी बनिज कियो ते भाषी ॥
पांचों चोर सदा मगरोकत इनसोंकर छुटकारी । सतगुरुनायकके संगमिलिचलूझस-
केनहिरी ॥ दो ठग मारगमाहि मिलेगे एक दानक एकनारी ॥ सावधाने होये न सख्यो
रहियो आप संभारी हरिके नगरमें जा पहुंचोगे पेहो लाभ अपारी ॥ चरणादि साधु तोको
समझाये ये मनवाँवारी ॥ १ ॥ (२) राग आसावरी ।

साधो भक्ति नफा कारिणी ॥ दिन २ काया छीजै ॥ पदन तजे तोमधुरामनमें
कपट तजे तो काशी । और तीर्थ सब ही जगन्दाया नाहि छुडी यमकाशी ॥ भालतले
तिरवेणीराजे बिरले जन कोई न्हाये । सुधरा होयसो नित उठि पावो नैधुरा
जान न पावै ॥ कायापोंदिरमें हरि कहिये वेद पुराण बतावै । इत उत भूले लोग
फिरत हैं धोखेको शिरनाई ॥ यंतर दोना मूढ़ हठावन ताकुँ सौं न मानो । तजिके
सार अहार गद्यो हे तापर भयो सयानो ॥ चरणदास गुरुदेव कहत हैं निज करि
मूढ गहीजे । पारब्रह्म जिन सृष्टि उपाई ता ओरी पित दीजे ॥ २ ॥

(३) राग कल्याण ।

सतगुरु पांचों भूत उतारी । जन्म २ के लागे हि आये दे
मंतर अब तिन्हें विदारो । काम क्रोध मोह लोभ गर्व नें मन बौराय कियो अप भायो
जिनके हाथ पाओ त्रिप मेरा घेरी घेरा बहुत दुख पायो ॥ एकपरी मोहि छाहत
नाहो लहरि चढाय के बहुत त्रिवावो । कपि क्यों घर २ हार नचावै उत्तम हरिको
नाम गुटावो ॥ अबके शरण गही है तुझरी चरणहिंदास अजाने । किरपा करि यह
व्यपि गुटावो गुरु गुरुदेव सयाने ॥ ३ ॥

(४) राग विलावल ।

प्रभुजी शरण तिहारी आयो । जो कोई शरण तिहारी नाहि भर्मिंदुख पायो ॥
आनके मन देवीदेव मेरेपन ताहि भायो । जबसों सुरति संभारी जगमें और न
शीश नवापो ॥ नरपति सुरपति आश तिहारी यह सुनकर मैं भायो । तीर्थ धरत
सकल फल त्यागे चरणकमल चित लायो ॥ नारदमुनि अरु शिव ब्रह्मादिक तेरो
ध्यान लगायो ॥ अब हरि क्यों न गहो बाँह मेरी तुम काहे विसरायो ।
चरणदास यह करता तू हो गुरु गुरुदेव बतायो ॥ ४ ॥

(५) राग रामकली-

चारि चरणसो हरिजन ऊँचे । भये पविचर हरिके सुमिरे तनके
के सूचे ॥ जो न पतीजे सासि बताऊँ शवरीके झूठे फल साये । बहुत
कृपांशु हाई रहने तिनको घर रघुपति नाहि आये ॥ भालनी पाव दियो सखिनामे
शुद्धभयो जल सब कोई जाने । मेद हतो सो निर्मल हयो अभियानी न
लखाने ॥ ब्राह्मण भत्री भूपहुते बहु बाको शील स्वपच जब आयो ॥ भालमाँकि
णकीन्दा अथ २ कारभोगयश गाया ॥ आतिवरण कुलसोई नीको जाके सो
परकासा । गुरु गुरुदेव कहन है तो को हरिजन सेवचरणही दासा ॥ ५ ॥

इति विचार दर्शन अ दर्शन समाप्त.

॥ विविध रागानियो भजन भक्तिसागर. । राग देवगंधार (१७) ॥

मनुवाँ रामके व्योपारी । अबकेसेप भक्तिकी लाही वणिज कियो तैं भारी ।
पांचों चोर सदा मगरोकत इनसोकर छुटकारी । सतगुरुनाथके संगमिलिचललुख-
केंनहिरी ॥ दो ठग मारगमाहि मिलेगे एक बनक एकनारी ॥ सावधानेही पुन न सहयो
रहियो आप संभारी हरिके नगरमें जा पहुंचोगे पैहो लाभ अपारी चरणहिदास तोको
समझावे ये मनवोरवारी ॥ १ ॥ (२) रागआसावरी ।

साधो भक्ति नफा करिछाँजे । दिन २ काया छीजे ॥ मदन तजै तोमपुरामनमें
कपट तजै तो कासी । और तीर्थ सब ही जगन्हाया नाहिं कुटी समझासी ॥ भालतले
तिरवेणीराजे बिरले जन कोई न्हावै । सुगुरा होयसो नित उठि परसै निगुरा
जान न पावै ॥ कायामंदिरमें हरि कहिये वेद पुराण बतावै । इत उत भूले लोग
फिरत हैं धोखेको शिर नावै ॥ यंतर टोना भूढ़ हलावन ताहुँ सोंव न मानो । तजिके
सार असार गद्यो हे तापर भयो सयानी ॥ चरणदास शुक्रदेव कहत हैं निज करि
मूढ गहीजै । पारब्रह्म जिन सृष्टि उपाई ता ओरी चित दीजे ॥ २ ॥

(३) राग कल्याण ।

सतगुरु पांचों भूत उतारी । जन्म २ के लागे हि आये दे
मंतर अब तिन्हें विढारो । काम क्रोध मोह लोभ गर्व नें मन बौराय कियो अप भायो
जिनके हाथ परो जिय मेरो घेरी घेरा बहुत दुख पायो ॥ एकघरी मोहि छाडत
नाहीं लहरि चढाय के बहुत निवावो । कपि ज्यों घर २ हार नचावे उचम हरिको
नाम छुटावो ॥ अबके शरण गही है तुझरी चरणहिदास अजाने । किरपा करि यह
व्याधि छुटावो गुरु शुक्रदेव सयाने ॥ ३ ॥

(४) राग विलावल ।

प्रभुजी शरण तिहारी आयो । जो कोई शरण तिहारी नाहिं भर्मि २ दुख पायो ॥
आनके मन देवीदेवा मेरेमन तुहि भायो । जबसों सुरति संभारी जगमें और न
शीश नवायो ॥ नरपति सुरपति आश तिहारी यह सुनकर मैं भायो । तीरथ वरत
सकल फल त्यागे चरणकमल चिच लायो ॥ नारदमुनि अरु शिव ब्रह्मादिक तेरो
ध्यान लगायो ॥ अब हरि क्यों न गहो बाँह मेरी तुम काहे विसरायो ।
चरणदास वहै करता तू ही गुरु शुक्रदेव बतायो ॥ ४ ॥

(५) राग रामकली-

चारि वरणसों हरिजन कैचे । भये पविचर हरिके सुमिरे तनके उज्जल मन
के सूचे ॥ जो न पतीजे सासि बताऊँ शरीरके झूठे फल साये । बहुत
झूठीभार हाई रहते तिनके घर रघुपति नहिं आये ॥ भीलनी पाव दियो सारिताम
शुद्धभयो जल सब कोई जाने । मंद हतो सो निर्मल हुआ अभिमानी नर भये
स्विसाने ॥ ब्राह्मण क्षत्री भूपहुते बहु बाबो शंस स्वपच जब आयो ॥ बालमीकि बहूपर
णकीन्हो जय २ कारभगोयश गाया ॥ जातिवरण कुलसोई नीको जाके सो भक्ति
परकासा । गुरु शुक्रदेव कहन हैं तो को हरिजन सेवचरणही दासा ॥ ५ ॥

इति विचार दर्पण अ. ७वाँ दर्शन समाप्त.

पांडवगीता मूल -) तथा भाषाटीका
अथवागीता भाषाटीका- १)
तत्त्वयो-भाषाटीका- २)
योगवशिष्ट सम्पूर्ण भाषाटीकासहितमूल्य२०)
यागवशिष्ट मूल्य ११)
पुष्पादेश-स्कंध दोहा चौपाई चतुरदास १)
अध्यात्मप्रकाश भाषा २)
सुन्दर बिलास सुन्दरदासेवृत १०)
ज्ञानसमुद्र सुन्दरदासेवृत १)
प्रत्यक्षिज्ञान भाषाटीका - २)

धर्मशास्त्र ग्रंथः

मनुस्मृति-भाषाटीकाबड़ीगलेज ३१) रफ्तार ११)
ब्रतदा मूल-भाषा रफ २)
ब्र १०० भाषाटीका छपकर तैयार है
दोष ७) रफ्तार ६)
सौरिनिगम मूल्य ७)
तिथि निगममूल ७॥ तथा भाषा टीका १)

योग मार्ग ग्रंथाः

शिवस्वरौदय शाखाटीका १७)
स्वरौदयसार चरणदासवृत २)
योगशास्त्रोदय ७)
ब्रह्मवेध-जिससेब्रह्मधाधेहोता ११)

पुराण ग्रंथाः

भगवत मूलमंत्रखुलेत्रों का १)
भगवत भाषाटीका १०)
दसमभाषाटीका ३१)
भगवत माहात्म्य मूल १७)
गोवर्धनेन्द्रारणक्या भा टी. १)
जयश्रीमहात्म्य भाषाटीका १७)
पुष्पादेशी भाषाटीका १)
चंद्रायणव्रत कथाभाषा टीका २)
कार्तिक माहात्म्य भा टी १)
मार्गदर्शिका टीका ७)
वैष्णवमाहात्म्य भाषाटीका १)
श्रवणमाहात्म्य भाषाटीका १)

माद्रपदमाहात्म्य भाषा टीका ११)
पुरसे तम माहात्म्य भाषा टीका १)
सत्यनारायण मूल ७ तथा भाषा टीका १)
सत्यनारायण ७ अध्यायमूल ७ भाषा टीका १)
सर्वगदीपक भाषाटीका - ११)
केशकण्ठद्वय १)
वेद्य, हृदय भाषा टीका ११)
पाकरत्नाकर-रसोई बनानेकीविधिदि २)
अमृतसागर-बड़ा कोष सहित २)
सुदुम्बचिकित्सा १)
अर्कप्रकाश-भाषाटीका १)
रसरत्न मंडादि ४ भाग प्रत्येकभागका ११)
योगा चिन्ताभाषा-भा. टी. १)
लोलिम्वराज-भाषाटीका १)
पशुचिकित्सा भाषा १)
अभिनवनिघड इतराभाग २१)
अभिनवनिघडपराशिष्ट भाग १)
वैयावतश २)
परिक्षा चिन्ता २)
चिकित्सा चिन्ता २)
चिकित्सा रत्न २)
चिकित्सा चक्रवर्ती १)
डाक्टर-चिकित्सा ११)
त्रिदेशो वेद्य ११)
सुनानेक हकीम २)
लडन-डे डाक्टर १२)
रामानुज-संप्रदायी ग्रंथाः
राम महिम्न मूल - ११)
रामपटल पदति भा. टी. १)
चौबीस गायत्री भाषा टीका १)
सिद्धांत पटल २)
भजन रत्नावली १)
अनुष्ठान मंत्रग्रंथाः
माहेश्वरी-तथ भाषा टीका १)
नित्यतंत्र-भाषा टीका ११)
रुद्री-मूल मोटे अक्षर का दाम १)
नित्यकर्म प्रयोगमाला-ब्रह्मणों को १)
अवश्यलेनाचाहिये मूल्य १७)